गुरुकुल-पत्रिका

मासिक शोध–पत्रिका

गुरुकुल शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन
25–28 अप्रैल 2002
विशेषांक



सम्पादक
प्रो० महावीर
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार–249404



दीक्षान्त भाषण देते हुए भारत रत्न श्रीमती इन्दिरा गांधी तत्कालीन प्रधानमन्त्री भारत सरकार।

गुरुकुल-पत्रिका

मासिक शोध–पत्रिका

Monthly Research Magazine

गुरुकुल शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन
विशेषांक

सम्पादक

प्रो० महावीर

एम.ए. (संस्कृत, वेद, हिन्दी) व्याकरणाचार्य
पी-एच.डी., डी.लिट्.

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार –२४९४०४

मार्च – अप्रैल सन् २००२ ई०	वर्ष ५४ वां	फाल्गुन (शुक्ल पक्ष) सम्वत् २०५८ – वैशाख (कृष्ण पक्ष) सम्वत् २०५९

सम्पादक मण्डल

संरक्षक	:	प्रो0 वेदप्रकाश शास्त्री आचार्य एवं कुलपति
परामर्शदाता	:	डॉ0 विष्णुदत्त राकेश प्रोफेसर, हिन्दी विभाग एवं संकायाध्यक्ष मानविकी संकाय
सम्पादक	:	डॉ0 महावीर कुलसचिव एवं प्रोफेसर संस्कृत विभाग
व्यवसाय प्रबन्धक	:	डॉ0 जगदीश विद्यालंकार पुस्तकालयाध्यक्ष
प्रकाशक	:	डॉ0 महावीर कुलसचिव
मूल्य	:	२५ रुपये वार्षिक

मुद्रक : किरण प्रिंटिंग प्रेस, निकट गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, कनखल हरिद्वार फोन : 416925

विषयानुक्रमणिका

विशेष कार्य अधिकारी
OFFICER ON SPECIAL DUTY

राष्ट्रपति सचि
राष्ट्रपति
नई दिल्ली - 110
President's Secret
Rashtrapati Bh
New Delhi - 110



सं. 8-एम. एच. /2002

18 अप्रैल, 2002

प्रिय डॉ. महावीर जी,

भारत के राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन् जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार अपनी स्थापना का शताब्दी वर्ष मना रहा है तथा इस अवसर पर 25 से 28 अप्रैल, 2002 तक अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन का आयोजन कर रहा है तथा गुरुकुल-पत्रिका का शताब्दी विशेषांक भी प्रकाशित कर रहा है ।

राष्ट्रपति जी इस आयोजन की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं ।

आपका,

(प्रेम प्रकाश कौशिक)

डॉ. महावीर
प्रधान सम्पादक
कुलसचिव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तरांचल ।

सुरजीत सिंह बरनाला
राज्यपाल, उत्तरांचल

सत्यमेव जयते

राजभवन
देहरादून–248 003



सं० 226.../जी.एस./200.
दि०.........200' 10 अप्रैल,2002

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि भारत की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,हरिद्वार अपनी स्थापना का शताब्दी वर्ष मना रहा है। इस अवसर पर "गुरुकुल–पत्रिका" का शताब्दी विशेषांक भी प्रकाशित किया जायेगा।

सर्वविदित है कि आज से एक सौ वर्ष पूर्व अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने राष्ट्रप्रेम और भारतीय संस्कृति की ज्योति जलाने के लिए गंगा के पावन तट पर गुरुकुल की स्थापना की थी। उनकी प्रेरणा से ही आज इसे भारत की प्रमुख शिक्षण संस्थाओं में गौरवशाली स्थान प्राप्त है।

मुझे आशा है कि "गुरुकुल–पत्रिका" में शैक्षिक, नैतिक, वैज्ञानिक और तकनीकी आदि विषयों से सम्बन्धित ऐसी महत्वपूर्ण पाठ्य–सामग्री का समावेश किया जायेगा,जो मानव के बौद्धिक स्तर को बढ़ाने में अवश्य सहायक सिद्ध होगा।

इस पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

सुरजीत सिंह बरनाला

(सुरजीत सिंह बरनाला)

सुषमा स्वराज
Sushma Swaraj



सूचना एवं प्रसारण मंत्री
भारत सरकार
नई दिल्ली-110001
MINISTER OF
INFORMATION & BROADCASTING
GOVERNMENT OF INDIA
NEW DELHI - 110001

17 APR 2002

संदेश

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी स्थापना का शताब्दी वर्ष मना रहा है एवं इस अवसर पर 'गुरुकुल-पत्रिका' का शताब्दी विशेषांक भी प्रकाशित कर रहा है ।

शिक्षा किसी भी राष्ट्र या समाज का वह मूलभूत स्तम्भ है जिससे राष्ट्र या समाज का भविष्य निर्धारित होता है । अच्छी शिक्षा के माध्यम से ही नागरिक अपने राष्ट्र के विकास को सुनिश्चित कर सकते हैं । गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी स्थापना से ही विद्यार्थियों के बीच राष्ट्र प्रेम का संदेश और साथ ही साथ भारतीय संस्कृति की अलख जगाए हुए हैं । मुझे पूरा विश्वास है कि यह विश्वविद्यालय भविष्य में भी इसी तरह से सफलता के नए आयाम स्थापित करता रहेगा और विद्यार्थियों का पथ आलोकित करता रहेगा । [redacted]

शताब्दी समारोह के लिए हार्दिक शुभकामनाएं ।

(सुषमा स्वराज)

यशपाल आर्य
अध्यक्ष
विधान सभा उत्तरांचल

कार्यालय: (0135) 678885
फैक्स: (0135) 678988
आवास: (0135) 746910
फैक्स: (0135) 746965

सं० 145/मा०अ०/वि०स०/02
दि० 8/4/02

प्रिय महोदय,

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपनी स्थापना का शताब्दी वर्ष मना रहा है तथा इस अवसर पर "गुरुकुल-पत्रिका" का भव्य शताब्दी विशेषांक प्रकाशित किया जा रहा है। मेरा विश्वास है कि स्वामी श्रद्धानन्द जी ने राष्ट्र प्रेम और भारतीय संस्कृति की ज्योति जलाने के लिए जिस गुरुकुल की स्थापना की थी, वह अपने कर्तव्यों के निर्वहन में खरा साबित हो रहा है।

मैं इस अवसर पर पत्रिका के सफल प्रकाशन की मंगल कामना करता हूँ।

6155

भवदीय,

(यशपाल आर्य)
अध्यक्ष
उत्तरांचल, विधान सभा

डा० महावीर,
कुलसचिव,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार।

भगत सिंह कोश्यारी
नेता प्रतिपक्ष



विधानसभा उत्तरांचल

विधान भवन,
देहरादून

सं. 172/कै.ने०प्र/वि.स०
दिनांक : 17/04/0

संदेश

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय स्थापना के शताब्दी समारोह पर मेरी हार्दिक शुभकामनायें स्वीकार करें। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इस अवसर पर विश्वविद्यालय की "गुरुकुल पत्रिका" का शताब्दी विशेषांक भी प्रकाशित हो रहा है। आशा है इस विशेषांक के माध्यम से शिक्षा जगत में प्राचीन गुरुकुल परम्परा की गरिमा का तो विस्तार होगा ही, पत्रिका युगानुकूल समाज दर्शन का भी मार्ग प्रशस्त करेगी।

पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामना।

(भगत सिंह कोश्यारी)

प्रो० महावीर जी
कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

प्रकाश पन्त
सदस्य, विधान सभा।
(पूर्व विधान सभा अध्यक्ष)

विधान सभा सचिवालय
उत्तरांचल

संख्याः
दिनांकः 4 अप्रैल, 200
देहरादून



प्रिय महोदय,

मुझे यह जानकर अतीव प्रसन्नता हो रही है कि आप "गुरुकुल पत्रिका" का शताब्दी विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं। गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय इस शोध पत्रिका के माध्यम से न सिर्फ भारतीय जीवन मूल्यों व संस्कृति के संवर्धन एवं रक्षा में अहम भूमिका निभा रहा है, वरन् भारतीय जड़ी बूटी एवं वनौषधियों के संरक्षण की दिशा में भी महती योगदान दे रहा है।

मेरा विश्वास है कि यह पत्रिका भारतीय जीवन मूल्यों एवं ज्ञान के संवर्धन में एक मील का पत्थर साबित होगी।

भवदीय,

(प्रकाश पन्त)

डा० महावीर,
प्रोफेसर संस्कृत विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार।

मदन कौशिक
सदस्य विधान सभा



सदस्य विधान सभा
उत्तरांचल

अ -3099

फोन : आवास 4258[illegible]3
कार्यालय : 427617
निवास: 224B, खन्ना नगर, हरिद्वार

शुभकामना

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, गुरूकुल पत्रिका का शताब्दी विशेषांक प्रकाशित कर रहा है मेरे लिए प्रसन्नता की बात है कि भारत की इस महान शिक्षण संस्था गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में मुझे शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आजादी प्राप्त करने के आंदोलन और आजादी के बाद के 55 वर्षों में भारतीय जीवन मूल्यों एवं संस्कृति के प्रति लगाव पैदा करने में गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का विशेष योगदान रहा है। आज उन्हीं विचारधाराओं को आगे बढ़ाने के लिए पत्रिका की सामग्री उपयोगी होगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

गुरूकुल पत्रिका शताब्दी विशेषांक के प्रकाशन के अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

Madan Kaushik
मदन कौशिक

सुरेश चन्द
विधायक

सदस्य विधान सभा
उत्तरांचल

5|4—71
अ-12124

73, न्यू हरिद्वार रोड
रुड़की-247 667
73380, 77455



माननीय,

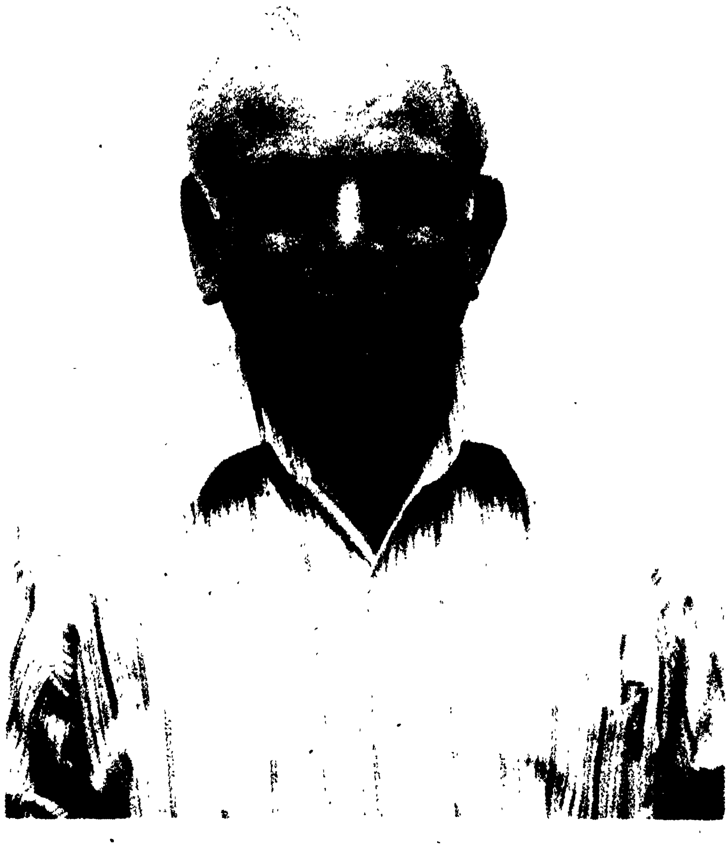
डा० महावीर
प्रधान सम्पादक

आपके पत्र द्वारा यह जानकर कि गुरूकुल कांगड़ी विश्वविधालय अपनी स्थापना का शताब्दी वर्ष मना रहा है और साथ ही साथ गुरूकुल पत्रिका 51वें वर्ष में प्रवेश कर चुकी है हार्दिक प्रसन्नता हुई। जहाँ पतित पावन गंगा के तरह उसी के तट पर बना गुरूकुल कांगड़ी विश्वविधालय ज्ञान की गंगा समस्त विश्व में बहा रहा है। वहीं गुरूकुल पत्रिका भी अपने माध्यम से ज्ञान की ज्योति जला रही है।

मैं गुरूकुल पत्रिका के 51वें वर्ष अंक की सफलता के लिए मां गंगा से प्रार्थना करता हूँ। एवं अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

धन्यवाद
शुभेच्छु

सुरेश चन्द जैन



विश्वविद्यालय के नव नियुक्त परिद्रष्टा श्री सदानन्द जी, अवकाश प्राप्त आई०ए०एस०।

वेदमञ्जरी

ब्रह्मणस्पतेः परामर्शः

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥

(ऋग्० १.४०.५)

ऋषिः कण्वः घौरः। **देवता** ब्रह्मणस्पतिः। **छन्दः** बृहती।

(ब्रह्मणस्पतिः) वेदज्ञानस्य अधिपतिः परमेश्वरः विद्वान् पुरुषश्च **(नूनं)** निश्चयेन, तद् **(उक्थ्यम्)** प्रशंसनीयं **(मन्त्रं)** परामर्शं **(प्र वदति)** प्रकृष्टरूपेण कथयति, **(यस्मिन्)** यत्र **(इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः)** इन्द्रवरुणमित्रार्यमाख्याः देवाः **(ओकांसि)** गृहाणि **(चक्रिरे)** कृण्वाना भवन्ति।

हे मानव! यदा त्वं कस्मिन्नपि विषये परामर्शमिच्छसि तदा किमर्थम् इतस्ततो भ्रमसि? ये स्वयमेव अज्ञाः अपूर्णाश्च सन्ति ते तुभ्यं किं परामर्शं दास्यन्ति? तेषां मतं प्राप्य तु त्वं परिभ्रष्ट एव भविष्यसि। अतः यदापि तव मनसि कर्तव्याकर्तव्यविषये संशय उत्पद्यते, तदा वेदज्ञानस्याधिपतेः परमप्रभोः शरणं गच्छ। अन्तर्मुखो भूत्वा सत्यहृदयेन स्वकीयां समस्यां तस्य पुरतो निवेदय। नूनमेव स तव मनसि ज्ञानालोकं प्रकटयिष्यति, संशयस्य भ्रान्तेर्वा सर्वा अपि कृष्णा घटा विच्छेत्स्यति। तमसि ज्योतिषः प्राप्त्यै त्वं ब्रह्मणस्पतिप्रदत्तान् वेदानपि द्रष्टुमर्हसि, यतस्तत्र प्रदत्तः परामर्शोऽपि ब्रह्मणस्पतेरेव परामर्शो भवति। अपि च वेदवेत्तारः प्राप्तानुभवाः सदाचारा मित्रभावभाविता विद्वज्जना अपि ब्रह्मणस्पतितुल्या एव सन्ति। साक्षाद् ब्रह्मणस्पतेः परमात्मनः प्रेरणां श्रोतुं त्वं समर्थो न भवसि चेद्, विदुषां शरणं गच्छ। तत्सकाशात् स्वसंशयान् निवारय।

ब्रह्मणस्पतेः मन्त्रे परामर्शे वा इन्द्रदेवः वरुणदेवः, मित्रदेवः अर्यमा देवश्च निवसति। इन्द्रः किल ऐश्वर्यस्य, उत्कर्षस्य, पराक्रमस्य, विजयस्य, साफल्यस्य च प्रतिनिधिरस्ति। वरुणः पापनिवारणस्य आदर्शो विद्यते। मित्रः खलु मित्रतायाः स्नेहस्य च प्रतिनिधित्वं कुरुते। अर्यमा हि श्रेष्ठान् अश्रेष्ठांश्च प्रति यथायोग्यव्यवहारस्य न्यायस्य वा देवोऽस्ति। ब्रह्मणस्पतेः परामर्शे एतेषां सर्वेषामपि देवानाम् आदर्शा निहिता भवन्ति। तं परामर्शं प्राप्य तमनुसृत्य च मानवः उत्कर्षवान् विजयी च जायते। स पापाद् बिभेति, इतरान् जनांश्च प्रति मैत्र्या न्यायेन च व्यवहरति।

आगच्छत, वयमपि संशयवेलायां ब्रह्मणस्पतिं प्रभुं, ब्रह्मणस्पतिं विद्वांसं च स्वकीयमन्तरङ्गं कुर्याम। तमेव पृच्छेम, तत एव प्रेरिता भवेम, तस्यैव च सन्देशं पालयेम।

आचार्य रामनाथ वेदालङ्कारः

सम्पादकीय............

जय जय जननि, कुलदेवि, तुझको बार-बार प्रणाम है।

कौन जानता था कि आज से सौ वर्ष पूर्व वीरभूमि पंजाब से अपने मन में संकल्प की अग्नि जलाकर विमल तोया गंगा के पावन तट पर एक महात्मा ने प्राचीन शिक्षा पद्धति पर आधारित गुरुकुल कांगड़ी रूपी जो बीजारोपण किया था, वह पुष्पित, पल्लवित होकर इतना विशाल रूप धारण करेगा? महापुरुषों की संकल्प शक्ति समाज और राष्ट्र का जीवन परिवर्तित कर देती है। महर्षि दयानन्द ने शिवरात्रि के दिन संकल्प लिया था—सच्चे शिव की खोज का, परतन्त्र भारत को स्वतन्त्र कराने का, नारी जाति के उद्धार का, वेद-ज्ञान के प्रचार-प्रसार का। विष के प्याले पिये, ईंट और पत्थर खाये, नाना प्रकार के कष्ट सहे किन्तु अपनी संकल्पाग्नि को क्षीण नहीं होने दिया। अपने आचार्य **महर्षि दयानन्द** से प्रेरणा लेकर **महात्मा मुंशीराम** ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति के माध्यम से भारत में नवजागरण का स्वप्न देखा और स्वप्न को साकार करने के लिए अपना तन, मन, धन सब कुछ स्वाहा कर दिया।

सौ वर्ष की यात्रा पूर्ण हुई, **"जीवेम शरदः शतम्"** की प्रार्थना साकार हुई, **"भूयश्च शरदः शतात्"** का शुभारम्भ हो रहा है। प्राचीन और अर्वाचीन विद्याओं की यह संगम स्थली **गुरुकुल शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन** के रूप में जहां उज्ज्वल भविष्य की ओर निहार रही है, वहीं स्मृतियों के झरोखों से सौ वर्ष के नाना प्रकार की उपलब्धियों से परिपूर्ण इतिहास का विहंगमावलोकन भी कर रही है।

४ मार्च १९०२ को हरिद्वार से तीन मील दूर कांगड़ी गांव के दक्षिण में गंगा के पूर्वी तट पर **महात्मा मुंशीराम** ने गुरुकुल की स्थापना की थी। २२ मार्च सन् १९२१ को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने प्रस्ताव स्वीकृत किया था कि इस गुरुकुल को एक ऐसे विश्वविद्यालय के रूप में विकसित किया जाये जिस में विभिन्न विषयों की उच्च शिक्षा दी जा सके। उस समय प्रबन्ध-कर्तृ सभा ने वेद महाविद्यालय, साधारण महाविद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय, कृषि महाविद्यालय एवं व्यवसाय महाविद्यालय प्रारम्भ करने का निश्चय किया था। इसके अतिरिक्त शिल्प महाविद्यालय की स्थापना का निर्णय किया गया था। यह विचार किया गया था कि प्रारम्भ में निम्नलिखित विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जायेगा—

(क) भारत के ग्रामोद्योग और गृहोद्योग

(ख) रासायनिक शिल्प (केमिकल टेक्नोलॉजी)

(ग) बिजली का काम

(घ) मैकेनिकल इन्जीनियरिंग

गुरुकुल संस्थापकों के स्वप्न साकार हुए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस शिक्षा संस्था को मानद विश्वविद्यालय का स्तर प्रदान कर प्राचीन शिक्षा पद्धति के उन्नायक स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि प्रदान की और गुरुकुल के यशस्वी स्नातकों के विविध विद्याओं में नैपुण्य को स्वीकार कर प्रगति के द्वार खोल दिये।

पराधीन भारत में स्वातन्त्र्य दीप जलाने वाले, आयुर्वेद के क्षेत्र में नेत्रदीपक उपलब्धियां प्राप्त करने वाले, हिन्दी, संस्कृत की पत्रकारिता में नये प्रतिमान स्थापित करने वाले, विज्ञान की पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित कर राष्ट्रीय एकता का शंखनाद करने वाले - वेद, संस्कृत, दर्शन, योग एवं प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की उच्चस्तरीय शिक्षा प्रदान कर देश का चरित्र उज्ज्वल करने वाले इस विश्वविद्यालय का इतिहास अत्यन्त गौरवपूर्ण है।

उस समय पराधीन भारत अंग्रेजी शिक्षा के विषमय प्रभाव से अपनी संस्कृति को अत्यन्त हीन ओर तुच्छ समझता हुआ, पाश्चात्य संस्कृति को अनुकरणीय और स्पृहणीय समझता था। घोर मानसिक दासता के कारण शिक्षित भारतीयों की आत्मगौरव की भावना विलुप्त हो रही थी। आत्महीनता की भावना के विरुद्ध गुरुकुल कांगड़ी पहला सफल विद्रोह था।

आत्महीनता की भावना के निराकरण के लिए अपने देश के प्राचीन साहित्य, संस्कृति, इतिहास और परम्परा का यथार्थ ज्ञान तथा अपने देश के महापुरुषों के प्रति अनन्य श्रद्धा का भाव आवश्यक था। गुरुकुल ने यही महान् कार्य किया।

प्राचीन भारतीय, जातीय जीवन में इतिहास के महत्त्व को भली भांति समझते थे। अतएव उन्होंने इतिहास को पञ्चम वेद कहा, उसे समस्त विद्याओं का प्रदीप माना और वेदार्थ के सम्यग् ज्ञान के लिए इतिहास की उपयोगिता स्वीकार की।

किन्तु बड़े दुर्भाग्य का विषय है कि हमने इतिहास की महत्ता को नहीं समझा और इतिहास के शुद्ध लेखन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। पञ्चम वेद के प्रति हमारी घोर उदासीनता रही। गुलामी की मानसिकता वाले इतिहास लेखकों ने पश्चिम का अनुकरण करते हुए आर्यों को बाहर से आया हुआ असंस्कृत, असभ्य, और जंगली तक लिखने में संकोच नहीं किया।

यह सत्य है कि ऐसा इतिहास हमारे देश के लिए व्यर्थ है। जिन इतिहासों में, हमारे पूर्वजों की तत्त्वचिन्ताओं, सांस्कृतिक विजयों, साहित्यिक कृतियों, धार्मिक परम्पराओं और हमारे जातीय जीवन की सम्पूर्ण वृत्तियों के विकास का वर्णन नहीं है, वे हमारे लिए कुछ मूल्य नहीं रखते।

आक्रमण की सूचियों, राजाओं की वंशावलियों, भयंकर युद्धों के रोचक एवं चित्ताकर्षक वर्णनों और दरबारी षडयन्त्रों का नाम इतिहास नहीं है। देश का सच्चा इतिहास तो देश को नयी स्फूर्ति देने वाला होना चाहिए। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने अपने स्थापना काल से इस ओर विशेष ध्यान दिया। **स्व. आचार्य रामदेव जी** द्वारा तीन खण्डों में लिखा गया **"भारत वर्ष का इतिहास"** इस दिशा में किया गया अद्‌भुत कार्य है। गुरुकुल के अन्य स्नातकों ने भी इस क्षेत्र में अविस्मरणीय कार्य किया है। **आचार्य रामदेव जी** के अतिरिक्त **डॉ. सत्यकेतु जी, डॉ. हरिदत्त वेदालंकार** आदि के द्वारा किया गया इतिहास लेखन का कार्य सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। गुरुकुल का विशाल **"पुरातत्त्व संग्रहालय"** इस सत्य का साक्षी है।

जैसे इतिहास लेखन की ओर हमने विशेष ध्यान दिया वैसे ही वेद, दर्शन, आयुर्वेद विषयक ग्रन्थ लेखन में इस संस्था का अभूतपूर्व योगदान है। **पं. धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड, स्वामी ब्रह्ममुनि, आचार्य अभयदेव, आचार्य चमूपति, पं. बुद्धदेव विद्यालंकार, आचार्य प्रियव्रत, डॉ. रामनाथ वेदालंकार, आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार** प्रभृति विद्वानों ने वेद विषयक जो ग्रन्थ लिखे, वे युगों-युगों तक आर्य जाति का मार्गदर्शन करते रहेंगे। सौ वर्ष की प्रगति यात्रा में इस राष्ट्रीय शिक्षण संस्था ने उच्चस्तरीय अध्ययन-अध्यापन, शोध लेखन के साथ–साथ, राष्ट्रीय जीवन में अपना गौरवशाली स्थान बनाया है। यही कारण है कि राष्ट्र के गौरवशाली व्यक्तित्व यहाँ पधारकर स्वयं को गौरवान्वित समझते रहें हैं। **राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पं. मोतीलाल नेहरू, पं. मदनमोहन मालवीय, श्री लाला लाजपतराय, श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित, पं. जवहारलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सेठ घनश्यादास बिड़ला, महात्मा हंसराज, साधु टी.एल. वासवानी, पं. गोविन्दवल्लभ पन्त, बाबू सम्पूर्णानन्द, डा. राधाकृष्णन्, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन, मुंशी प्रेमचन्द, डॉ. शान्तिस्वरूप भटनागर, श्रीमती इन्दिरा गांधी, श्री मोरारजी देसाई, श्री यशवन्तराव बलवन्तराव चह्वाण, ज्ञानी जैल सिंह, श्री चन्द्रशेखर** सदृश राष्ट्र नेता और समाजसेवी यहाँ समय–समय पर पधारते रहे हैं।

गुरुकुल की देश सेवा ओर साहित्य सेवा के मूल्यांकन के लिए एक बृहद् इतिहास ग्रन्थ के लेखन की आवश्यकता है। यहां के यशस्वी स्नातकों की जीवन के विविध क्षेत्रों में नेत्रदीपक उपलब्धियां हैं।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का एक अन्य परिसर बालिकाओं की उच्च शिक्षा, दीक्षा के लिए स्वनामधन्य **आचार्य रामदेव जी** ने देहरादून में स्थापित किया। इस गुरुकुल की स्नातिकाएं विभिन्न क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं। सम्प्रति **आचार्य रामदेव जी** की सुयोग्य सुपुत्री **आचार्या दमयन्ती जी** के कुशल मार्गदर्शन में **कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून**

प्रगति पथ पर अग्रसर है। बालिकाओं की उच्च शिक्षा के लिए, हरिद्वार में एक अन्य परिसर की व्यवस्था की गई है।

आज यह गुरुकुल सौ वर्ष की यात्रा पूर्ण कर नई सदी में प्रवेश कर रहा है। वेद, संस्कृत, दर्शन आदि विषयों की शिक्षा के साथ–साथ पर्यावरण, सूक्ष्म जीवविज्ञान, प्रबन्धन, अभियान्त्रिकी, कम्प्यूटर आदि की उच्च शिक्षा प्राप्त कर इस विश्वविद्यालय के स्नातक यशस्वी जीवन जी रहे हैं।

२५ अप्रैल से २८ अप्रैल २००२ तक "गुरुकुल शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन" के रूप में एक 'महाकुम्भ' का आयोजन किया गया है। इस में देश-विदेश के हजारों नर-नारी गुरुकुल के प्रति अपना सम्मान अभिव्यक्त करने आ रहे हैं। आर्य जनों को इस शिक्षण संस्था से बड़ी आशाएं है।

"आयेंगे खत अरब से जिनमें लिखा ये होगा,
गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।"

इस स्वप्न को देशवासी पुन: साकार होता हुआ देखना चाहते हैं।

वह वृक्ष सदा हरा-भरा रहता है जो अपनी जड़े भूमि में दृढ़ता के साथ जमाये रहता है, जिस वृक्ष का सम्बन्ध मूल से विच्छिन्न हो गया वह मुरझा जाता है। हम कुलवासियों को यह संकल्प पुन: दोहराना होगा कि नये ज्ञान-विज्ञान के आलोक से आलोकित होते हुए भी अपने मूल को अर्थात् वैदिक परम्पराओं को, प्राचीन गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को अपने जीवन मूल्यों को, विश्ववारा वैदिक संस्कृति को, उज्ज्वल इतिहास को, अपने राष्ट्र के महापुरुषों को , **देव दयानन्द** को, उनके महान् शिष्य अमर हुतात्मा **स्वामी श्रद्धानन्द** को और इस विश्वविद्यालय के आचार्यों की,, स्नातकों की गौरवमयी परम्परा को सदा स्मरण रखेंगे।

गुरुकुल शताब्दी अन्तर्राष्ट्रीय महासम्मेलन के ऐतिहासिक, सुखद अवसर पर **"गुरुकुल-पत्रिका"** का यह विशेषांक आत्मीय जनों के करकमलों में अर्पित करते हुए अपार हर्ष हो रहा हैं। **भारत के राष्ट्रपति महामहिम डॉ. के.आर. नारायणन, उत्तरांचल के जनप्रिय राज्यपाल महामहिम डॉ. सुरजीत सिंह बरनाला एवं सूचना प्रसारण मन्त्री श्रीमती सुषमा स्वराज ने अपनी स्नेहिल शुभकामनाओं से हमारा उत्साहवर्धन किया है। हम हृदय से कृतज्ञ है।**

उस प्रभु का कोटि-कोटि धन्यवाद जिसकी कृपा से यह छोटा सा उपहार आप को समर्पित किया जा रहा है।

प्रो. महावीर

गुरुकुलोद्देश्यानि

(१)

लोके तपोधनपुनर्जननं यथा स्यात्,
तेजोविहीनजनताविलयो यथा स्यात्।
सद्-ब्रह्मचर्यचरणप्रसरो यथा स्यात्,
एतत्तथा गुरुकुलं विबुधा निबद्धम्।।

(२)

आचार्यशिष्यजनभावनया विहीनां,
कीरोपमाज्ञजनमात्रविभूतिदक्षाम्।
शिक्षां विचार्य मनसा किल दूषयित्रीम्,
एतत्तथा गुरुकुलं विबुधा निबद्धम्।।

(३)

याः कारणं सकलबोधकलोदयानाम्,
आद्यो गुरुःस भगवांश्च यदीयवक्ता।
तासां कथा निगमपुण्यगिरां जगत्यां,
कर्त्तुं पुनर्गुरुकुलं विबुधा निबद्धम्।।

पं. हरिश्चन्द्रः विद्यालङ्कारः
(गुरुकुलस्य प्रथम स्नातकः)

भावार्थ—

गुरुकुल का उद्देश्य फिर से तपोधन व्यक्तियों को उत्पन्न करना, उत्तम ब्रह्मचर्य का प्रचार करना, गुरु-शिष्य भावना से रहित तोते की तरह रटना सिखाने वाली शिक्षा पद्धति को दूषित समझ कर सच्ची शिक्षा का प्रचार करना और संसार में ईश्वरीय वाणी रूपी वेदों की पुण्य कथा को फिर से प्रचलित करना है।।

अहो चारित्र्यपद्धतिर्विचित्रा खलु स्वामिनः श्रद्धानन्दस्य

संसारे समये समये महान्तो महानुभावा जायन्ते वर्धन्ते भासन्ते स्वीकायामभिनवां ख्यातिं विपुलां विचित्रां जीवनलीलां संप्रसार्य भुवं विहाय प्रयान्ति। केचन विरला मनुष्या देहमवाप्य देवत्वमुपेत्य तानि तानि कर्मजातानि प्रसारयन्ति यानि तेषु लोकान्तरमुपगतेष्वपि संसारे तथैव प्रसरन्ति यथा प्राक्। स्वामिश्रद्धानन्दो महतां पुरुषाणां प्रथमः पुरुष आसीद् यस्य जीवनं समवेक्ष्य बहवः पुरुषाः पुरुषविशेषा जाताः।

स्वामिश्रद्धानन्देन श्रद्धाबलेन सर्व लब्धम्। स्वामिनो दयानन्दस्य दर्शनं कृत्वा स्वामिश्रद्धानन्दस्य जीवने कश्चित् चमत्कारविशेषः प्रादुरभूत्। गुरुकुलपदं प्राक्तनं पदं विद्यते। भारतीयवाङ्मये पदमिदं भृशं समुपलभ्यते। स्वामिना श्रद्धानन्देन लार्डमैकालेशिक्षापद्धतौ बहवो दोषा दृष्टास्तान् दोषानपाकर्त्तुं गुरुकुलशिक्षापद्धतिरेव समर्था भवतीति विचार्य गुरुकुलस्थापना कृता। यदा गुरुकुलस्थापनावसरे स्वामिना विचारा दत्तास्तदा सर्वे जना–स्तद्विचारे कृतादराः। परं तदानीमार्यजनैः कथितम् यद् गुरुकुलं स्थापयितुं धनमपेक्ष्यते तथैवापेक्ष्यते छात्रसंख्या। वचांसि समाकर्ण्य तेन स्वतनयौ गुरुकुले प्रेषितौ समग्रं धनं च दत्तम्। गुरुकुले छात्रजीवनं व्यतियाप्य ये स्नातका बहिर्गताः तैः सर्वत्र स्वकर्मणा गुरुकुलस्य कीर्तिः प्रसारिता। गुरुकुलमुन्नेतुं स्वामिना निखिलमपि जीवनं दत्तम्। स्वामिश्रद्धानन्दस्य गुरुकुलपद्धतिरियं दिक्षु प्रसरति। सम्प्रति प्रान्ते प्रान्ते देशे देशे गुरुकुलशिक्षायाः प्रसारः संदृश्यते। गुरुकुले शिक्षाकाले आचार्यस्य ब्रह्मचारिणश्च जीवनं तपश्चर्यापूतं भवति। गुरुकुलपदं स्वामिश्रद्धानन्दं प्रकाशयति स्वामिश्रद्धानन्दपदं च गुरुकुलं प्रकाशयति। स्वामिना शिक्षाक्षेत्रे या क्रान्तिपताका समुत्तोलिता तामेव सर्वे सज्जनाः समुत्थापयन्ति। स्वामिना श्रद्धानन्देन भारतोत्थानाय शुद्धि-आन्दोलनं प्रारब्धम्। अस्मिन् आन्दोलनक्रमे बहूनि दुःखानि समनुभूतानि, परं भारतमखण्डं कर्तुं तदैक्यावधारणायां शुद्धि-आन्दोलनं नितरामपेक्ष्यते स्म। यदि शुद्धि-आन्दोलनं खण्डितं नाभविष्यत् तर्हि देशस्य या दुःखमयी दशा विलोक्यते सा नाभविष्यत्। स्वामिश्रद्धानन्दस्य निखिलं जीवनवृत्तं पठित्वा पाठकस्य मनसि समुत्पद्यते

विचारो यत् सर्वे जनाः पतितं जीवनं परित्यज्य समुन्नतं जीवनं लब्धुं पातुं च प्रभवन्ति। एवंविधा विलक्षणा एवं पुरुषा भवन्ति यैः स्व- जीवनलेखने या त्रुटिस्तज्जीवने आसीत् सा अविकलतया लिखिता। एकं दोषमपि पुरुषो न प्रकटयति, परं येन सर्वेऽपि दोषाः प्रकटिताः। सः कियान् महान् आसीत्। स्वामिश्रद्धानन्दः श्रद्धाया मूर्तिरभूत्। तद्हृदये भारतं नहि विश्वं वसति स्म। तद्वाचि सर्वाणि शास्त्राणि सूक्तानि सूत्राणि वेदवचांसि वसन्ति स्म। तन्नेत्रयोश्चकास्ति स्म भारतमाता, तल्ललाटे भारतीया संस्कृतिस्तिलकायते स्म, तन्मूर्ध्नि भारतमनीषिणां मान भासतेस्म, तदीये प्रशस्ते चिन्तने स्वामिदयानन्दस्य चिन्तनं दृश्यते स्म। एवंविधस्य स्वामिनः श्रद्धानन्दस्य जीवनं विलक्षणं श्रद्धामयं समुल्लासकरं दुःखहरं प्रकाशकरं विविधविद्याविकासकं चासीत्। तच्चरित्रं सामान्यजनचरित्रं संस्पृश्य महतोऽपि महतो महच्चरित्रं संस्पृशति। नूनं खलु विचित्रा तच्चारित्र्यपद्धतिः।

आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री

कुलपतिः, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालयः,

हरिद्वारम्



अतिथि भवन का शिलान्यास करते हुए महामहिम श्री सुरजीत सिंह बरनाला, रा
एवं विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पं० हरबंशलाल जी शर्मा।



गुरुकुल कांगड़ी वि०वि० के शताब्दी समारोह शुभारम्भ के अवसर पर श्री बच्ची सिंह रावत, केन्द्रीय राज्यमंत्री-मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार का स्वागत करते हुए कुलसचिव डॉ० महावीर।

अमर हुतात्मा–स्वामी श्रद्धानन्द

१९ वीं शताब्दी में भारत में अनेक सुधारवादी आन्दोलन प्रारम्भ हुए। बंगाल के अन्दर ब्रह्मसमाज ने धार्मिक अन्धविश्वास और रूढ़ियों से संघर्ष किया, तो महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज ने सुधारवादी कार्यों का श्रीगणेश किया। पारसियों ने पारसी धर्म में विद्यमान कुरीतियों को दूर करने के लिए सन् १८५१ में "रहनुमाए माजदायस्नान" नामक संस्था की स्थापना की। सुधारवादी कार्यक्रमों को विशाल और व्यापक रूप महर्षि दयानन्द सरस्वती ने १८७५ में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना करके दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म पंजाब के जालन्धर जिले के तलवन नामक ग्राम में अप्रैल सन् १८५६ में हुआ। इनके पिता श्री लाला नानकचन्द जी एक पुलिस अधिकारी थे। स्वामी श्रद्धानन्द का संन्यास से पूर्व का नाम मुंशीराम था। माता के बहुत लाड़–प्यार और पिता की व्यस्तता तथा बुरे लोगों की संगति के कारण वे अनेक दुर्व्यसनों से ग्रस्त हो गए जिससे धार्मिक प्रवृत्ति के माता–पिता सदैव मुंशीराम के बारे में चिन्तित रहते थे।

महर्षि के प्रभाव में

इस बीच महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने क्रान्तिकारी सामाजिक सुधार आन्दोलन के प्रचारार्थ बरेली पहुँचे। उन दिनों लाला नानकचन्द भी वहीं थे। महर्षि दयानन्द के उपदेश के समय किसी प्रकार की शान्ति भंग न हो, इसलिए सरकार ने पुलिस अधिकारी लाला नानकचन्द की सभा स्थल पर ड्यूटी लगाई। अपनी ड्यूटी पर रहते हुए उन्होंने स्वामी जी के विचार सुने, उससे प्रभावित हुए और घर आकर अपने पुत्र से कहा– 'बेटा मुंशीराम, एक संस्कृत का विद्वान् संन्यासी अपने शहर में आया है, जो बहुत तर्कसंगत व्याख्यान देता है। अनेक अंग्रेज अधिकारी भी वहाँ पर उनका व्याख्यान सुनने के लिए आते हैं। तुम भी चलो, तुमको अच्छा लगेगा।" पिता की बात सुनकर मुंशीराम ने हँसते हुए कहा– "पिताजी संस्कृत का विद्वान् तर्क और बुद्धिसंगत बात कहेगा, मुझे तो विश्वास नहीं होता, फिर भी आप कहते हैं, तो मैं कल सुनने अवश्य चलूँगा।"

जब लाला मुंशीराम अपने साथियों के साथ सभा स्थल पर पहुँचे, तो वहाँ उन्होंने श्रोताओं में पादरी स्कॉट तथा तीन अन्य यूरोपियनों को देखा। ध्यानपूर्वक महर्षि दयानन्द सरस्वती का प्रवचन सुना। उन्होंने अपनी शंकाओं का समाधान भी किया। एक दिन शंका समाधान के क्रम में मुंशीराम ने हृदय की बात दयानन्द सरस्वती से कही कि आप ईश्वर के अस्तित्व के विषय में मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर मुझे चुप तो कर देते हैं किन्तु मुझे विश्वास नहीं होता कि ईश्वर

है। दयानन्द सरस्वती ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया— "मुंशीराम, तुम्हारा, काम प्रश्न करने का है और मेरा काम उत्तर देना है। *ईश्वर में विश्वास तो ईश्वर की कृपा से होता है।* जब कभी समय आएगा, तब ईश्वर के अस्तित्व का विश्वास भी हो जाएगा।"

स्वामी दयानन्द सरस्वती के इस उत्तर से नवयुवक मुंशीराम बहुत प्रभावित हुए। स्वामी दयानन्द की जीवनचर्या ने उनके जीवन को बदल दिया और इसके पश्चात् नास्तिक, शराबी, मांसाहारी मुंशीराम आस्तिक मुंशीराम ही नहीं बने, अपितु जीवन में महात्मा मुंशीराम और स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में विश्वविख्यात हुए।

स्वराज्य, स्वदेशी वस्तुओं और स्वभाषा के प्रयोग की प्रेरणा स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रंथों से दी, जिसे पढ़कर मुंशीराम ने इसे क्रियात्मक रूप देने का निश्चय किया।

गुरुकुल की स्थापना

वे चाहते थे कि कुछ ऐसी शिक्षण संस्थाएँ खोली जाए, जिनमें केवल शब्द और विषय ज्ञान ही नहीं, अपितु विद्यार्थी की शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियों का विकास भी हो तथा वहाँ पढ़ने वाला विद्यार्थी राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए महात्मा मुंशीराम ने ४ मार्च १९०२ में गुरुकुल की स्थापना करके शिक्षा क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी अध्याय का सूत्रपात किया।

महात्मा मुंशीराम स्वराज्य और स्वाधीनता की प्रेरणा गुरुकुल के विद्यार्थियों को हमेशा देते रहते थे। गुरुकुल के विद्यार्थियों ने एक महीने तक निरन्तर एक समय का भोजन बचाकर और दूधिया बाँध पर पत्थर ढोकर १५०० रुपया इकट्ठा किया और वह राशि अफ्रीका में संघर्षरत मोहनदास कर्मचन्द गाँधी (महात्मा गांधी) को भेजी। तब महात्मा गाँधी ने लिखा था कि "यह राशि इस तथ्य का प्रतीक है, कि आप जैसा महात्मा स्वतंत्रता के लिए विद्यार्थियों में ऐसे महान् संस्कार डाल रहा है, जो अपने देश पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए कटिबद्ध हैं। मैं आपके दर्शन करना चाहता हूँ, आपके चरणों में अपना सिर रखना चाहता हूँ। गुरुकुल के इन विद्यार्थियों से मिलना चाहता हूँ। मैं स्वदेश आकर सर्वप्रथम गुरुकुल आऊँगा और आपके दर्शन करूँगा।" महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका से जब भारत आए, तब गुरुकुल, हरिद्वार भी गए। उन्होंने महात्मा मुंशीराम के चरणों में अपना सिर झुकाया। महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने उन्हें "महात्मा" कहते हुए हाथों से उठा लिया, तभी से महात्मा गाँधी नाम से विश्वविख्यात हुए।

राष्ट्रभाषा के प्रबल समर्थक

राष्ट्रभाषा हिन्दी ही होनी चाहिए, उसके लिए इसका प्रयोग और प्रचार भी आवश्यक है। उसको व्यावहारिक रूप देने का शुभारम्भ स्वामी श्रद्धानन्द ने किया। जलियाँवाला कांड के बाद अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। कांग्रेस के इतिहास में यह पहली घटना थी, जब स्वागताध्यक्ष ने अपना स्वागत भाषण हिन्दी में पढ़ा।

उससे पूर्व हिन्दी राष्ट्रभाषा हो, यह केवल प्रस्ताव तक ही सीमित था। प्रयोगात्मक रूप साहसी स्वामी श्रद्धानन्द ने देकर राष्ट्रीय नेताओं का मार्गदर्शन किया। पंजाब प्रान्त में उर्दू का अधिक प्रचार था। हिन्दी के प्रचार को व्यापक बनाने के लिए गुरुकुल से आपने 'सद्धर्मप्रचारक' हिन्दी का मासिक पत्र निकाला। अपने सुपुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति को प्रेरणा देकर दिल्ली से ''अर्जुन'' दैनिक पत्र निकलवाया। यह पहला समाचार–पत्र था, जो दिल्ली से हिन्दी भाषा में निकला।

संकल्प के धनी

शिक्षा के विषय में महात्मा मुंशीराम ने स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार "सत्यार्थ प्रकाश" में पढ़े। गुरुकुल का वर्णन करते हुए स्वामी दयानन्द ने लिखा कि "जहाँ राजकुमार और निर्धन का बेटा दोनों के लिए एक समान आसन, भोजन, वस्त्रादि हों तथा गुरु उनका माता–पिता के समान ध्यान रखते हुए उनको शिक्षा दे, विद्या प्राप्ति का संस्थान शहरों के भीड़–भरे वातावरण से दूर एकान्त शान्त स्थान में होना चाहिए।"

मुंशीराम ने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपया एकत्र नहीं कर लूंगा, तब तक घर पर नहीं आऊँगा। चार मास के भीतर ही चालीस हजार रुपया एकत्र कर लिया। हरिद्वार के निकट कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की गयी।

मुंशीराम ने घोषणा की और सबसे पहले अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र को गुरुकुल में प्रविष्ट कराया तथा नेताओं को संकेत दिया कि जो काम जनता से कराना चाहते हो, वह पहले स्वयं करो बाद में जनता से कहो; तभी प्रभाव होगा। यही मुंशीराम (स्वमी श्रद्धानन्द) ने किया। इतना ही नहीं, अपितु अपनी वकालत छोड़कर अहर्निश गुरुकुल के उत्थान में लग गए। गुरुकुल का इतना प्रचार हुआ कि १९२३ में निर्वाचित बिटेन के भावी प्रधान मंत्री रैम्से मैकडानल्ड जब भारत आए तो गुरुकुल देखने गए। १९१४ में उन्होंने गुरुकुल और स्वामी श्रद्धानन्द के विषय में लिखा कि ***"वर्तमान काल में अगर किसी कलाकार को प्रभु यीशु की मूर्ति बनानी हो तो मैं जीवित माडल स्वामी श्रद्धानन्द का नाम लूँगा। मध्य युग के किसी चित्रकार को अगर सेंट पीटर का चित्र बनाना हो, तो मैं उसे स्वामी श्रद्धानन्द की भव्य मूर्ति देखने को कहूँगा।"***

अंग्रेज सरकार से बिना सहायता लिए गुरुकुल चलाना, सब विषयों का ज्ञान स्वदेशी भाषा में देना, छात्रों को सरकारी डिग्रियाँ देना, राष्ट्रीय नेताओं का गुरुकुल में आना, यह सब अंग्रेज अधिकारियों के लिए आश्चर्यजनक था। वे गुरुकुल के विषय में विविध कल्पनाएँ किया करते थे। एक बार एक अधिकारी गुरुकुल में आया और उसने स्वामी श्रद्धानन्द से कहा कि आप यहाँ बम बनाते हैं। स्वामी जी ने उत्तर देते हुए कहा: "हाँ मैं बम बनाता हूँ, और ये बम आपके सामने हैं", कहते हुए उन्होंने गुरुकुल के छात्र दिखाए और कहा कि यहाँ पढ़ने वाला हर एक विद्यार्थी विदेशी सरकार को जड़ से उखाड़ने के लिए एक बम का कार्य करेगा। स्वामी श्रद्धानन्द के निर्भीक शब्दों को सुनकर अंग्रेज अधिकारी निरूत्तर हो गया।

आदर्श व्यक्तित्व

सारी मनुष्य जाति एक है। जन्म से कोई छोटा या बड़ा या ऊँचा नहीं है। जन्मगत जात–पाँत, हिन्दू–मुस्लिम, सिख–ईसाई, ये सब मनुष्यों के बनाए हुए विभाग हैं, ईश्वरीय

व्यवस्था में सब एक हैं, इस मान्यता को स्वामी श्रद्धानन्द ने हमेशा ही ध्यान में रखा। अपने सभी पुत्र–पुत्रियों के अन्तर्जातीय विवाह कराए। एक ओर जहाँ हिन्दू मन्दिरों में उपदेश दिया व आर्य समाज का प्रचार किया, वहीं दूसरी ओर दिल्ली की जामा मस्जिद के इतिहास में यह पहली घटना थी कि सन् १९१९ में उन्होंने मुसलमानों को वहाँ से उपदेश दिया।

गुरुकुल में रहते हुए उन्होंने सभी का उदारता से स्वागत किया। स्वामी शंकराचार्य (भारतीय कृष्णतीर्थ) गुरुकुल में अपनी पूजा करते रहे; मुसलमान भाइयों ने पाँच वक्त अपनी नमाज़ अदा की। ईसाई पादरियों ने अपने धर्म के अनुसार उपासना की। सिखों के गुरुद्वारों को महंतों के हाथों से मुक्त कराने पर स्वामी श्रद्धानन्द ने भी उनके साथ सत्याग्रह किया और उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता दिखवाई। गुरु का बाग के नाम से वह सत्याग्रह सिख समुदाय में आज भी प्रसिद्ध है।

अपने व्यक्तिगत जीवन में वे हमेशा तप और त्याग के मार्ग पर चलते रहे। चारों आश्रमों को वैदिक व्यवस्थानुसार उन्होंने अपनाया। सन् १९१७ में गुरुकुल में कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर संन्यास की दीक्षा ली। संन्यास लेने के पश्चात् आप सार्वजनिक सेवा में जीवन लगाने हेतु गुरुकुल छोड़कर दिल्ली आ गए।

वीर योद्धा

स्वाधीनता आन्दोलन में कांग्रेस का ४३वाँ राष्ट्रीय अधिवेशन, जो अमृतसर में हुआ, विशेष महत्त्व रखता है। जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में वैशाखी के पुण्य अवसर पर हजारों निर्दोष भारतीयों को बिना चेतावनी के गोलियों से भून दिया था, जिससे भारतीय स्वाधीनता प्रेमी घबराए हुए थे। उनके मानस को बल देने और विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए यह अधिवेशन बुलाया गया था। उसकी सारी व्यवस्था का उत्तरदायित्व स्वामी श्रद्धानन्द को सौंपा गया और उन्हें स्वागत समिति का अध्यक्ष बनाया गया। अधिवेशन की पूरी तैयारियाँ हो गई थीं, कि तभी मूसलाधार वर्षा ने सारे तम्बू उखाड़ दिए। शहर की गलियों में घुटनों तक पानी भरा था, और दूसरे दिन अधिवेशन के लिए १२ विशेष ट्रेनें प्रतिनिधियों की आनी थीं। स्वामी श्रद्धानन्द ने अमृतसर नगरवासियों को प्रेरणा दी और सारे प्रतिनिधि अमृतसर नगरवासियों के घरों के अतिथि बने। कांग्रेस का महान् अधिवेशन प्राकृतिक विपदा के बावजूद सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द ने कांग्रेस के इतिहास में ***सर्वप्रथम स्वागत भाषण हिन्दी*** में दिया। सम्मेलन में अछूतोद्धार का प्रस्ताव रखा गया। रोलेट ऐक्ट के विरोध में गांधी जी ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया, हड़ताल हुई, जुलूस निकाले गये।

दिल्ली में चाँदनी चौक में जुलूस आगे बढ़ रहा था, जिसका नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे थे। अंग्रेज सैनिकों ने बन्दूकें तान दीं, तब स्वामी श्रद्धानन्द आगे आए और ***अंग्रेज सैनिकों के सामने खड़े होकर छाती खोलकर उन्हें ललकारते हुए कहा— "साहस है तो पहले***

गोली मुझ पर चलाओ।" स्थिति बड़ी भयानक हो गई। एक वीर योद्धा हजारों योद्धाओं के साथ विदेशी आक्रान्ताओं से मुकाबला कर रहा था। सरकार घबराई और सैनिकों को पीछे हटाने का आदेश दिया। इस प्रकार इस वीर योद्धा ने देश को नया साहस एवं नेतृत्व दिया।

शुद्धि आन्दोलन

देश के स्वाधीनता के आन्दोलन में संकीर्ण मस्तिष्कों ने साम्प्रदायिक वातावरण बनाकर बाधा उपस्थित की। हिन्दू–मुस्लिम दंगे होने लगे। बलात् व प्रलोभन से हिन्दुओं को मुसलमान व ईसाई बनाया जाने लगा। इस कार्य को रोकने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द ने निर्भीक कदम उठाया। ***हिन्दुओं से मुसलमान, ईसाई बने लोगों को शुद्धि आन्दोलन द्वारा पुन: हिन्दू धर्म में दीक्षित किया।***

इसी क्रम में कराची की असगरी बेगम नामक एक मुस्लिम महिला अपने बच्चों के साथ दिल्ली आई और उसने हिन्दू धर्म स्वीकार किया और उसका नाम शान्ति देवी रखा गया। उसके पिता और पति ने शान्ति और स्वामी श्रद्धानन्द पर मुकदमा चलाया। ४ दिसम्बर १९२६ को मुकदमे का फैसला सुनाया गया, जिसमें शान्ति देवी की जीत हुई। इससे कुछ साम्प्रदायिक लोग स्वामी श्रद्धानन्द से चिढ़ गए और उनको जान से मारने की धमकियाँ देने लगे। जो वीर योद्धा अंग्रेजों की संगीनों से नहीं डरा, वह इन धमकियों से क्या डरता? स्वामी श्रद्धानन्द ने इन धमकियों की ओर ध्यान नहीं दिया और वे अपने कार्य में लगे रहे।

२३ दिसम्बर १९२६ को अब्दुल रशीद नामक व्यक्ति उनसे मिलने आया। वे बीमार थे, फिर भी उसको मिलने का समय दिया और उस आततायी ने उन पर गोलियाँ चलाई और वीर योद्धा स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या कर दी। उस समय गोहाटी में काँग्रेस का अधिवेशन चल रहा था। अधिवेशन की कार्यवाही रोक दी गई और शोक प्रस्ताव पारित किया गया। स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति अपने उद्गार व्यक्त करते हुए गाँधी जी ने 'यंग इंडिया' में लिखा था कि ***'वे एक वीर योद्धा थे, वीर की तरह जीवित रहे। वीर कभी चारपाई पर नहीं मरता, वह तो युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त होता है।*** उनकी मृत्यु भी वीर की भाँति धर्मयुद्ध के मैदान में हुई। उन्होंने वीरगति प्राप्त की, उनकी वीरता से मुझे ईर्ष्या होती है।'

कैप्टन देवरत्न आर्य
प्रधान, सार्वदशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
सी–ब्लाक, पंखा रोड, जनकपुरी,
नई दिल्ली–११० ०५८

वैदिक वाङ्मय में प्रबन्धन

भारतीय मनीषा ने चारों वेदों को सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का उद्‌गम स्थान मानकर प्रत्येक विषय का मूल वेदों में खोजने का प्रयास किया है। महर्षि मनु, वाल्मीकि, व्यास, दयानन्द आदि ऋषियों ने एक स्वर से वेदों की प्राचीनता, सर्वविद्यामयता एवं कल्याणकारिता को स्वीकार किया है। वेद के व्याख्याकारों ने वेदमन्त्रों में दर्शन, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, भौतिकी, रसायन शास्त्र, वनस्पति विज्ञान, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विविध विद्याओं के सूत्र खोजे हैं। यद्यपि इन विषयों पर आधुनिक समय में व्यापक अनुसन्धान हो रहा है और मानव विज्ञान के उत्कर्ष पर पहुंच रहा है। पोखरण में किया गया परमाणु विस्फोट इसका ज्वलन्त प्रमाण है। विज्ञान के इस उत्कर्ष को देखकर भारतीयों के मन में यह विचार कभी नहीं आना चाहिए कि प्राचीन काल में हम विज्ञान शून्य थे। प्राचीन भारत की नेत्रदीपक वैज्ञानिक उपलब्धियों के विषय में पढ़, सुनकर आश्चर्य होता है। एक स्थान पर बैठे हुये संजय किसी वैज्ञानिक यन्त्र से दूर-दूर तक फैली हुई कौरव-पाण्डव सेना के मध्य हो रहे युद्ध का अक्षरश: प्रामाणिक वर्णन धृतराष्ट्र से करते हैं। श्रीराम लङ्का पर विजय प्राप्त कर जल, थल और नभ में समान रूप से अव्याहत गति से चलने वाले संकल्प शक्ति से गतिमान् पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या आते हैं। विज्ञान का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसमें प्राचीन भारत के वैज्ञानिक अग्रणी न रहे हो।

वर्तमान समय को आर्थिक युग कहा जाता है। सम्पूर्ण विश्व धनार्जन की दौड़ में सम्मिलित हो चुका है। अर्थ से समस्त सुखों की प्राप्ति की भावना सुदृढ़ होती जा रही है। आज अर्थ प्राप्ति का सबसे प्रमुख साधन बन गया है—उद्योग अथवा व्यापार। नाना प्रकार के उद्योगों का विकास इतनी तीव्रता से हो रहा है कि सम्पूर्ण विश्व औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा में उतर आया है। यातायात एवं दूर संचार के प्रभावशाली संसाधनों से सम्पूर्ण संसार एक गांव सा बन गया है। वेद की उक्ति चरितार्थ हो रही है—**"यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्"**। जैसे-जैसे उद्योगों का विस्तार हुआ, नये-नये उत्पादों का निर्माण होने लगा, वैसे-वैसे उन उत्पादों को अच्छे मूल्य पर बाजार में कुशलतापूर्वक बेचने की योजनाएं उद्योग-जगत् में बनने लगीं। लघु-उद्योगों का स्थान बड़े-बड़े कारखानों ने ले लिया, इनमें बहुत बड़ी पूंजी का निवेश किया गया, आधुनिकतम तकनीक का प्रयोग और कारखानें की विशालता के अनुरूप विविध प्रकार की योग्यता रखने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी।

अब समस्या यह हुई कि इन सब को अनुशासित सुव्यवस्थित रखते हुए उत्पाद कैसे बढ़ाया जाये? उत्पादों की गुणवत्ता में वृद्धि कैसे हो? उत्पादों को बेचने के लिए बाजार की खोज

कैसे की जाये? अधिक से अधिक लाभ कैसे प्राप्त हो? इन समस्त प्रश्नों के समाधान के लिए **'प्रबन्धन'** नामक एक विषय स्वतन्त्र रूप से प्रकाश में आया। इस विषय पर व्यापक अध्ययन, चिन्तन, मनन और अनुसन्धान किया गया। आज के अर्थोन्मुख उद्योग प्रधान विश्व में इस विषय का बड़ी तेजी से विस्तार हो रहा है। अर्थशास्त्र, वाणिज्य, समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञानादि के विद्वानों ने गहन अनुसन्धान कर प्रबन्धन के विभिन्न पक्षों पर उत्तमोत्तम ग्रन्थों का निर्माण किया।

प्रबन्धन का मुख्य लक्ष्य है- अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर धन अर्जन करना और उससे भौतिक साधन प्राप्त कर सुख भोगना। स्वाभाविक रूप से भारतीय मस्तिष्क में प्रश्न उत्पन्न होता है क्या यही शाश्वत सुख का मार्ग है? क्या धन से मानव जीवन पूर्णता को प्राप्त कर लेता है? क्या हमारा प्राचीन वैदिक वाङ्मय इसका अनुमोदन करता है? ऐसे में महर्षि याज्ञवल्क्य का सन्देश स्मरण हो आता है– **"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्य:"**। केवल वित्त से मानव की तृप्ति नहीं हो सकती। वैदिक चिन्तनधारा में केवल अर्थ प्राप्ति मानव जीवन का लक्ष्य नहीं है। अपितु धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूपी चार पुरुषार्थों की प्राप्ति मानव का ध्येय है। मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य है-शाश्वत सुख या पूर्ण आनन्द की प्राप्ति। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वेदों में कुछ नैतिक मूल्य निर्धारित किए गये थे। राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि के कर्त्तव्य निर्धारित किए गये थे। व्यक्ति और समाज तथा स्वामी और सेवक के सम्बन्धों को परिभाषित किया गया था। यदि वर्तमान प्रबन्धन व्यवस्था में इन नैतिक मूल्यों को समाहित कर लिया जाये तो विस्मित कर देने वाले सुखद परिणाम प्रकट होंगे। इस संक्षिप्त लेख में कतिपय बिन्दुओं पर विचार करना उपयोगी होगा। पश्चिमी प्रबन्धन मुख्य रूप से लाभोन्मुख माना जाता है। जापान का प्रबन्धन देश-भक्ति से अनुप्राणित, कार्यकुशलता से परिपूर्ण एवं लाभोन्मुख कहा जाता है। जबकि भारतीय प्रबन्धन वैयक्तिक एवं सामाजिक आध्यात्मिक तथा भौतिक समृद्धि से संपन्न है। वेद में प्रार्थना की गई है–**"वयं स्याम पतयो रणीणाम्।"** हम धन-ऐश्वर्यों के स्वामी हों। यहां एकवचन का प्रयोग न कर बहुवचन का प्रयोग किया गया है। धनप्राप्ति का मार्ग छल-कपट से पूर्ण न हो अपितु सुपथ से हम धन के स्वामी बनें। **"अग्ने नय सुपथा राये।"**

वैदिक विचारधारा उतना धन अर्जित करने की अनुमति प्रदान करती है, जिससे जीवनयात्रा सुखपूर्वक सम्पन्न हो सके और परोपकार के कार्य भी होते रहें। असीम धन की पिपासा मानव को कुपथगामी बना देती है, वह स्तेन बन जाता है। कहा भी है–

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

नैतिक मूल्यों पर आधारित प्रबन्धन व्यवस्था सर्वोत्तम है। इस व्यवस्था का प्रथम सोपान है–

(१) कर्मयोग– यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कर्मयोग का उपदेश दिया गया है–

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।"

सम्पूर्ण गीता इसी एक मन्त्र की व्याख्या है। जीवन में कोई भी कार्य करते समय की जाने वाली भावना का बड़ा प्रभाव होता है। किसान दिनभर हल चलाता है, खूब परिश्रम करता है फिर भी उसके अंग–प्रत्यंग सुडौल नहीं बन पाते, जबकि थोड़ी देर नियमित रूप से व्यायाम करने वाला पहलवान सुगठित शरीर का स्वामी बन जाता है। क्योंकि व्यायाम करते समय प्रतिक्षण उसके मन में शरीर को स्वस्थ, सुन्दर और सुडौल बनाने की भावना रहती है। इसी प्रकार उत्कृष्ट भावों से युक्त होकर किये जाने वाले कार्यों का फल अत्यन्त मधुर होता है। यदि कर्म को योग अथवा ईश्वर की पूजा मानकर किया जाये तो वह अनिर्वचनीय सुख प्रदान करता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने योग की परिभाषा दी है– **"योग: कर्मसु कौशलम्"** केवल अपने लिए नहीं अपितु **'आत्मनो मोक्षार्थं सर्व जगद् हिताय च'** किया जाने वाला कर्म न केवल भौतिक समृद्धि प्रदान करता है अपितु मोक्ष का द्वार भी खोल देता है। कर्मयोगी व्यक्तिगत एवं सामाजिक दायित्त्व के बोध के साथ ही कर्म में प्रवृत्त होता है।

(२) आत्मन्– यह समस्त शक्तियों का मूल केन्द्र है। उपनिषद् साहित्य में स्थान-स्थान पर आत्मदर्शन, आत्म-बोध अथवा आत्म-जागरण का उपदेश दिया गया है। **'आत्मानं विद्धि'** **'आत्मा वा अरे द्रष्टव्य:'** आदि अमृत वचन आत्मदर्शन या आत्मसाक्षात्कार की शिक्षा देते है। जिसने स्वयं को जान लिया उसने सब कुछ जान लिया। आत्म-साक्षात्कार करने वाला मानव प्रत्येक प्राणी में उसी आत्म-तत्त्व के दर्शन करता है। फिर वह **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** के अनुसार छोटे-बड़े का भेद नहीं करता। बहुत बड़े कारखाने का स्वामी अपने कारखाने में कार्य करने वाले मजदूर से भी उसी आत्मा के दर्शन करता है। फलत: प्रबन्धक वर्ग एवं कर्मचारी वर्ग में वर्ग संघर्ष की भावना स्वत: समाप्त हो जाती है। सब एक दूसरे के सहयोगी बनकर कार्य करते हैं। आत्मन् की अनुभूति का प्रबन्धन में सबसे बड़ा लाभ है–आत्मानुशासन। जब उद्योग में कार्यरत प्रत्येक व्यक्ति आत्मानुशासित होगा तब किसी अनुशासन की आवश्यकता ही शेष नहीं रह जाती।

(३) सर्वे भवन्तु सुखिन:– विकसित देशों की प्रबन्धन व्यवस्था लाभ एवं उत्पादन पर सर्वाधिक बल देती है। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य भौतिक सफलता प्राप्त करना और विश्व बाजार में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाना है, किन्तु भारतीय प्रबन्धन का मुख्य उद्देश्य है सबको सुख प्रदान करना। प्रत्येक कार्य यज्ञीय भावना से होना चाहिए। यज्ञकुण्ड में दी जाने वाली हवि जैसे सबको सुगन्ध प्रदान करती है, वैसे हमारा प्रत्येक कर्म सबको सुख देने वाला होना चाहिए। हम धन के स्वामी नहीं अपितु ट्रस्टी हैं यह भावना भारतीय प्रबन्धन की मुख्य विशेषता है।

(४) अद्भुत कार्य संस्कृति– भारतीय चिन्तन में कर्म को कर्त्तव्य अथवा साधना माना गया है। यह सम्पूर्ण विश्व ईश से व्याप्त है, वह कण-कण में व्याप्त है। उसकी प्रेरणा या कृपा से हम कोई भी कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न कर पाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में अलौकिक दिव्य शक्ति का वास है। उसको जगाना सबसे बड़ी साधना है। तब मानव कर्म किये बिना एक क्षण



सन् १९८३ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दीक्षान्त भाषण देते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह।



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्तं समारोह में तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री चन्द्रशेखर जी, पं० हरबंशलाल शर्मा, पदमश्री डॉ० कपिलदेव द्विवेदी एवं अन्य।

भी रह नहीं सकता, इसलिए प्रत्येक कर्म को ईश्वरीय कार्य मानकर करना और प्रभु अर्पण करते जाना तथा उससे जो फल प्राप्त हो उसे प्रसाद मानकर ग्रहण करना भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। अपनी सम्पूर्ण शक्ति और समर्पण भाव से कार्य करने पर कर्म में गुणवत्ता एवं सुन्दरता का समावेश हो जाता है। इससे बाह्य शक्ति के साथ-साथ आन्तरिक शक्ति का भी विकास होता है।

(५) उत्तम लक्ष्य, श्रेष्ठ साधन— मानव का लक्ष्य तुच्छ न होकर श्रेष्ठ होना चाहिए। पाश्चात्य दर्शन का लक्ष्य व्यक्तिगत सुख हो सकता है, किन्तु भारतीय दर्शन समाज एवं राष्ट्र के सुख, समृद्धि एवं वैभव का महान् लक्ष्य लेकर प्रवृत्त होता है। उस महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधन भी उतने ही उत्कृष्ट, शुद्ध तथा पवित्र होने चाहिएं। जैसे उत्तम साधन होंगे उससे सफलता भी वैसी ही होगी। कहा भी है— **'यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी।'** न्यायप्रियता, ईमानदारी विश्वसनीयता आदि गुण प्रबन्धन को उत्तम बना देते हैं।

(६) संगठन भावना— भारतीय प्रबन्धन स्वामी-सेवक के मधुर सम्बन्धों पर बल देता है। ऋग्वेद के संगठन सूक्त में इस भावना को अभिव्यक्त किया गया है। वहां प्रार्थना की गई है—'सर्वशक्तिमान् प्रभु हम दोनों की (प्रबन्धक एवं कर्मचारी वर्ग) साथ-साथ रक्षा करे। हम साथ-साथ भोजन प्राप्त करें, हमारे कार्य महान् शक्ति के साथ सम्पन्न हों। हमारा अध्ययन सफल हो और हम परस्पर द्वेष न करें।'

ओ३म् सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

वेद मन्त्र कहते हैं—**'आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत:'** अर्थात् उत्तम विचार हमें सब ओर से प्राप्त हों। इन उत्तम विचारों से आर्थिक क्षेत्र का सम्पूर्ण परिदृश्य परिवर्तित हो सकता है। इन्हीं वैदिक-सूत्रों का प्रयोग कर इस देश के महापुरुषों ने अपने-अपने समय में आश्चर्यजनक परिवर्तन किये, सम्पूर्ण समाज को एकता के सूत्र में बांधा, उसे सुखी, समृद्ध और वैभवशाली बनाया। हमारे प्रबन्धकों को इस उदात्त परम्परा को सदा स्मरण रखना चाहिए। उन्हें अपने अन्दर कुछ ऐसे गुणों का विकास करना चहिए कि वे सफल प्रबन्धक बन सकें। प्रबन्धक में संगठन क्षमता होनी चहिए। वह योग्यता और मानवीय गुणों में ऐसी उच्च अवस्था को प्राप्त हो कि औरों को प्रेरणा दे सके। उसे कर्मशक्ति सम्पन्न होना चाहिए। कर्मरत प्रबन्धक अन्यों को निरन्तर कार्य करने की प्रेरणा दे सकता है। वैदिक वाङ्मय कहता है—**चरैवेति चरैवेति**। चलते रहो, कार्य करते रहो। कर्म करना जीवन है, आलसी, प्रमादी बनकर बैठे रहना मृत्यु है।

प्रबन्धक के सामने उसका लक्ष्य स्पष्ट होना चाहिए, किसी भी प्रकार का सन्देह कार्यशक्ति में अवरोध उत्पन्न करता है। जैसे श्रीकृष्ण जी ने युद्ध के मैदान में अर्जुन के समस्त सन्देहों का निराकरण कर क्षात्र-धर्म में लगाया था, उसी प्रकार प्रबन्धक अपने प्रतिष्ठान में कार्यरत सभी सहयोगियों के सन्देहों को दूर कर प्रेरक बनने की क्षमता से सम्पन्न होना चाहिए।

नेतृत्व की क्षमता प्रबन्धक का अत्यावश्यक गुण है। वह अपनी योग्यता एवं शुद्ध चरित्र के माध्यम से नेतृत्व करने में सक्षम हो। उस पर सबको पूर्ण विश्वास हो। वेद-मन्त्रों में अग्नि के गुणों का वर्णन कर नेतृत्व क्षमता को विस्तार से निरुपित किया हो।

उसका **आचरण** श्रेष्ठ होना चाहिए। वह जैसा आचरण करेगा, अन्य सहयोगी उसी का अनुकरण करेंगे। भगवद्‌गीता में कहा है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते।।

प्रत्येक प्रतिष्ठान में सर्वोच्च व्यक्ति को श्रेष्ठ कहा जा सकता है। उस श्रेष्ठजन को अपना आदर्श मानकर अन्य जन वैसा ही आचरण करने लगते हैं, इसलिए उसका आचार, विचार सर्वथा शुद्ध होना चाहिए। प्रबन्धक वर्ग में प्रभावशाली संप्रेषण शक्ति होनी चाहिए। वह अपनी भावनाओं को, विचारों को सशक्त रूप में अपने सहयोगियों तक पहुंचा सकने में समर्थ हो।

कठिन से कठिन परिस्थिति में विचलित न होकर, समस्याओं को **धैर्यपूर्वक** सुलझाना किसी भी प्रबन्धक का मुख्य गुण है। धैर्यवान् व्यक्ति बड़ी से बड़ी समस्या को धैर्य से सुलझा लेता है। और यह धैर्य प्राप्त होता है–ईश्वर विश्वास और ध्यान आदि यौगिक क्रियाओं द्वारा। इसलिए वैदिक प्रबन्धन में प्रत्येक व्यक्ति का ईश्वर विश्वासी होना और प्रतिदिन नियमपूर्वक ध्यान लगाना आवश्यक है। ध्यान के सतत अभ्यास से मन एकाग्र होता है, बिखरी हुई शक्ति एकत्रित होने से कार्य में सफलता प्राप्त होती है। ऐसी अवस्था में किया जाने वाला कर्म सुकर्म बन जाता है।

निर्णय लेने की योग्यता प्रबन्धन-तन्त्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। जो प्रबन्धक वर्ग बहुत समय तक निर्णय नहीं कर पाता वह सफलता के उत्तम अवसर अपने हाथ से निकाल देता है।

मानवीय सम्बन्धों की रक्षा भी एक आवश्यक गुण है। इसके बिना परस्पर सौहार्द रह नहीं सकता, जबकि सौहार्द की आधारशिला पर ही सफलता का भवन अधिष्ठित है।

वेद कहता है–**'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'**। एक दूसरे को चाहते हुए आप परम कल्याण को पा सकते हो। एक अन्य मन्त्र में कहा–**'अन्योऽन्यमभिहर्यत जातं वत्समिवाघ्न्या:'** जैसे अघ्न्या गाय अपने सद्यः जात शिशु को चाहती है, उसी प्रकार आप सब एक दूसरे को चाहो।

प्रत्येक मानव असीम शक्तियों का केन्द्र है। आवश्यकता इस बात की है कि मानव में सुप्तावस्था में विद्यमान उन शक्तियों को जागृत कर समाज हित में उनका उपयोग किया जाये।

इस प्रकार वैदिक प्रबन्धन व्यक्ति और समाज के बहुमुखी विकास एवं सुख, समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता है।

प्रो. महावीर, डी. लिट्.
प्रोफेसर संस्कृत एवं कुलसचिव
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आर्यसमाज के प्रचार–प्रसार में गुरुकुलों की भूमिका

प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति का आदर्शरूप गुरुकुल प्रणाली को माना गया है। अनेक आघात–प्रत्याघात, परिवर्तन, परिस्थिति आदि के कारण गुरुकुलीय पद्धति की धारा क्षीण, लुप्त व सुप्त हो गई। महर्षि दयानन्द के आगमन पर विस्मृत वैदिक धर्म पुनर्जीवित हो उठा। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का महत्व विशेषताएं उपयोगिता और आवश्यकता अनुभव होने लगी। ऋषि ने अपने अमर ग्रन्थ **सत्यार्थ प्रकाश** में जो शिक्षा का आदर्श रूप रखा, वह गुरुकुल पद्धति ही है। वर्तमान में उस गुरुकुल प्रणाली को साकार मूर्तरूप देने का श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द को है। जिन्होंने अपना तन–मन–धन सर्वस्व लगाकर गुरुकुल प्रणाली को पुनर्जीवित किया। गुरुकुलीय शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्द जी का ऐतिहासिक, महत्त्वपूर्ण, उल्लेखनीय स्मरणीय एवं वन्दनीय कार्य है। स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल कांगड़ी स्थापित करने के बाद गुरुकुल खोलने व चलाने का कार्य तेजी से हुआ। इसी का परिणाम है कि आज सैकड़ों की संख्या में बालकों और बालिकाओं के अलग–अलग गुरुकुल चल रहे हैं। यथा संभव गुरुकुलों से निर्माण तथा उद्देश्य की पूर्ति भी हो रही है।

गुरुकुल आश्रम तथा अन्य वैदिक शिक्षा संस्थाएं आर्य विचारधारा की टकसाल और पौध घर होती है। जहां आर्य समाजी गढ़े, बनाए एवं तैयार किए जाते हैं। जहाँ वैदिक शिक्षा, जीवनचर्या, सिद्धान्त आचार–विचार, धार्मिकता आदि कूट कूटकर भरी जाती है। आरम्भ से ही आर्यत्वपूर्ण जीवन पद्धति की घुट्टी पिलाई जाती है। बाल्यकाल में प्राप्त तपश्चर्या पूर्ण जीवन, शिक्षा–दीक्षा, सादा जीवन उच्च विचार, तथा संस्कारों से जीवन की धारा ही बदल दी जाती है। ऐसे लोग ही आगे चलकर सभा संगठनों, संस्थाओं, समाजों आदि को आदर्श व प्रेरक रूप दे जाते हैं। यहां से प्राप्त श्रेष्ठ संस्कार व विचार आगे चलकर यशस्वी जीवन की नीव बनते है।

इस दृष्टि से समस्त गुरुकुलों के संचालकों आचार्यों, अध्यापकों, कार्यकर्त्ताओं तथा स्नातकों की आर्य विचारधारा को प्रचारित एवं प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका व योगदान रहा है। इतिहास साक्षी है कि इन गुरुकुलों ने न जाने कितने दीवाने, जनूनवाले, दुनियां की दृष्टि में पागल, आर्य समाज के प्रचार व प्रसार के लिए तैयार किये है। कितनों ने जीवन के सुख साधन व सुविधाओं को छोड़कर भरी जवानी ऋषि मिशन के लिए समर्पित कर दी है। तभी थोड़े से काल में आर्यसमाज औरों की अपेक्षा अधिक बढ़ा और फैला। इसी कारण इसकी जीवन्त चेतना को लोग मानते और स्वीकार करते हैं। आज भी इसकी चिन्तनधारा में श्रेष्ठ वैचारिक सम्पदा है।

गुरुकुल जीवन निर्माण की स्थली होते हैं। जहां सच्चे अर्थों में मानव और चरित्र निर्माण होता है। मानव बनाकर जीवन जीने की कला सिखाई जाती है। जहां संस्कार, संस्कृति, सभ्यता, नैतिकता, शिष्टाचार आदि के द्वारा जीवन की आधारशिला रखी जाती है। इससे जीवन अनुशासित, नियमित, व्यवस्थित एवं उद्देश्यपूर्ण बन जाता है। अपवादों को छोड़कर जो भी गुरुकुलों से स्नातक एवं स्नातिकाएं निकली है, जहां भी कार्यक्षेत्र में गए व रहे हैं, वहां उनकी गुरुकुल शिक्षा–दीक्षा के कारण पहिचान बनी है। उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। उनके जीवन दुर्गुण और दुर्व्यसनों से बचे रहे। हजारों की संख्या में गुरुकुलों के स्नातकों का देश विदेश में धर्म–संस्कृति, शिक्षा आर्य विचारधारा के प्रचार–प्रसार पत्रकारिता इतिहास योग, चिकित्सा लेखन आदि में ऐतिहासिक भूमिका तथा योगदान रहा है। गुरुकुलीय शिक्षा में जीवनी शक्ति है। अनपढ़ साधारण, साधनहीन, हजारों की संख्या में युवक युवतियों को गुरुकुलों ने मिट्टी से सोना बनाकर नया जीवन दिया है और दे रहे हैं। मैं भी इन्हीं में से एक हूँ। मेरे जीवन के निर्माण और उत्थान में गुरुकुलों का महत्वपूर्ण योगदान वर्तमान में आर्यसमाज के प्रचार–प्रसार सभा संगठनों, संस्थाओं के संचालन, पौरोहित्य कर्म, उपदेशक आदि कार्यो में गुरुकुलों के स्नातक बढ़ चढ़कर सहयोग कर रहे हैं। जो भी आज समाज मन्दिरों में पुरोहित वर्ग है, वह किसी न किसी गुरुकुल या संस्था से पठित व दीक्षित है। उपदेशकीय क्षेत्र में भी गुरुकुलों के स्नातक कार्य कर रहे हैं। अधिकांश गुरुकुलों के स्नातक अध्यापकीय कार्य करते हुए आर्य समाज के प्रचार एवं प्रसार में सहयोगी हो रहे हैं। वैदिक विचारधारा के प्रचार व प्रसार के लिए जितने विद्वान् उपदेशक पुरोहित, प्रचारक आदि चाहिए, उतने बन नहीं पा रहें है। यह गुरुकुलों व आर्य समाज के लिए चिन्तनीय तथा विचारणीय गंभीर विषय है। स्थिति दिन ब दिन बिगड़ती और गंभीर होती जा रही है।

गुरुकुलों को इस दिशा में सच्चाई व ईमानदारी से सोचना होगा। मूल उद्देश्यों से अपने को जोड़ना होगा। वर्तमान आर्य समाज को दशा और दिशा सुधारनी होगी। अपने विद्वानों तथा कार्यकर्ताओं को संभालना होगा। उन्हें सम्मान, प्रतिष्ठा, सुविधा, सहयोग आदि देना होगा। तभी आर्यसमाज के प्रचार का कार्य आगे बढ़ेगा। इस दिशा में हमें और विचारधारा के लोगों से सीखने की आवश्यकता है। आर्यसमाज में भवन तो बन गए हैं, उन्हें संभालने वाले सच्चे ईमानदार व्यक्ति आर्य समाज नहीं बना पा रहा है। यही मूल में भूल हो रही है। गुरुकुलों में भी आन्तरिक निर्माण की गति धीमी पड़ गई है। वहां भी दयानन्दी, आर्यसमाजी तथा सिद्धान्त प्रिय व्यक्तियों के निर्माण में कमी आई है। इस कमी को सुधारने की गुरुकुलों को जरुरत है। गुरुकुलों को जीवन और जगत् से जुड़ने की आवश्यकता है। गुरुकुल और आर्य समाज एक दूसरे के पूरक हैं। गुरुकुल के स्नातकों पर ही आर्य समाज का भविष्य टिका हुआ है। इस दिशा में वर्तमान आर्यसमाज और सभी गुरुकुल मिल बैठकर विचार करें। जो कमियां आई हैं, उन्हें दूर करें। भविष्य के लिए क्रियात्मक, व्यावहारिक तथा उपयोगी योजनाएं बनाई जाये। तभी आर्यसमाज का प्रचार एवं प्रसार आगे बढ़ेगा।

डॉ. महेश विद्यालंकार, दिल्ली

आचार्यः पूर्वरूपम्

जब वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, तो यह कैसे सम्भव था कि मनुष्य के लिए सर्वोपयोगी शिक्षाविज्ञान का उसमें उल्लेख न हुआ हो! अथर्ववेद का प्रसिद्ध ब्रह्मचर्य सूक्त ही शिक्षा–विज्ञान के मूल तत्त्वों पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। उसके एक ही मन्त्र–चरण **'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त:'**[1] में आचार्य और ब्रह्मचारी के उदात्त और गम्भीर सम्बन्ध को प्रतिपादित किया है। इस पर शिक्षा–शास्त्रियों को पुन:–पुन: विचार करना होगा। इसी मन्त्र–चरण की छाया में वैदिक मनीषियों ने गुरु–शिष्य के सम्बन्ध का पल्लवन किया है।

ऐतरेय आरण्यक और तैत्तिरीय उपनिषद् में **'अथातो संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्याम:'**[2] कहकर जहाँ बहुविध संहिताओं, अधिकारों अथवा कक्षाओं का उल्लेख किया है, वहाँ अधिविद्य कक्षा का भी उल्लेख किया है। तद् यथा–**अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिप्रज्ञ, अधिविद्य, अध्यात्म** आदि। प्रत्येक कक्षा के चार–चार घटक हैं–**पूर्व रूप, उत्तररूप, सन्धि** और **सन्धान**।

अधिविद्य कक्षा के भी चार घटक हैं, यथा–**आचार्य: पूर्वरूपम्, अन्तेवासी उत्तररूपम्, विद्यासन्धि:, प्रवचनं सन्धानम् इत्यधिविद्यम्**। व्याकरण में वर्णित सन्धि की भाँति विद्या–सन्धि के पूर्वरूप और उत्तररूप अक्षरद्वय आचार्य और अन्तेवासी हैं। जहाँ आचार्य और अन्तेवासी में अतिशय सन्निकर्ष हुआ कि विद्या–सन्धि स्वत: संसिद्ध हो गई। विद्या–सन्धि के पूर्वोत्तरूप आचार्य और अन्तेवासी के क्रम में परिवर्तन का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। क्रम परिवर्तन होते ही सनिध का रूप विकृत हो जाएगा, अत: लिखा–**'आचार्य: पूर्वरूपम् अन्तेवासी उत्तररूपम्'**। श्रीमद् भागवत पुराणकार ने भी आचार्य को पूर्वारणि और अन्तेवासी को उत्तरारणि प्रतिपादित किया है–

आचार्योऽरणिराद्य: स्यादन्तेवास्युत्तरारणि:।
तत्संधानं प्रवचनं विद्यासन्धि: सुखावह:।।

–भागवत १/१०/१२

इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि शिक्षा–शुक्ति के पुटद्वय आचार्य और अन्तेवासी हैं, जिनसे विद्या–मौक्तिक का लाभ किया जा सकता है। विद्यामौक्तिक की उपलब्धि शुक्ति के

पटद्वय के अतिशय सन्निकर्ष का परिणाम है—

उपवास, अन्तेवासी और उपनयन, उपनिषद्, उपसद, उपवसथ।

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार विद्या—सन्धि की उपलब्धि आचार्य और अन्तेवासी अक्षरद्वय के अतिशय सन्निकर्ष मात्र का परिणाम है। इसी सन्निकर्ष मात्र का परिणाम है। इसी सन्निकर्ष को दर्शाने हेतु शिक्षा—शास्त्रियों ने तीन अति प्रसिद्ध शब्दों का उपयोग किया—**उपवास,**[३] **अन्तेवासी एवं उपनयन**। इनमें अन्तेवासी और उपवास शब्द भिन्नार्थ में प्रयोग होते हुए भी एक ही अर्थ के प्रतिपादक हैं। अन्तेवासी शब्द का भी अर्थ है—समीप बसना और उपवास शब्द का भी अर्थ है, समीप बसना। इन दोनों के अर्थ की एक—सूत्रता उपनयन शब्द में निहित है। यही कारण है कि उपनयन संस्कार में सर्वप्रथम विधि उपवास की है। जिस व्यक्ति को आचार्य के समीप ले जाया जाता है, उसके लिए ही सर्वप्रथम उपवास रखना विहित है। यहाँ उपवास शब्द का रूढ़ अर्थ न लेकर यौगिक अर्थ आचार्य के समीप बैठना लिया जाए तो उचित है, जिससे वह ब्रह्मचारी 'अन्तेवासी' संज्ञा को प्राप्त होता है। आचार्य न केवल उपनयन ही करता है, अपितु सूक्त के शब्दों में—**'आचार्य उपनयमानों ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त:**[४]**'**। आचार्य उपनयन की कामना से ब्रह्मचारीरूप गर्भ को **'अन्त: उदरे बिभर्ति'** अपने उदर में लेकर पालित—पोषित करता है। **'अन्त:कृणुते'** और ब्रह्मचारी के अन्तेवासी नाम के शब्द—साम्य और अर्थ—साम्य का स्वारस्य लें।

आचार्य के वैदिक स्वरूप को समझने के लिए संक्षेप में **'द्विज'** शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक होगा। यह शब्द स्वत: व्यक्त कर रहा है कि जिस व्यक्ति के दो जन्म होंगे वह द्विज कहलाने का पात्र होगा। वे दो जन्म शरीरत: और विद्यात: हैं। शरीर—जन्म अत्यन्त साधारण है, जबकि विद्यात:—जन्म अत्यन्त श्रेष्ठ, अजर, अमर और सत्य है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वर्णत्रय का द्विजत्व विद्यात:—जन्म से संसिद्ध है और विद्यात:—जन्म की संसिद्धि आचार्याधीन है। यही कारण है कि धर्मशास्त्र के आद्य—प्रणेता भगवान् मनु ने आचार्य का गौरवगान इन उदात्त शब्दों में किया है—

आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारग:।
उत्पादयति सावित्र्या सा नित्या साऽजरामरा।।

मनु. २/१४८

भगवान् आपस्तम्ब ने भी मनु के स्वर में स्वर मिलाकर उद्घोष किया—**'स हि विद्यात: तं जनयति', 'तदस्य श्रेष्ठं जन्म', 'माता—पितरौ तु शरीरमेव जनयत:**[५]**।'** भगवान् वेद—व्यास कैसे पीछे रहते! उन्होंने भी कहा—

शरीरमेतौ कुरूत: माता पिता च भारत।
आचार्यतश्च यज्जन्म तत् सत्यं वै यथामृतम्।।

महाभारत ५/४५/५

अन्तेवासी के भी दो जन्म आवश्यक हैं—एक शरीरत:, दूसरा विद्यात:। शरीरत: जन्म सांसारिक माता की कुक्षि से और विद्यात: जन्म सावित्री माता की कुक्षि से होता है।

वैदिक दर्शन का सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि हर दो जन्मों के मध्य एक मृत्यु अवश्यम्भावी है। अत: अन्तेवासी के भी दो जन्मों के मध्य मृत्यु आवश्यक है। इस कठोरतम कर्म का दायित्व आचार्य के कन्धों पर डाला गया है। आचार्य अन्तेवासी को दूसरा जन्म देने से पूर्व मारता है। अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य—सूक्त में आचार्य के जिन पाँच नामों का उल्लेख हुआ है, उनमें आचार्य का सर्वप्रथम नाम 'मृत्यु' ही है। वाजश्रवा ने भी अपने पुत्र नचिकेता को आचार्य की प्रथम योग्यता—रूप मृत्यु को सौंप दिया था।

सूक्त के शब्दों में आचार्य के मृत्युरूप के उपरान्त—

आचार्य का मातृरूप

आचार्य का वैदिक स्वरूप अथर्ववेद के प्रसिद्ध ब्रह्मचर्य—सूक्त में आचार्य को दी गई पाँच संज्ञाओं से प्रकट होता है। सूक्त में कहा है—**'आचार्यो मृत्युर्वरूण: सोम ओषधय: पय:'**[६] (अथर्व० ११/५/१४)। आचार्य के इन पाँचों नामों में प्रथम और द्वितीय उसके उग्रता के प्रतीक हैं, शेष तीनों नाम मृदुता के प्रतीक हैं। पहले दो रूप जहाँ वज्र से भी कठोर हैं, वहाँ अन्तिम तीन रूप कुसुम से भी मृदु हैं। अहो! आचार्य की लोकोत्तरता—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति[७]**॥**

आचार्य भी तो लोकोत्तर पुरुष है। आचार्य के चित्त को कौन जान सकता है? वह अपने अन्तेवासी को अमृतभरे हाथों से मारता है, ताड़ना करता है और अनुशासित करता है, क्योंकि वह जानता है कि गुणाधान तो ताड़न से ही सम्भव है, लाड़न से नहीं। यथा, महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है—

सामृतै: पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितै:।
लालनाच्छ्रयिणो दोषास्ताडनाच्छ्रयिणो गुणा:॥

दोषों के निराकरण और गुणों के आधान के लिए ताड़ना अत्यन्त आवश्यक है। कबीर के शब्दों में यूँ कहेंगे—

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, गढिगढि काढ़ै खोट।
अन्तर् हाथ सहार दे, बाहिर वा दै चोट॥

आचार्य जहाँ अपने दो रूपों से ब्रह्मचारी को मारता है, वहाँ वह अन्तिम तीन रूपों से उसे नया जन्म देता है; मानो आचार्य के हाथ में अन्तेवासी को मारना और जन्म देना, मृत्यु और अमृत दोनों ही हैं। श्रुति के अनुसार—**'यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्यु:'** (यजु० २५/१३)। जिस आचार्य का मृत्युरूप भी छाया है और अमृतरूप भी छाया है। आचार्य उसे अपनी छत्र—छाया

में ले लेता है, तभी तो अन्तेवासी छात्र संज्ञा को प्राप्त होता है। छत्र–छाया तो अत्यन्त साधारण बात है, आचार्य तो इतना मृदु हो जाता है कि अन्तेवासी को अपने उदर में ले लेता है। बिना उदर में लिये अन्तेवासी का द्वितीय जन्म होना सम्भव ही नहीं अर्थात् द्विज बनना ही सम्भव नहीं।

शिष्य की आचार्य के प्रति की गई प्रार्थना–**'उप मा नयस्व'** के उत्तर ही में तो आचार्य अन्तेवासी को अपने उदर में ले लेता है। इसी की अनुभूति उपनयन संस्कारगत एक विशेष विधि द्वारा कराई जाती है, जिसमें आचार्य और अन्तेवासी एक–दूसरे के हृदय का स्पर्श करते हुए मन्त्र पढ़ते हैं–

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम्।।[७]

माता और गर्भ के हृदय, चित्त और वाणी की जितनी एकता होती है, उससे कहीं अधिक एकता आचार्य और अन्तेवासी के हृदय, चित्त और वाणी की होती है। आचार्य एवं अन्तेवासी के हृदय, चित्त और वाणी को परस्पर आबद्ध करने वाले सूत्रों के प्रतीक ही यज्ञोपवीत के तीन सूत्र है,[८] जिन्हें वैदिक भाषा में वरुण–पाश कहना उपयुक्त होगा।

आचार्य का वरुणरूप और उसके पाश–

प्रायः पुराणों में वरुण के पाशों का वर्णन है। पुराण ही क्यों, वेद में भी वरुण के उत्तम, मध्यम और अधम तीन पाशों का वर्णन है, तद्यथा–**'उदुत्तमं वरुण–पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम'।।**[९]

यह वरुणमाश अधिविद्य–कक्षा के प्रथम घटक आचार्य द्वारा डाले गए पाश हैं, जो आचार्य के द्वितीय नाम वरुण को सार्थक करते हैं। आचार्य जहाँ अन्तेवासी को अपने मृत्युरूप द्वारा मारता है, वहाँ वरुणरूप द्वारा अनुशासित करता है और अपने त्रिविध वरुणपाश डालकर अन्तेवासी के मस्तिष्क, हृदय और उदर त्रिविध केन्द्र आबद्ध करता है। उन्हीं के माध्यम से अन्तेवासी को सोम, औषधि, पयःरूप त्रिविध रसों से आप्यायित करता है। जो अन्तेवासी के मस्तिष्क को सोमरस से, हृदय को औषधि रस से और उदर को पयःरस से आप्यायित करता है। जो अन्तेवासी अपने मस्तिष्क को सोमरस से आप्यायित कर लेता है वह ब्राह्मण, जो अन्तेवासी अपने हृदय को औषधि रस से आप्यायित कर लेता है वह क्षत्रिय, और जो अन्तेवासी अपने नाभिकेन्द्र को पयःरस से आप्यायित कर लेता है वह वैश्य कहलाता है। यही तीन वर्ण क्रमशः राष्ट्र के मस्तिष्क, हृदय और नाभि ही तो हैं।

इस प्रकार आचार्य जहाँ अन्तेवासी के मस्तिष्क, हृदय और नाभि को समुन्नत करता है। वहाँ राष्ट्र के मस्तिष्क (ब्राह्मण), हृदय (क्षत्रिय) और नाभि (वैश्य) का भी निर्माण करता है। इससे वैदिक आचार्य व्यक्ति और समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह करता है।

निरुक्तकार यास्क और आचार्य का स्वरूप

सम्भवत: आचार्य यास्क ने आचार्य के उक्त वैदिक स्वरूप को हृदयङ्गम करके ही आचार्य पद के तीन निर्वचन दिये हैं—

आचार्य: कस्माद् (१) आचारं ग्राहयति—इति—आचार्य: (२) आचिनोति—अर्थान्—इति—आचार्य: (३) आचिनोति बुद्धिम् इति—आचार्य:। —नि० १/४

आचार्य पद के तीन निर्वचनों का आधार अन्तेवासी के वे तीन केन्द्र हैं, जिन्हें आचार्य ने वरुण—पाशों से आबद्ध किया है। अन्तेवासी के वे तीन केन्द्र हैं—

(क) १. स्थूल, २. सूक्ष्म, ३. कारण शरीर

(ख) कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, अन्त:करण—चतुष्टय

(ग) उदर (नाभि), हृदय (वाणी), मस्तिष्क

आचार्य शब्द का प्रथम निर्वचन आचारं ग्राहयति अन्तेवासी के प्रथम केन्द्र स्थूलशरीर=कर्मेन्द्रिय= नाभि को अभिलक्ष्य करके किया है। द्वितीय निर्वचन **'आचिनोत्यर्थान्'** अन्तेवासी के द्वितीय केन्द्र सूक्ष्मशरीर=हृदय केन्द्र को अभिलक्ष्य करके किया गया है, और तीसरा निर्वचन **'आचिनोति बुद्धिं इति वा'** अन्तेवासी के तृतीय कारणशरीर=अन्त:करण—चतुष्ट्य को अभिलक्ष्य करके किया गया है। प्रथम केन्द्र का सम्बन्ध आचरण से है, अत: कहा—**'आचारं ग्राहयति इति आचार्य:।'** यहाँ का आचार शब्द धर्म का वाचक है। द्वितीय निर्वचन अन्तेवासी के द्वितीय केन्द्र सूक्ष्म शरीर=ज्ञानेन्द्रिय=हृदय को अभिलक्ष्य करके किया है। **'आचिनोति अर्थान्'**—इस निर्वचन में आया **'अर्थ'** पद 'शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध' रूप आदि पञ्च—विषयों का वाचक है। तृतीय निर्वचन अन्तेवासी के तृतीय केन्द्र, कारणशीर=अन्त:करणचतुष्टय=मस्तिष्क को अभिलक्ष्य करके किया गया है। **'आचिनोति बुद्धिम्'** में वर्तमान 'बुद्धिम्' पद धर्मानुकूल काम का वाचक है। इस प्रकार आचार्य वह है, जो अन्तेवासी में आचिनोति धर्मम्, आचिनोति अर्थान् (विषयान्), आचिनोति कामम् इति वा।

आचारं ग्राहयति इति आचार्य:

अधिविधि—कक्षा के पूर्वोत्तर घटकद्वय की वैदिक संज्ञा आचार्य और ब्रह्मचारी है। दोनों ही संज्ञाओं में चर् धातु का प्रयोग इस बात का परिचायक है कि विद्या आचरण की वस्तु है। वह विद्या निष्फल है, जो आचरण में न आए और वह आचार्य भी अयोग्य है, जो शिक्षा के अनुसार स्वयं आचरण नहीं करता। इसलिए नवप्रवेशार्थी को सर्वप्रथम अपने आचरण द्वारा प्रायौगिक (प्रैक्टिकल लाइफ) द्वारा सदाचार का आधान करता है। वह अन्तेवासी के लिए आचार्य है, सत्पुरुष है और उसका वृत्त ही सद्—आचार है और सदाचार ही धर्म है—**"आचारलक्षणो**

धर्मस्सन्तश्चाचार–लक्षणाः। साधूनां यथा वृत्तमेतद्–आचारलक्षणम्"॥ भगवान् मनु धर्म के साक्षात् लक्षणों में तृतीय लक्षण सदाचार को ही कहते हैं। अतः आचार्य सर्वप्रथम अन्तेवासी को सदाचार का ग्रहण कराता है। यहाँ **'आचारं ग्राहयति'** निर्वचन **'धर्म ग्राहयति इति आचार्यः'** का पर्याय कहा जा सकता है।

आचिनोति अर्थान् इति आचार्यः

जब अन्तेवासी सदाचार–रूप धर्म को ग्रह करने की योग्यता सम्पादित कर लेता है, तब उसमें यह पात्रता आती है कि उसमें अर्थों का चयन किया जा सके। अतः यास्क के द्वितीय निर्वचन में कहा है कि–**'आचिनोत्यर्थानिति आचार्यः'**। आचार्य वह है, जो अन्तेवासी में अर्थों का चयन करता है। हम लिख आए हैं कि यहाँ 'अर्थ' पद केवल शब्दार्थ का ही वायक न होकर रूपादि विषयों का भी वाचक है। गीता के शब्दों में **'इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः'** तथा न्यायदर्शनकृत प्रत्यक्षप्रमाण के लक्षण में **'इन्द्रयार्थ सन्निकर्षोत्पन्नम्'** एवं यजुर्वेद अध्याय ४० में वर्णित **'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः'** में प्रयुक्त **'अर्थ'** जिन अर्थों का द्योतक है, वे विषयरूप अर्थ भी यहाँ गृहीत हैं।

आचिनोति बुद्धिम् इति वा

आचार्य के **'आचिनोति बुद्धिं इति आचार्यः'**– रूप तृतीय निर्वचन में प्रयुक्त 'बुद्धि' पद अन्तःकरण–चतुष्टय का उपलक्षण होकर आया है। जहाँ आचार्य अन्तेवासी में बुद्धि का चयन करता है, वहाँ अन्तेवासी में मन का, मनन–शक्ति का, चित्त का, संज्ञान–शक्ति का, अहंकार का, स्वात्म–बोध का चयन करता है। इसीलिए आचार्य और अन्तेवासी परस्पर हृदय –स्पर्श करते हुए कहते हैं–**'मम चित्तम् अनुचित्तं ते अस्तु।'** बुद्धि आदि अन्तःकारण–चतुष्टय के चयन का अभिप्राय यदि एक शब्द में कहना हो तो कहेंगे–**'आचिनोति काममिति वा।'** वेद में काम को मन का 'रेतस' कहा है। काम के चयन का अर्थ होगा–रेतस् शक्ति का चयन। रेतस्–शक्ति का संचय–विचय, संकल्प–शक्ति के संचय–विचय पर आधारित है। आचार्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अन्तेवासी में सर्वप्रथम धर्म का चयन करे। इन सबका बोध आचार्य अपने आचरण द्वारा ही कराए। इसीलिए ऐतरेय आरण्यक (३/२/६) में कहा–

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन कीर्त्यते॥

लिङ्गपुराण (२०/२) में कुछ पाठ–भेद से इसे स्पष्ट करते हुए कहा–**'आचिनोति च शास्त्रार्थान् यमैः संनियमैर्युतः'** कि आचार्य वह है, जो यम–नियमों से सुनियन्त्रित, शास्त्रविहित रूप, रस गन्ध आदि विषयरूप अर्थों का चयन कराता है। इन्हीं यम–नियमों के पालन का ही परिणाम होता है ब्रह्मचारी अष्टविध मैथुनों से बचा रहता है।

मनु–प्रोक्त धर्म

हमारी तुच्छ सम्मति में यास्क ने आचार्य पद के तीनों निर्वचनों में मनु–प्रोक्त धर्म के साक्षात् लक्षणों को भी आदर्श माना है–१. **'आचारं ग्राहयति'** में धर्म के सदाचार लक्षण को, २. **'आचिनोति अर्थान्'** में श्रुतिलक्षण को, **आचिनोति बुद्धिम्** में स्मृति लक्षण को–**आचार्यः कस्मात्? सद् आचारं ग्राहयति आचिनोति श्रुतिम्**–आचिनोति स्मृतिम्; अर्थात् अन्तेवासी कर्मेन्द्रियों द्वारा मनु–प्रोक्त सदाचार का, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा श्रुति का और अन्तःकारण द्वारा स्मृति का ग्रहण करता है, इस प्रकार धर्म के साक्षात् लक्षणों का प्रत्यक्ष कराता है। आचार्य गायत्री के माध्यम से अन्तेवासी के उदरकेन्द्र में भर्ग–शक्ति का, हृदय–केन्द्र में वरेण्य शक्ति का, व्रत का और मस्तिष्क–केन्द्र में धी–शक्ति का चयन करता है। यास्क निर्वचनों को किञ्चित् परिवर्तन के साथ कहेंगे–**आचार्यः कस्मात्? आचिनोति भर्गम्– आचिनोति वरेण्यमिति वा, आचिनोति धियमिति वा आचार्यः।**

आचार, उच्चार, विचार का चयनकर्त्ता आचार्य

यास्क के तीनों निर्वचनों को देखा जाए तो ज्ञात होगा कि आचार्य पर अन्तेवासी के विचार, उच्चार और आचार निर्माण का दायित्व है। यदि आपत्ति न हो तो यूँ कह सकते हैं कि **आचार्यः कस्मात्? आचारं ग्राहयति, उच्चारम् आचिनोति, विचारान् आचिनोति इति आचार्यः।** यदि आचार्य अन्तेवासी के विचार, उच्चार और आचार में एकता स्थापित करा सके तो समझना चाहिए कि विद्या का उद्देश्य पूर्ण हुआ, अर्थात् अन्तेवासी के जो मन में है वही वचन में, जो मन–वचन में है वही आचरण में है। तब अन्तेवासी के लिए कहा जा सकेगा कि **यन्मनसा मनुते तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति तद् कर्मणा करोति, यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।**

हरिहर–भाष्य में आचार्य का स्वरूप इन उदात्त शब्दों में वर्णित है–**सत्यवाक्, धृतिमान्, दक्षः, सर्वभूत दयापरः, आस्तिको वेदनिरतः शुचिराचार्य उच्यते।।** अन्यच्च–**अपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः–संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य प्रचक्षते।** माध्यन्दिन वाजसनेयाह्निकम् अध्ययनक्रमे पृ० १०१।

वायुपुराण में आचार्य का एक गम्भीर लक्षण दिया गया है–**'वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः। सम्यक्विनीता ऋजवः तान् आचार्यान् प्रचक्षते।।'**

–वायुपुराणे ५९/२९

इसका एक–एक शब्द गहन अर्थ लिये हुए है, अर्थात जो वृद्ध (वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध), लोभहीन, आत्मवान् दम्भशून्य, विनीत और सरल–स्वभाव वाले हों वे आचार्य कहलाते हैं। उनका वृद्ध होना अनुभव का सूचक है। अनुभवहीन युवक को आचार्य–पद पर प्रतिष्ठित नहीं किया जाना चाहिए। किसी कार्य की सफलता के लिए स्वानुभव एक महान् कारण होता है,

इसलिए उनका वृद्ध होना आवश्यक है। इसके साथ उन्हें आत्मवान् भी होना चाहिए। मनु ने भी सर्वकार्य में इस अध्यात्मज्ञान की आवश्यकता को प्रमुख माना है—**"न ह्यध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमश्नुते"** (मनु० ६/८२) जहाँ यह आचार्य के आभ्यन्तरिक सूक्ष्म लक्षण हैं वहाँ उसके स्थूल—लक्षणों में निर्लोभ होना, दम्भहीन होना और अत्यन्त विनीत एवं सरल होना भी अत्यावश्यक है। यह तो आचार्य के व्यक्तिगत—चरित्र की बात हुई। विद्या के क्षेत्र में उसका जो आदर्श होना चाहिए, उसके विषय में कहा गया है—

स्वयं आचरते यस्तस्मात् आचारं स्थापयत्यपि, आचिनोति च शास्त्रार्थान् यमैः संनियमैर्युतः। (वायु पुराण ५९/२०) जो स्वयं आचरण करता है और अन्तेवासी में आचार स्थापित करता है और शास्त्रोक्त रूप रस आदि विषयरूप अर्थों को यम—नियमों से मर्यादित करता है वह आचार्य कहाता है।

स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती

सन्दर्भ संकेत :

१. अथर्व० ११/४/३
२. तैत्ति० उप० १/३
३. उप समीपे यो वासः जीवात्मपरमात्मनो। उपवासः स विज्ञेयः। न तु कायस्य शोषणम्।—वराहोपनिषद् /३९
४. अथर्व० ११/४/३
५. आप०ध० १,१,१५—१७
६. भवभूति
७. आ० १/२१/७
८. लेखक द्वारा लिखित 'उपनयन—सर्वस्व'
९. ऋ० १/२४/१५

एक और तथागत

महाभारत की स्याह रात के अवसान के बाद भारत की कुंठित प्रज्ञाशक्ति तथा ब्राह्मणवाद के घटाटोप में सिमटे हुए समाज की पीड़ा से आहत् भगवान् बुद्ध के मानस में हलचल हुई थी। वैशाली के राजपथ से गुजरने वाले तथागत के कदमों के निशान सदियों के इतिहास की कहानी गुनगुनाते हैं। नालन्दा के खण्डहरों में धम्मपद की ध्वनि आज भी गूँजती प्रतीत होती है। बट वृक्ष की जिए सघन छाया में बोधिसत्व ने सामाजिक क्षणों को जिया था वह बोधिवृक्ष के रूप में शताब्दियों तक परिश्रान्त पथिकों की पीड़ा को शान्त करता रहा। ब्राह्मणवाद की घिनौनी अंधी गलियों में भटकते हुए समाज को जीवन का संदेश देकर तथागत ने आत्म चेतना की अलख जगाई थी। एक हाथ में कमण्डलु तथा शरीर पर काषाय वस्त्र लपेटकर राजकुमार सिद्धार्थ न केवल अभ्रंकश प्रासाद को ही प्रत्युत रूपसी यशोधरा तथा सद्योजात शिशु की आँखों में झाँक कर अमावस की रात में कहीं अन्तर्ध्यान हुआ था।

आत्माहुति के संकल्प लेकर राष्ट्र की प्रखर चिन्तन धारा ने ही देश के सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश को जीवन्त किया है। संकल्प के धनी सन्तों के निशान उन पगडन्डियों पर आज भी उभरे दिखाई देते हैं।

अब से लगभग एक शताब्दी पूर्व के काल खण्ड की इबारत भागीरथी के कगारों पर आज भी नजर आती है जहाँ एक अश्रान्त पथिक हाथ में कमण्डलु, शरीर पर काषाय वस्त्र तथा कटि पर संकल्प की मौन्ज मेखला बांधकर एक सघन वृक्ष के नीचे पड़े हुए पत्थर पर आ बैठा था। अपने अन्तर्देश में महर्षि की वाग्धारा को साकार करने का दृढ़ निश्चय था। कृत संकल्प उसी अश्रान्त पथिक ने पतली सी जो शाख गंगा के किनारों पर प्रत्यारोपित की थी वही शाख कालान्तर में विराट् बोधिवृक्ष के रूप में धरती पर शीतल प्राण वायु का हेतु बन गई जिसकी शीतल छाया में देश की तरुणाई ने वैदिक मन्त्रों का पीयूस पानकर राष्ट्र को जीवन्त और प्रखर सन्देश दिए हैं।

मानव जीवन के उत्कर्ष में स्थायी भावों को उद्दीप्त करने के लिए आलम्बन तथा उद्दीपन की मन:स्थितियां होती हैं। गर्भ जन्य संस्कारों के विकास में वर्तमान की आहट स्पष्ट सुनाई देती है। महर्षि दयानन्द की राष्ट्रवादी मंत्र ध्वनि तथा प्रखर वाणी की कसमसाहट पंजाब के समूचे भूगोल में महसूस की जाने लगी थी। आर्य समाज के क्रान्तिकारी तेवरों से उत्तरापथ की धरती पर जो भूकम्प बरपा था उसी की बदौलत बरतानिया हुकूमत की जकड़न ढीली पड़ने लगी थी।

क्रान्ति के गर्म थपेड़ों से भारत के समूचे सीमान्त पर गरमाहट फैलने लगी। पंजाब की धरती पर तो ज्वालामुखी के लावे भी उठते देखे गए। इन्हीं तूफानी झकोरों में जालंधर के छोटे से गांव तलवन के गलियारे में एक शिशु ने अपनी आंख खोली थी। वही मुंशीराम के रूप में तरूणाई की दहलीज पर देखा गया जो कालान्तर में भगवे वस्त्रों में तथा एक हाथ में कमण्डलु लिए बीसवीं शताब्दी में गंगा के पावन पुलिनों पर तथागत के रूप में प्रकट हुआ।

यौवन के झकोरों से गन्दी गलियों में भटक कर भी मंजिल ने उंगलियों के इशारे से भटकी तरुणाई को अपनी तर्जनी उंगली दिखाकर कहा था मेरी गोद में तो बैठो, सुनो मेरी लोरी, कितना हसीन है तुम्हारी मुखाकृति, विवेक की आंख खोलो और अपना गन्तव्य निहारो। न जाने गन्दी गलियों से निकालकर चमकीले राजपथ पर लाकर खड़ा कर दिया। कभी-२ मंजिल राही को तो कभी राही मंजिल की तलाश करता है।

जिन्दगी की भटकन से कभी कदम डगमगाते हैं तो कभी भटकन से उतरे कर्मवीरों के कदमों के निशान भविष्य के चिराग बनकर आने वाली पीढ़ी को आलोक देते हैं।

१८५७ की देश व्यापी क्रांति के अंगारों की राख में अभी गरमाहट थी कि उसी राख में पड़े एक शोले पर गुजरात की गलियों से निकले तरुण सन्त के पैर पड़ गए। हिमालय के शिखर की मानिन्द ऋषि का ब्रह्माण्ड ही हिल गया। नर्मदा के कगारों पर घूमते हुए भारत के आकाश में उठते बवंडर से विक्षुब्ध वह मथुरा की पर्ण कुटीर में देखा गया, जहाँ से प्रज्ञा चक्षु के चरणों की धूलि माथे पर लगाकर अन्तिम विदा ली। मूलशंकर से दयानन्द बनकर जब वह पर्णकुटी से निकला तो कभी लौट कर नहीं गया।

महर्षि ने एक ओर यहाँ राष्ट्र की धरती पर बिछे क्रान्ति के अंगारों को देखा था जिसकी गरमाहट सतारा से लेकर बुन्देलखण्डी कछारों तक बिखरी हुई थी तो दूसरी ओर अंधविश्वासों की भटकन में लिपटे समाज को देखा था जो नारी की दुर्दशा की पीड़ा से बोझिल था। अशिक्षा तथा आडम्बर के अंधकूप में डूबे मानव समाज के उद्धार के लिए आयामों की खोज करते हुए महर्षि ने मुम्बई के काकड़बाड़ी नामक स्थान पर माणिकचन्द की बगिया में सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना कर देश में क्रान्ति के प्रथम संस्थान की नींव रखी।

महर्षि दयानन्द के मानस में अतीत का इतिहास रेखांकित था। राजस्थान के रेतीली टेकरियों में आजादी के लिए मरने वालें के खून के धब्बे दबे हुए देखे थे तो पंजाब की उर्वरा धरती पर खैबर दर्रे से आती हुई यवनों की कतारों से जूझती तरुणाई के निशान देखे थे। इसी सिलसिले में ऋषि का बरेली आगमन हुआ जहाँ ऋषि की वैखरी के स्वर मुंशीराम के कटि प्रदेश पर मौंज मेखला के रूप में जा लिपटे। कालान्तर में मुशीराम का समग्र अतीत दलदल से ऊपर उठकर पारिजात की मानिन्द आकाश में मुस्कराने लगा। पलक झपकते ही मुशीराम का सम्पूर्ण ताना बाना श्रद्धानन्द के रूप में देश के मानचित्र पर उभरकर आया। महर्षि दयानन्द का क्रान्तिदशी स्वरूप श्रद्धानन्द के रूप में देश के भूगोल में बहुआयामी देखा गया जिसके एक हाथ में कमण्डलु तथा दूसरे हाथ में राष्ट्र में अलख जगाने के लिए दृढ़ संकल्प प्रतीक पलाश दण्ड था।

महर्षि की कल्पनाओं को जीवन्त बनाने की धुन में रमता हुआ प्रखर प्रज्ञा का धनी यह सन्त धर्मान्तरण की विषैली बेलों को काटने के लिए शुद्धि सभा की स्थापना में संलग्न हो गया तो दूसरी ओर धुन्ध की गलियों में भटकती नारी की अस्मिता की रक्षा के लिए, अंधकूप में बिसूरती देश की तरुणाई ओर गैरों के हाथों में मसलती राष्ट्र की बचकानी संपदा की रक्षा के लिए अपना जीवन समर्पित करता रहा।

वेदों की सरगम जो पाखण्ड के ध्वान्त में कहीं विलीन हो गई थी। महर्षि दयानन्द ने वेदों की पावन बैखरी के लिए गली–गली अलख जगाई थी। क्या महर्षि का स्वप्न यूं ही अंधेरे गुबारों में खो जाएगा? उसी की प्राण प्रतिष्ठा करने की धुन में भटकता हुआ अमर सैलानी हरिद्वार की पुरातन भूमि पर अपने कदम बढ़ाता हुआ आ निकला। अहर्निष अपनी प्रेरणा के सूत्रधार के पावन संकल्प श्रद्धानन्द के जीवन के पुनीत पाथेय थे। महर्षि ने जिस भागीरथी के किनारों पर हिमालय की तरह अडिग कदम रखकर चिथड़े–चिथड़े होती हुई राष्ट्र की पुरातन थाती की रक्षा करने के लिए पाखण्ड खण्डिनी पताका फहराई थी। भागीरथी के उसी तट पर गुरुकुल की स्थापना का अंकुर आरोपित कर अपने ऋषि के ऋण से उन्मुक्त होने के लिए कर्मयोगी ने बोधिवृक्ष का पौधा लगाया था।

अश्रान्त पथिक का समग्र चिन्तन मानस में अंगड़ाई लेते संकल्पों की ऊर्जस्वित धारा ही थी, जो राष्ट्र की चेतना के समवेत भावों में उतरकर गंगा की पावन धारा में विलीन हो गई।

अनन्त का यात्री किसी सीमा में बंधना स्वीकार भी कैसे कर सकता है? कर्मयोगी भेगवाद की पनघट पर बैठकर विश्राम कैसे कर समता है? उद्दाम संकल्पों के ज्वार–भाटे जिसके अन्तर्देश में ठाठ मारते हों वह काई भरे तालाब की सीढ़ी पर बैठकर लहरें नहीं गिन सकता। राष्ट्र की पराधीनता की पीड़ा उमड़ते जज्बातों में घुल कर क्रान्ति के पुरोधा श्रद्धानन्द को बेचैन करती थी। देखते–२ गैरिक वस्त्रों में लिपटा अनन्त का यायावर दिल्ली के चाँदनी चौक में गर्जता दिखाई देने लगा। बरतानिया हुकूमत के ताबूत पर हथौड़ा मारने की टंकार आज भी जैसे उसी परिवेश में मँडराती प्रतीत होती है। जामा मस्जिद की फसीलों पर एक शतक पहिले की गर्जना की लिपि ठहरी सी लगती है।

निसन्देह अपने प्राण–प्रिय महर्षि के अधूरे कार्यों को पूर्ण करने की प्रतिबद्धता ने श्रद्धानन्द को अनन्त का पथिक बनाया। जन–जन में सद्धर्म के प्रसार के लिए सद्धर्म प्रचारक पत्र का प्रणयन किया। धर्मान्तरण जैसी कुत्सित स्थिति को रोकने के लिए शुद्धि का आन्दोलन, नारी जाति के समुत्थान के लिए कन्या गुरुकुल तथा नारी शिक्षा का प्रचार राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य के लिए राजनैतिक प्रखर चेतना के कालजयी सद् चिन्तक के समग्र जीवन में जुड़ से गए थे।

लोक कल्याण के लिए समग्र समर्पण ने उसे यज्ञ–पुरुष बना दिया। अश्रान्त यायावर, जिन्दगी की काँटो–कँकड़ों से भरी पगडन्डियों पर चलता रहा। वह गंगा के पनघट पर बैठकर यज्ञाग्नि में लकड़ी की समिधाएं डालकर ऋत्विज नहीं बना। उसने तो बोधि वृक्ष के नीचे अपने दोनों पुत्रों को समिधा के रूप में होम कर 'अयन्त इध्म आत्मा' वैदिक मन्त्र की प्राण–प्रतिष्ठा की थी।

राष्ट्र की धधकती आग में कुन्दन बनने के इतिहास सदियों के काल पृष्ठों पर लिखे जाते हैं। जराजीर्ण शरीर से उभरती रक्तिम आभा, अस्तंगत सूर्य के विश्राम की ताम्रवर्णी आभा की मानिन्द, वह अविराम यात्री अपने शरीर का गाढ़ा लहु धरती को अर्ध्य के रूप में देकर कैवल्य के अनन्त बदन में विलीन हो गया। २३ दिसम्बर १९२६ के मध्यान्ह में लिखी गयी खूनी इतिहास की इबारत काल के पृष्ठों पर अंकित है। काली रोशनाई से कागज के पन्नों पर इतिहास की पंक्तियां लिखने से उस युग यात्री की नीराजना सम्भव नही है।

डॉ. देवसत्यार्थी
संपादक, स्वस्ति पन्था:
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार)

तेरी पुण्य पताका........

वेद में मनुष्य की आयु की परिधि १०० वर्ष मानी गयी है। इसीलिए कामना की गयी है कि हम इस परिधि को भी लांघ कर शताधिक वर्षों तक पुण्य कर्म करते रहें। ये १०० वर्ष संस्थाओं के लिए भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते? सौ वर्षों तक किसी संस्था का जीवित रहना व कार्यशील रहना उस संस्था के संस्थापक के महान् पुण्य कर्मो का फल ही समझिए।

कभी–कभी मनुष्य के हृदय में महान् संकल्प उठा करते हैं। कुछ अनोखा करने की उसे कोई अज्ञात् शक्ति प्रेरणा प्रदान करती है। प्रेरणा का यही स्रोत जब वेग धारण कर लेता हैं कुछ करने की ठान लेता है तो साधनहीन होने पर भी प्रभु के आश्रय में कुछ करने का संकल्प ले लेता है तो शुभ संकल्प में प्रभु साथ ही होते हैं। ऐसी ही होती है श्रद्धा की अटूट आस्था। इसी आस्था का सहारा लेकर जो साधन हीन होने पर भी विवेकहीन नहीं होते वे परम लक्ष्य को पा ही जाते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी के पास विवेक था, असीम श्रद्धा थी, उत्कट इच्छा शक्ति थी। कनखल निवासी लाला भारामल के वंशज श्री किशन प्रसाद व श्री वेणी प्रसाद जिज्ञासु ने चौ० अमन सिंह जी को प्रेरणा दी। मुन्शी जी आपको पुत्र मिल जायेंगे स्वामी जी को महान् कार्य हेतु भूमि। आपका यश दिग्–दिगन्त में फैलेगा। मुन्शी अमन सिंह जी ने अपना कांगडी ग्राम व १३०० बीघा जंगल, नदी, नालों से पूर्ण भूमि रूपी साधन प्रस्तुत किए। कारवाँ चल पड़ा। ऊजाड़ वन पर्वत की उपत्यका में ४ मार्च १९०२ में गंगापार नीलगिरि की उपत्यका में बस कांगडी गुरुकुल एक चमन बन गया। वैसे १९०० में इसकी स्थापना गुजरांवाला पंजाब में हो चुकी थी। हजारों नरनारी इस चमन को देखने आने लगे। गंगा–तट पर आर्य नर–नारियों का अद्‌भुत मेला लगने लगा क्या स्वर्णिम आनन्द आता होगा वहाँ। हमने तो गुरु मुखों से वहाँ की बातें ही सुनी व खण्डहर ही देखे हैं।

आज गंगापार पुण्य भूमि के सुख–दुःख की कहानी तो अतीत के पन्नों पर अंकित हो गयी। १९२४ ई० की विकट बाढ ने उस स्वामी के धैर्य की फिर परीक्षा ली। कुछ दिन डा० हरिराम आर्य इन्टर कालेज मायापुर के परिसर में रहने के पश्चात्– आचार्य रामदेवजी के अथक परिश्रम एवं मुख्याधिष्ठाता पं० विश्वम्भर नाथ जी की कर्त्तव्य निष्ठा की कहानी आज का गुरुकुल है जिसके भवनों की आधार शिला श्रीमान् शाहापुराधीश महाराजाधिराज नाहरसिंह जी ने विक्रमाब्द १९८४ (१९२४) के २७ चैत्र में रखी और जिसको सर्वश्री उम्मेद सिंह जी, लाला दीवान चन्द जी सत्यमांवाई, लाला रघुनाथ राय जी सेठ रग्घुमल जी, दानवीर सेठ जुगल किशोर जी बिरला, दानवीर सेठ जमुना लाल जी बजाज, श्री लब्भूराम जी नय्यड, भाई टेकचन्द नागिया, सेठ बालमुकुन्द जी, सेठ भाई कालीदास जी मेहता, श्रीमती रत्नी देवी जी, सेठ



पं० जवाहरलाल नेहरू गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की गौशाला में।

सर छाजूराम जी कलकत्ता, दानवीर सेठ पी.जी. मेहता रंगून, लाला मोतीराम, सेठ जयनारायण जी पोद्दार कलकत्ता आदि अनेक दानवीरों ने व शुभ चिन्तकों ने अपने खून–पसीने से सींचा। जो बट वृक्ष के रूप में सभी को अपनी गहन छाया दे रहा है और जिसके विश्वविद्यालय विभाग को इस शिक्षा–उन्नति के लिए भारत सरकार से करोडों का अनुदान मिलता है। खैर।

गुरुकुल की उस स्वर्णिम छवि और उसके गौरव का उससे लगाव का गान करते हुए श्री प्रियव्रत प्रेमी' विद्यालंकार की हृदय तन्त्री के तार यों झंकृत हो उठे–

"लजाती है विभूति देख कर, संसार की जिसको।
गुणों का धाम वह प्यारा मनोरम कुल हमारा है।
यह कुल प्राणों से प्यारा और नन्दन वन हमारा है।
पिलाया दूध विद्या का बहाकर स्नेह की धारा।
भुलाया स्वर्ग को जिसने वह प्यारा कुल हमारा है।"

उस प्यारे कुल की वन्दना में श्री वागीश्वर जी विद्यालंकार ने अपनी भावनाओं को यों मूर्त रूप दिया–

जय–जय जननि कुल देवी तुझको, बार–बार प्रणाम है।
यह मंजु अंजलि–प्रेममय अर्पित तुझे अभिराम है।
स्वर्गीयता मिश्रित जहाँ उज्ज्वल उषा का धाम है।
हम है सदा तेरे हमारी तू हृदय वर वासिनी।
सम्बन्ध यह तेरा हमारा नित्य है निष्काम है।

इसी निष्काम सम्बन्ध व अविरामता, लगातार आगे बढ़ने की भावना ने, कुल भावों को गतिशील बनाए रखा। इसीलिए पं० बुद्धदेव जी विद्यामार्तण्ड जैसे प्रखर वाग्मिता के धनी विद्वान् की छात्रावस्था के समय ही अन्तरात्मा से आविर्भूत स्वर लहरी में कुल की गौरवमयी छवि यों मुखरित हुई–

प्राणों से हमको प्यारा, कुल हो सदा हमारा।
कट जाए सिर न झुकना, यह मन्त्र जपने वाले,
वीरों का जन्मदाता, कुल हो सदा हमारा।
तनमन सभी न्यौच्छावर कर वेद का संदेशा।
जग में ले जाने वाला कुल हो सदा हमारा।।
हिम शैल तुल्य ऊँचा भागीरथी सा पावन
भटकों का मार्गदर्शक दुखियों का हो सहारा।
आजन्म ब्रह्मचारी ज्योति जगा गया है।
अनुरूप पुत्र उसका, कुल हो सदा हमारा।।

यह छवि यों ही नहीं बनी। यें उद्‌गार अनायास ही नहीं फूट पड़े। युग द्रष्टा दयानन्द व युग पुरुष कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द के महान् जीवन का प्रसाद था, जो पल्लवित व पुष्पित हुआ इस कुल में। एक सतत् साधनामय पवित्र जीवन संसर्ग से बही थी यह विचार निर्झरिणी। अपने कुल का गौरव ऐसा ही था। वह स्वर्णिम युग केवल स्मृति में स्वर्णिम इतिहास बन कर रह गया है। जननी और जन्मभूमि पर बलिदान होने की भावना कुल की माटी में रच–बस गयी थी। हैदराबाद का आर्य सत्याग्रह, जिसमें गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने भाग लिया। ब्रिटिश हुकूमत के प्रति आक्रोश व क्रांतिकारी भावनाओं का प्रस्फुटन इसके ज्वलन्त प्रतीक है। उत्साह, प्रसन्नता, वीरता, विद्वता की भावनाओं का प्रस्फुटन होता था इस कुल में। कायरता व भीरुता आदि की बातें यहाँ के वातावरण से कोसो दूर थी। सचमुच यह भटकों का मार्गदर्शक था। बड़े–बड़े लोग इसकी ओर दृष्टि लगाए रहते थे। गांधी जी भी जब दक्षिण अफ्रीका से आए तो १९१७ में वे गुरुकुल पधारे। गुरुकुल के दीक्षान्त समारोह पर बड़े–बड़े विद्वान् व राजनेता आरम्भ से ही आते रहे हैं। यहाँ आकर उन्हें जो आदर, अपनत्व व संस्कारत्व प्राप्त होता था, उसे भुलाकर भी वे भूल न पाते थे। इसीलिए तो सेठ गोविन्द दास जी जैसे पौराणिक विचारों के महान् सांसद भी इस कुल के आमन्त्रण पर खिंचे चले आते थे। सेठ जी ने गुरुकुल को सरकारी विश्वविद्यालय की मान्यता के लिए जो उस समय अथक परिश्रम किया, उसका महत्व कौन जानता है? गुरुकुल पत्रिका में उनके ये शब्द आज भी स्वर्णांकित है–''गुरुकुल कांगड़ी को नया विश्वविद्यालय मानना बड़े से बड़ा शुभ है। यह तो युगों से विश्वविद्यालय का काम करता आ रहा है। इसके कार्य को केवल स्वीकृति देने का प्रश्न है। मैं आशा करता हूँ कि भारत सरकार का शिक्षा मन्त्रालय और यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन इस सम्बन्ध में तुरन्त अवश्य कार्यवाही करेगा (गु०प० हीरक जयन्ती १९६०)। परिणाम स्वरूप कालान्तर में अनेक कमीशन गुरुकुल में आए। दौलतसिंह कोठारी आयोग आया और ६२ में यह विश्वविद्यालय के रूप में मान्य और सर्वमान्य हुआ।

वास्तव में यहाँ की अपनी एक संस्कृति थी। अपनी ही एक अलग प्रकार की व्यवस्था थी। विस्तार में जाना उचित न समझ कुछ बातें रखना चाहूँगा। यहाँ के द्वारों पर बाह्य व्यक्तियों का आदर एवं आतिथ्य होता था, उसकी कुछ मर्यादा ही अलग थी। गुरुकुल में ऐरा–गैरा व्यक्ति प्रवेश नहीं कर सकता था। सड़कें साफ सुथरी, गन्दगी का कहीं नाम निशान नहीं होता था। यह व्यवस्था डा. सत्यपाल जी स्वास्थ्य अधिकारी के हाथ में रहती थी। अमन चौक से वेदमन्दिर तक श्रद्धानन्द द्वार से अमन चौक तक सड़क पर झाडू लगती थी। रात में नियमित रूप से घन्टे (बड़े कार्यालय पर) बजाए जाते थे, लगता था गुरुकुल जग रहा है। यहाँ के अधिकारी परिसर में ही रहते थे, सबके सुख–दुःख का ध्यान रखते थे। इस गुरुकुल की अपनी एक नीति नियत थी। एक विचारधारा थी। वेतनभोगी भावना नहीं थी। आपस का प्रेम व विश्वास था।

गुरुकुल का अपना वस्तुभण्डार था। अपना ढाबा था। बढई घर था, लुहार घर था। यहाँ तक की भट्टे पर अपना ही श्मशान घाट था। गुरुकुल में ही सब वस्तुओं की प्राप्ति होती थी। यहाँ तक कि उस समय गाय पालने वाले को गौशाला से कटा कटाया घास भी प्राप्त होता था। विद्यालय भण्डार से दूध, फल, लकड़ी आदि प्राप्त होते थे। महीने में कटौती होती थी। गुरुकुल का पैसा गुरुकुल में ही रहता था। गुरुकुल खुशहाल था। अपनी गौशाला थी, अपनी भैंसशाला थी, अपनी बैलशाला थी। उस समय पुण्य भूमि (कांगड़ी) में भी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता का हस्तक्षेप था। वहाँ खेती बाड़ी होती थी। पुरानी गाय, बछड़े, बछड़ियां, पुराने बैल पुण्यभूमि भेज दिए जाते थे। यह थी व्यवस्था की एक झलक। यह था आपसी प्यार, आपसी एक भाव। १९६६–६७ तक भी गुरुकुल में साहबी संस्कृति ने प्रवेश नहीं किया था। यहाँ के अधिकारियों को पण्डित जी, बड़े पण्डित जी, भाई जी या बड़े भाई जी के नाम से ही सम्बोधित करते थे। अनेक कर्मचारी तो इन्द्रजी आदि को पिता जी कहकर पुकारते थे। क्या, इन ऊँचाइयों को हम छू पायेंगे?

यही नहीं ब्रह्मचर्य की खोयी हुई व गौरवमयी प्रतिष्ठा के कारण ही कवियों ने लिखा–

आयेंगे खत अरब से, उनमें लिखा यह होगा।

गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।

यह अतिवाणी यों ही मुखरित नहीं हुई। सचमुच गुरुकुल ने एक तप–त्याग की साधना की की थी। यहाँ साहित्य क्षेत्र में अनेक गोष्ठियाँ होती थी, हस्तलिखित पत्रिकाएं निकलती थी। वाद–विवाद प्रतियोगिताएं गुरुकुल की शान थी, जान थी। त्यौहार– श्रद्धानन्द सप्ताह, दीपावली, दशहरा, रक्षाबन्धन, बसन्त पंचमी अपनी तरह से मनाये जाते थे। व्यायाम और खेलकूद शारीरिक पुष्टता के प्रतीक थे। संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी की त्रिवेणी गुरुकुल में बहती थी। उसी परम पुरुषार्थ की भट्टी से ऐसे प्रतिभावान् स्नातकों की सृष्टि हुई जिन्होंने कुल माता के यश पर चार चाँद लगाए। ज्ञान रश्मियों से विद्वत्मण्डल को ज्योतित करने में जहाँ श्री पं. इन्द्र जी, विद्यामार्तण्ड बुद्धदेव जी, पं. सत्यकाम जी, धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, पं. सत्यव्रत जी, आचार्य प्रियव्रत जी जैसे विद्वान् और वाग्मी गुरुकुल ने दिए, वहाँ ब्रह्मचर्य को शरीर का औदन बना लेने वाले, सिंहों और अजगरों आदि से झूझने वाले पं. सत्यपाल सिद्धान्तालंकार, ब्र. महेन्द्र जैसे ब्रह्मचारी शारीरिक बल सौष्ठव दिखाने में जंजीर तोड़ने ४० मन का पत्थर छाती पर रखने में, विपरीत दिशाओं में जाती कारों को रोकने में तथा ब्रह्मचारियों से भरी बैलगाडी दांतों से खींचने, सरियों को दांतों से, छाती से मोडने में प्रथम गुरुकुलीय भीम ब्र. सुदर्शन व द्वितीय गुरुकुलीय भीम ब्र. सुधाकर दिए तथा देश विदेश में धनुर्विद्या का खेल दिखाने वाले, शतायु होकर ब्रह्मलीन श्री देशबन्धु जी विद्यालंकार जैसे स्नातकों की सृष्टि भी इसी गुरुकुल ने की।

आज यदि हम अपने चारों ओर देंखे तो एक ऐसी वाहियात टी.वी. संस्कृति ने तथा

पश्चिमी विज्ञान की काली घटा ने समस्त संसार को अपने आगोश में ले लिया है जो मानव को साम्राज्य लिप्सा, शोषण वृत्ति, भोग–विलास की विपुल सामग्री, विध्वंस के साधन, मारकाट, लूट–खसूट, हिंसा, अशान्ति, अपरिमेय चिन्ता, मानव मूल्यों का ह्रास, संवेदनहीनता आदि विध्वंसकारी प्रवृत्तियों को जन्म दे रही है। इसलिए आज के युग में भारत की संजीवनी शक्ति आध्यात्मिकता या नैतिकता के प्रचार की महान् आवश्यकता है और यह संजीवनी भारत की संस्कृति व सभ्यता के मूल आधार गुरुकुलों में ही सम्भव है। हमें ज्ञान–विज्ञान का समन्वय करके चलना है। पुराने और नये का सामंजस्य करके आगे बढ़ना है। विराम न लेना है। गतिमय रहना है। आगे ही बढ़ना है। यही गुरुकुल की गुरुकुलीयता रही है। कथनी के अनुरूप करनी रही है। अपने मूल से जुड़े रहकर भी गुरुकुल कभी रूढिवादी नहीं रहा। उसने अलग ही अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाकर रखी है। गुरुकुल की मूल शक्ति उसकी आश्रम प्रणाली है। ये गुरुकुल वस्तुत: आर्य समाज की भट्टियाँ है।

इसलिए गुरुकुल माँ की कभी न मिटने वाली ममतामयी, स्नेहमयी, गौरवमयी एवं ज्ञानमयी छवि को दूर–दूर तक दिशाओं में, देश–विदेशों में फैलाने की अभिलाषा को श्री वैद्य निरंजन देव जी 'प्रियहंस' ने कुलपताका के गीत द्वारा भाव विभोर कर देने वाली शैली में यों गाया–

वन पर्वत में नदी नीर में
माता जो पाया सन्देश।
तेरी पुण्य पताका लेकर
फैला दूँगा देश–विदेश।।

सचमुच इसी भावना से अभिभूत होकर कुलीय स्नातकों ने ज्ञान–रश्मि के प्रकाश–पुंज को बड़ी–बड़ी बाधाओं के आने पर भी देश–विदेश में फैलाया। वहाँ के जनमानस को झकझोरा, उनकी आत्माओं को आलोकित किया। जीवन मूल्यों का सन्देश दिया। न जाने पं. सत्यपाल सिद्धान्तालंकार आदि कितने स्नातकों ने दक्षिण अफ्रीका व फिजी आदि देशों में क्रांति की ज्योत जलायी। हिन्दी का प्रचार किया। आर्य विचारों का प्रचार किया। पं. जी वहाँ की जनता के प्यारे बन गए। इसी प्रकार पं. हरिश्चन्द्र विदेशों में क्रांति का शंखनाद करते रहे। इस प्रकार एक नहीं अनेकों पं. जयचन्द जी आदि स्नातकों ने देश व विश्व के लिए अपने जीवन को समर्पित किया। वह गुरुकुल का स्वर्णयुग था। सभी के जीवन में, रजत, स्वर्ण व हीरक व शताब्दी वर्ष आते हैं। संस्था के मूल में जो चीज है यदि वह गतिमान रहती है तो अनेक बाधाओं झंझावातों के आने पर भी संस्था मृतप्राय नहीं होती । उसकी आन–बान–शान बनी ही रहती है। गुरुकुल का आज भी नाम है। इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में इसके संस्थापक व इसका नाम अंकित है। भारत राष्ट्र के विगत, गत–आगत सभी राष्ट्रनेताओं ने इसे सराहा

है। यह राष्ट्र और विश्व को कुछ देने वाली संस्था है। राष्ट्र–हित की संस्था है। २५ अप्रैल से २८ अप्रैल तक इसका सार्वदेशिक सभा की ओर से 'शताब्दी समापन समारोह' मनाया जा रहा है।

इस कुल के संस्थापक कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द जी इसे केवल एक ढर्रे की संस्था–प्राच्य विद्याओं के रूप में ही विस्तृत करना नहीं चाहते थे अपितु आयुर्वेद विज्ञान, कृषि, शिल्प आदि सभी क्षेत्रों में फैलाना चाहते थे। आज इस विश्वविद्यालय में प्राच्य विद्याओं के साथ आधुनिक काल के सभी विषयों की शिक्षा दी जा रही है। अपनी सौ वर्षों की यात्रा में इस संस्था ने उत्थान–पतन को लांघते हुए अनेक पड़ावों को पार कर अगली शदी में प्रवेश किया है। यहाँ के लोग भी अब इसकी भूमि के प्रति सजग हुए हैं किन्तु इसके विचारों, भावनाओं व संस्कारों तथा कुलत्व एवं उद्देश्यों के प्रति भी सजग रहने की आवश्यकता है। परिसर को स्वच्छ व सुन्दर रूप देने की आवश्यकता है। गुरुकुल भूमि पर अलग चल रहे– (१) गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय (२) आयुर्वेद महाविद्यालय (३) इन्टर साइन्स– इनको गुरुकुल की पुण्य पताका के नीचे लाने की आवश्यकता है। इसके एकीकरण की आवश्यकता है। भवन व सड़कें तो बनती ही रहेंगी। अन्त में महात्मा गांधी जी के गुरुकुल के लिए कहे कुछ शब्द देना चाहूँगा – "अगर तुम वैदिक आचार और विचार की रक्षा करना चाहते हो तो यह वस्तु याद रखो कि तुम्हे पग–पग पर रुपये मिल जायेंगे, मगर ब्रह्मचर्य का नीति का पाया यहाँ पर न होगा तो तुम्हारा गुरुकुल मिट्टी में मिल जाएगा। इस भूमि के तो आत्मा नहीं है। इसकी आत्मा तुम्ही हो। अगर तुम आत्म–बल खो दोगे और 'उदर निमित्तं बहुकृतवेषः' जैसे बन जाओगे तो तुम्हारी शिक्षा बेकार हो जाएगी।'

महावीर 'नीर' विद्यालंकार
कार्य. मुख्याध्यापक
विद्यालय–विभाग
गुरुकुल कांगड़ी
हरिद्वार

आचार्य रामदेव
गुरुकुल के यशस्वी कर्णधार

गुरुकुल कांगड़ी को विश्वविद्यालय का स्तर भारत सरकार द्वारा तो सन् १९६२ में दिया गया, किन्तु यहां के प्रारम्भिक स्नातकों की योग्यता, कर्मठता और सत्यनिष्ठा देखकर जनता इसे बहुत पहले ही विश्वविद्यालय मान चुकी थी। विदेशों के विश्वविद्यालयों ने भी यहां के स्नातकों को विभिन्न विषयों की आपनी स्नातकोत्तर कक्षाओं में सीधा प्रवेश देकर क्रियात्मक रूप से गुरुकुल को विश्वविद्यालय स्वीकार कर लिया था। महात्मा मुंशीराम तो गुरुकुल के संस्थापक ही थे और उन्होंने इसके निर्माण और विकास के लिए जो कुछ भी संभव था वह किया, परन्तु उनके बाद इसे संस्कारित और विकसित करने में जिन्होंने अपना तन–मन न्यौछावर किया, उनमें प्रथम नाम आचार्य रामदेव जी का आता है। आज जब गुरुकुल अपना शताब्दी-वर्ष मना रहा है, तब निश्चय ही उस महापुरुष का कथा-वृत्त लेखक और पाठक दोनों को पवित्र करेगा, इसी भावना से कुछ संस्मरण लिखे जा रहे हैं।

धुन के धनी

आचार्य रामदेव जी की धुन थी वैदिक संस्कृति, आर्य सभ्यता, भारतवर्ष का उत्कर्ष, वेद, उपनिषद् आदि साहित्य का गौरव, स्वामी दयानन्द, आर्यसमाज, गुरुकुलशिक्षाप्रणाली, त्याग, तपस्या, संघर्षों से जूझना। उनका रोम–रोम इससे अनुप्राणित था। पाश्चात्त्य सभ्यता के और वेदों के विषय में पाश्चात्त्य विद्वानों की अनर्गल मनघड़न्त कल्पनाओं के वे घोर विरोधी थे। असत्य से समझौता करने की उनकी प्रवृत्ति नहीं थी। सत्य को ग्रहण करने एवं असत्य का भरसक उन्मूलन करने में वे सदा उद्यत रहते थे। डार्विन के विकासवाद की, जिसके अनुसार बन्दर से मनुष्य बना है, वे अपने भाषणों में धज्जियां उड़ाया करते थे। वैदिक धर्म को वे संसार का सर्वश्रेष्ठ धर्म समझते थे। कई बार सर्वधर्मसम्मेलनों में उन्होंने वैदिक धर्म का जयजयकार किया। वे लेखनी और वाणी दोनों के धनी थे। आर्यसमाज पर प्रहार को उन्होंने कभी सहन नहीं किया। इसके लिए उन्होंने महात्मा गांधी तक को क्षमा नहीं किया। महात्मा गांधी उनके प्रशंसकों में से थे। उनकी विद्वत्ता का सिक्का देश–विदेश के अनेक विद्वान् मानते थे। वे एक कुशल अध्यापक, कुशल व्याख्याता, कुशल लेखक, कुशल सम्पादक, कुशल शास्त्रार्थकर्ता, कुशल प्रबन्धक, कुशल नेता और कुशल अनुयायी थे। वे सादा रहन-सहन और उच्च विचार के प्रबल पक्षधर थे।

समर्पित व्यक्तित्व

आचार्य रामदेव जी गुरुकुल एवं आर्यसमाज के लिए पूर्णत: समर्पित हो गये थे। गुरुकुल कांगड़ी के प्रवर्तक महात्मा मुंशीराम के प्रखर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, रियासत जींद में मिले

हुए स्कूल-इंस्पैक्टर के कार्य को छोड़कर गुरुकुल आ गये। बाद में कोल्हापुर कॉलेज के अधिकारियों ने उन्हें ६५० रु. मासिक वेतन पर अपने यहां प्रिंसिपल होकर आने के लिए निमन्त्रित किया था। उस समय के ६५० रु. आजकल के बीस हजार से कम न थे। पर उनका लक्ष्य धन कमाना नहीं था, वे तो गुरुकुल को अपना जीवन दान दे चुके थे। उस आर्थिक प्रलोभन और पद-प्रतिष्ठा को उन्होंने ठुकरा दिया। महात्मा मुंशीराम उन पर आचार्यत्व का भार रखकर बहुत कुछ निश्चिन्त हो गये। बाद में तो संन्यास ग्रहण करके वे गुरुकुल से चले ही गये। मुख्याधिष्ठाता का कार्य पं. विश्वम्भरनाथ जी करते थे। वे बड़ी सूझबूझ वाले, योजनाबद्ध तरीके से कार्य करने वाले तथा अथक श्रम करने वाले व्यक्ति थे। उनके गुरुकुल से चले जाने के पश्चात् मुख्याधिष्ठाता का कार्य भी आचार्य रामदेव जी के ही कन्धों पर आ पडा, जिसका वे निपुणतापूर्वक निर्वाह करते रहे। वे गंगापार कांगड़ी में तो इन पदों पर रहे ही पुरानी भूमि में गंगा की बाढ़ आ जाने के कारण जब गुरुकुल वर्तमान नवीन भूमि पर आ गया तब कन्या गुरुकुल देहरादून रहते हुए भी यहां का कार्य बहुत-कुछ देखते रहे।

शिक्षा-व्यवस्था

आचार्य जी ने महाविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था को अति नियमित एवं जीवन्त कर दिया। पाठ्य विषय दो प्रकार के रखे गये—अनिवार्य और वैकल्पिक। वेद , दर्शन, संस्कृत साहित्य और अंग्रेजी अनिवार्य थे। विस्तृत वैदिक साहित्य, आर्य सिद्धान्त, पाश्चात्त्य दर्शन, रसायन शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, कृषि और उच्च गणित वैकल्पिक थे, जिनमें से कोई एक विषय लेना होता था। बाद में वैकल्पिक विषयों में आयुर्वेद को भी जोड़ दिया गया। वैकल्पिक विषयों में वैदिक साहित्य लेने वाले को वेदालंकार उपाधि, आर्यसिद्धान्त लेने वाले को सिद्धान्तालंकार उपाधि, आयुर्वेद लेने वाले को आयुर्वेदालंकार उपाधि और अन्य कोई विषय लेने वाले को विद्यालंकार उपाधि दी जाती रही। कुछ समय तक यही क्रम चलता रहा। परन्तु बाद में वेद महाविद्यालय, कला महाविद्यालय तथा आयुर्वेद महाविद्यालय ये तीन महाविद्यालय बना दिये गये। जब हम विद्याधिकारी परीक्षा उत्तीर्ण करके सन् १९३२ में महाविद्यालय में आये तब वेद महाविद्यालय एवं कला महाविद्यालय में ६ विषय पढ़ने होते थे। वेद महाविद्यालय में वैदिक साहित्य (तीन पत्र) भारतीय दर्शन, लौकिक संस्कृत साहित्य, आर्य सिद्धान्त एवं तुलनात्मक धर्म, सामान्य अंग्रेजी ये पांच विषय अनिवार्य थे। इसके अतिरिक्त पाश्चात्त्य दर्शन, रसायनशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा इतिहास ये चार वैकल्पिक विषय थे, जिनमें से कोई एक विषय लेना होता था। वेद महाविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य नहीं पढ़ाया जाता था, पर वेद के छात्रों की अंग्रेजी में अच्छी योग्यता हो सके इसका उपाय आचार्य रामदेव जी ने यह निकाला था कि आर्यसिद्धान्त के पाठ्यक्रम में कुछ अंग्रेजी पुस्तकें निर्धारित कर दी थीं, यथा थीज़्म, एथीज़्म, ऐण्टीथीस्टिक थियरी,

कन्फ्लिक्ट बिटवीन रिलिजन ऐण्ड सायन्स, क्रीड ऑफ क्रिश्चियण्डम। परीक्षा में इन पुस्तकों से विषय भी पूछा जाता था तथा अंग्रेजी भाषा विषयक प्रश्न भी। कला महाविद्यालय में वैदिक साहित्य के तीन के स्थान पर दो ही पत्र होते थे, अंग्रेजी साहित्य विशेष था, संस्कृत साहित्य भी कुछ अधिक था, जिसमें साहित्यदर्पण आदि काव्यशास्त्र के ग्रन्थ निर्धारित थे। आर्यसिद्धान्त का विषय इस महाविद्यालय में नहीं था। आयुर्वेद महाविद्यालय में वेद विषय अनिवार्य था, जो कला महाविद्यालय के समान था। शेष विषय आयुर्वेद सम्बन्धी होते थे, जिनमें प्राचीन आयुर्वेद, सर्जरी, एनॉटमी, ऐलोपैथिक चिकित्सा, प्राकृतिक चिकित्सा सम्मिलित थे। इस महाविद्यालय के प्रथम छात्र शिवदत्त थे, जो सन् १९२६ में आयुर्वेदालंकार बने। तीनों महाविद्यालयों का उक्त पाठ्यक्रम विशेषत: आचार्य रामदेव जी के ही निर्देशन में बना था। बाद में अन्य विश्वविद्यालयों के हल्के पाठ्यक्रम के अनुरूप इसमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहे।

वैदुष्य

आचार्य जी की अपनी विद्वत्ता इतनी अधिक थी कि बड़े-बड़े विद्वान् उनके संमुख हार मानते थे। वे अंग्रेजी, इतिहास, धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन आदि के ही पण्डित नहीं थे, अपितु अंग्रेजी के माध्यम से उन्होंने वेदादि प्राच्य विषयों का भी गहन अध्ययन किया हुआ था। वेद, संस्कृत साहित्य, प्राचीन गणित आदि विषयों पर भी ऐसे अधिकारपूर्वक बोलते थे कि कोई उन विषयों का विद्वान् भी क्या ही बोल पायेगा। गुरुकुल में देश-विदेश के विविध विषयों के प्रख्यात विद्वान् आते रहते थे, जो अपने विषय पर महाविद्यालय के छात्रों एवं शिक्षकों के संमुख भाषण भी करते थे। जितना समय वे भाषण करते थे आचार्य जी उनके भाषण के पश्चात् उससे अधिक समय उसी विषय पर बोलते थे, जिससे आगन्तुक वक्ता बड़े प्रभावित होते थे। एक बार हॉलैण्ड के एक डच विद्वान् गुरुकुल पधारे। आचार्य जी की अध्यक्षता में खगोल-विज्ञान पर उनका आधा घंटा भाषण हुआ। उनके भाषण के अनन्तर पौन घंटा इसी विषय पर आचार्य जी धाराप्रवाह बोलते रहे, जिसमें उन्होंने वेद, ब्राह्मणग्रन्थ , सूर्यसिद्धान्त आदि के आधार पर प्राचीन भारतीय खगोल-विज्ञानका परिचय दिया। डच विद्वान् मन्त्रमुग्ध होकर भारतीय पाण्डित्य को सुनते रहे और गुरुकुल के अच्छे संस्मरण लेकर अपने देश लौटे। बाद में भी आचार्य जी से उनका पत्र-व्यवहार चलता रहा।

आचार्य जी गुरुकुल कांगड़ी से कन्या गुरुकुल जा चुके थे, तब की बात है। किसी प्रसंग में वें गुरुकुल कांगड़ी आये थे। छात्रों ने उनसे 'वेदों में विविध विद्याएं' विषय पर भाषण देने का अनुरोध किया। वे एक घंटे तक विषय पर बोलते रहे। भाषण के अन्त में एक छात्र ने कहा —आचार्य जी, आपने वेदों में विविध विद्याएं तो दर्शा दीं, पर यह तो बताया ही नहीं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान कैसे हैं? आचार्य जी ने उत्तर दिया, मैं हजार में से एक ही बात पर बोला हूँ, ९९९



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के यशस्वी आचार्य एवं कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून के संस्थापक आचार्य रामदेव जी।

बातों पर नहीं बोला हूँ, विषयान्तर कैसे करता? ईश्वरीय ज्ञान पर सुनना चाहते हो तो कल इस पर बोल दूंगा। अगले दिन आचार्य जी 'वेद ईश्वरीय ज्ञान है' इस विषय पर लगातार दो घंटे बोलते रहे। ऐसा था उनका पाण्डित्य।

धन-संग्रह

आचार्य जी के समय गुरुकुल को सरकार से आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती थी, या यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि गुरुकुल के संचालकों ने विदेशी सरकार से अर्थिक सहायता लेना उचित नहीं समझा था, अन्यथा गुरुकुल में सरकार का हस्ताक्षेप होने लगता। अत: जनता के दान से ही गुरुकुल चलता था। अचार्य जी को धनसंग्रह का उत्तरदायित्व भी निभाना होता था।

गुरुकुल कांगड़ी गंगापार की घटना है। एक वृद्धा गुरुकुल-परिसर में खड़ी महाविद्यालय के एक छात्र से पूछ रही है—गुरुकुल कहां है? यही तो गुरुकुल है, माँ, जहां आप खड़ी हैं। नहीं, मुझे उनसे मिलना है। अब छात्र की समझ में आता है कि यह माता गुरुकुल के संचालक आचार्य रामदेव जी से मिलना चाहती है। चलो माँ, मैं तुम्हें उनके पास ले चलता हूँ। वृद्धा आचार्य जी के चरणों पर झुक जाती है और अश्रुसिक्त नेत्रों के साथ अपने पल्ले में बंधी एक पोटली निकालती है। उसमें कुछ सिक्के हैं—कुछ चांदी के रुपये और कुछ अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी तथा पैसे। आचार्य जी के हाथों में वह पोटली थमाती हुई कहती है– "मैं अम्बाले से आई हूँ, मेरा कोई नहीं है, घरों में कुछ छोटा–मोटा काम करके गुजारा करती हूँ। एक जवान बेटा था, कुछ महीने पहले उसे चेचक निकली और वह मुझे अकेली छोड़ कर भगवान् का प्यारा हो गया । मेरे बेटे की साध थी गुरुकुल के जल्से पर आने की। जाते–जाते वह कह गया–"माँ, तू गुरुकुल के जल्से पर जाना और जो कुछ तुझसे बन पड़े वहां दान कर आना।" आचार्य जी ने स्वयं अपने श्री-मुख से यह घटना गुरुकुल की एक सभा में सुनायी थी, इस टिप्पणी के साथ कि मैने इस संस्था के लिए अनेकों बड़े-बड़े दान पाये हैं, पर इस छोटे से पवित्र सात्त्विक दान को मैं सबसे अधिक महत्त्व देता हूँ।

आचार्य जी के पास गुरुकुल के लिए धन कई प्रकार से आता था। कुछ लोग स्वयं आकर दान दे जाते थे और अपने आपको धन्य मानते थे। कुछ गुरुकुल के वार्षिकोत्सव पर आचार्य जी की अपील पर आता था और उसकी पुष्कल राशि होती थी। लोग अपने बटुए खाली कर देते थे, माताएं अपने आभूषण उतार कर दे देती थीं। कुछ ऐसा ही अनोखा जादू था उनकी वाणी में। आचार्यप्रवर धनसंग्रह के लिए बाहर भी जाते थे। बाहर उनके भाषणों से वैदिक धर्म एवं गुरुकुलशिक्षाप्रणाली का प्रचार भी हो जाता था और धन भी पर्याप्त मिल जाता था। धन-संग्रह में वे सिद्धहस्त थे। किसी के यहां से खाली हाथ नहीं लौटते थे। एक बार आचार्य जी अमृतसर वेद-प्रचार एवं धन-संग्रह के लिए गये। वहां एक करोड़पति सज्जन थे, पर वे आर्यसमाज के नाम

से चिढ़ते थे। कोई आर्यसमाज के कार्यार्थ धन मांगने जाता था तो मिलने से भी इन्कार कर देते थे। साथियों ने आचार्य जी को परामर्श दिया कि वहां जाकर समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं है। पर आचार्य जी को तो न देने वाले से ही लेने में आनन्द आता था। वे उन धनपति के पास पहुंचे। किन्तु धनपति ने साफ-साफ कह दिया कि मैंने आर्य समाज के लिए एक पाई भी न तो कभी दी है और न ही आगे देने वाला हूँ। आचार्य जी ने कहा कि आप दान मत देना, पर हम क्या कर रहे हैं यह सुन लेने में तो कोई हानि नहीं है। देखिए, हम एक शिक्षणालय चलाते हैं, क्या इससे आपको विरोध है? हम बच्चों में धार्मिक भाव भरते हैं, क्या इससे आपको विरोध है? हम ब्रह्मचर्य और तपस्या पर बल देते हैं, क्या इससे आपको विरोध है? हम प्राचीन विषयों के साथ आधुनिक विषय अंग्रेजी, भौतिक विज्ञान आदि भी पढ़ाते हैं, क्या इससे आपको विरोध है? सेठ जी आचार्य जी की प्रत्येक बात पर यही कहते गये कि नहीं, यह तो अच्छा कार्य है, इससे कुछ विरोध नहीं है। अन्त में आचार्य जी ने कहा कि जब कहीं भी विरोध नहीं है तब तो हम और आप एक ही मार्ग के राही हैं। आप दान भले ही न दीजिए, पर यह मत कहिए कि मैं आर्य-समाज को नहीं देता हूँ। इस पर सेठ जी ने एक बहुत बड़ी राशि आचार्य जी को भेंट की, जो अमृतसर में मिली धनराशियों में सबसे बड़ी थी। यह घटना भी आचार्य जी ने स्वयं छात्रों की एक सभा में सुनायी थी और कहा था कि गुरुकुल का उद्देश्य इतना पवित्र है कि प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रभावित होता है, कुछ लोग स्वयं प्रभावित होते है और कुछ को प्रभावित करना पड़ता है।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के वार्षिकोत्सव पर स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती और आचार्य रामदेव जी प्रतिवर्ष आते थे। स्वामी जी गुरुकुल की त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट करते थे और आचार्य रामदेव जी धनसंग्रहार्थ अपील करते थे। एक वर्ष ठीक अपील के भाषण से पहले स्वामी जी का भाषण रख दिया गया। यह संयोगवश ही हो गया। तब अधिकारियों को चिन्ता हुई कि कहीं ऐसा न हो कि गुरुकुल की त्रुटियां सुनने के बाद जनता दान बहुत कम दे। यह शंका आचार्य जी के संमुख रख कर संयोजक ने उनके भाषण का समय बदलने की स्वीकृति चाही। आचार्य जी हँस कर बोले ऐसा भाग्य तो कभी-कभी ही मिलता है, समय बदलने की आवश्यकता नहीं है। आचार्य जी ने अपना भाषण गुरुकुलीय शिक्षा के महत्त्व पर दिया और स्वामी जी का धन्यवाद करते हुए अन्त में कहा कि हम दोनों के भाषण का सार यह है कि गुरुकुल को उन्नत करने के लिए दिल खोल कर दान दीजिए। खूब तालियां पिटीं और गत वर्षों की अपेक्षा तिगुना-चौगुना दान आया।

गुरुकुल की रजतजयन्ती पर आचार्य जी गुरुकुल के लिए एक लाख रुपया अफ्रीका से एकत्र करके लाये थे। तब हम छोटे-बड़े विद्यार्थी पीली धोती पहने हुए गंगापार गुरुकुल के

प्रवेशद्वार पर उनके स्वागत के लिए एकत्र हुए थे और कुलसभा में उनका भावभीना अभिनन्दन हुआ था। उन्होंने अपने अनुभव सुनाते हुए कहा था कि जनता गुरुकुल से प्रेम करती है और दिल खोल कर देना भी चाहती है। आवश्यकता इस बात की है कि उसे बताया जाए कि जंगल में बैठे हम क्या कर रहे हैं और क्या है आर्यसमाज तथा गुरुकुलशिक्षापद्धति।

विविध विषयों के निर्विघ्न अध्यापन के लिए महात्मा मुंशीराम ने यह योजना बनायी थी कि जितने विषय गुरुकुल में पढ़ाये जा रहे हैं उन सबके लिए तीस-तीस हजार रुपयों की एक-एक स्थिर निधि बना दी जाए, जिसके ब्याज से वे चलते रहें। धनसंग्रह द्वारा इस योजना को पूर्ण कराने में भी आचार्य रामदेव जी का ही हाथ रहा।

कन्या-गुरुकुल

दिल्ली के सेठ रग्घूमल जी ने कन्यागुरुकुल की स्थापना के लिए एक लाख रुपया दिया था। उस समय गुरुकुल कांगड़ी में आचार्य रामदेव जी ही थे, महात्मा मुंशीराम जी संन्यास लेकर बाहर विशाल क्षेत्र में पदार्पण कर चुके थे। आचार्य जी ने दिल्ली में ही कन्यागुरुकुल को स्थापित किया तथा सुश्री विद्यावती सेठ को आचार्या के पद पर प्रतिष्ठित किया। कालान्तर में वह कन्या-गुरुकुल देहरादून में स्थानान्तरित हो गया। आचार्य जी का वरद हस्त कन्या-गुरुकुल पर सदा ही रहा । उसके लिए उन्होंने धनसंग्रह भी बहुत किया। बाद में तो कांगड़ी छोड़ कर वे कन्या-गुरुकुल ही चले गये थे और उसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। मान्या विद्यावती के बाद श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल कन्या गुरुकुल की आचार्या हुईं और तदनन्तर चिरकाल से आचार्य रामदेव जी की सुपुत्री श्रीमती दमयन्ती विद्यालंकृता के आचार्यत्व में कन्यागुरुकुल प्रगतिपथ पर अग्रसर है।

संपादक और लेखक

संपादक और लेखक के रूप में भी आचार्य जी का योगदान बहुत उज्ज्वल है। आप डी.ए.वी कालेज के पत्र 'आर्य-मैसेंजर' और आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के मुखपत्र 'आर्य पत्रिका' के सम्पादक रहे। जालन्धर में 'सद्धर्मप्रचारक' के संपादन में महात्मा मुंशीराम का सहयोग करते रहे। लाहौर से 'प्रकाश' पत्र प्रकाशित हुआ, तो कुछ समय उसके संपादन में महाशय कृष्ण जी के सहायक हुए। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के पश्चात् अंग्रेजी की 'वैदिक मैगज़ीन' पत्रिका आप ही के संपादकत्व में निकलती रही। इसका संपादन आप सन् १९७० से १९९० तक निरन्तर करते रहे। इस पत्रिका के संपादन के कारण देश-विदेश में आपकी ख्याति हुई और वैदिक विषयों पर स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण का प्रचार भी हुआ। स्वामी दयानन्द पर आचार्य जी ने योगी श्री अरविन्द से दो महत्त्वपूर्ण लेख लिखवाये थे, जो वैदिक मैगज़ीन में

प्रकाशित हुए थे और अब पृथक् पुस्तकाकार भी मिलते हैं। उनमें स्वामी दयानन्द और उनके वेदभाष्य की बहुत प्रशंसा की गयी है। लेखक के रूप में आपका 'भारत वर्ष का इतिहास' अद्वितीय ग्रन्थ है, जिससे भारतीय साहित्य, सभ्यता और संस्कृति का गौरव प्रकट होता है। इनकी 'आर्यसमाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स' पुस्तक में आर्यसमाज के निन्दकों के आक्षेपों का मुंहतोड़ उत्तर दिया गया है। पण्डित जयचन्द्र विद्यालंकार के सहयोग से लिखी गयी 'पुराणमतपर्यालोचन' पुस्तक भी आपके वैदुष्य को उद्घोषित करती है।

पुस्तकों में रुचि

श्री आचार्य जी को पुस्तकों में बहुत रुचि थी। आपका निजी पुस्तकालय भी बहुत बड़ा था। उसमें जितना विदेशी और भारतीय अंग्रेजी पुस्तकों का भण्डार था, उतना विरलों के पास ही होता है। वे पाश्चात्त्य सभ्यता और सिद्धान्तों के खण्डन के लिए भी पुस्तकें पढ़ते थे और अपने ज्ञानार्जन के लिए भी। पाश्चात्त्य मन्तव्यों का खण्डन करते समय वे उद्धरण सुनाने के लिए ढेर सारी पुस्तकें मेज पर रख लेते थे। गुरुकुल के पुस्तकालय में आज भी पुस्तकों का एक बड़ा संग्रह आचार्य जी द्वारा मंगवाया हुआ रखा है। उन्होंने विद्यालय और महाविद्यालय के छात्रों के पाठ्यक्रम में रखने के लिए भी संस्कृत, हिन्दी और विज्ञान की पुस्तकें लिखवा कर प्रकाशित करवाई थीं।

नियम-पालन

छात्रों से नियम पालन करवाने की दृढ़ता आचार्य जी में महात्मा मुंशीराम जी से भी अधिक थी। वे स्वयं भी सन्ध्या, अग्निहोत्र, व्यायाम आदि नियम से करते थे तथा छात्रों से भी करवाते थे। महाविद्यालय का एक छात्र अग्निहोत्र में आठ दिन अनुपस्थित रहा। आचार्य जी ने उसे बुलाकर कारण पूछा तो उसने कहा कि मैं गंगा में तैरने चला जाता हूँ। इस उत्तर से आचार्य जी को बहुत पीड़ा हुई। उन्होंने छात्र को कहा—देखो, तुम दोनों ओर घाटे में रहते हो। साथियों के साथ बैठ कर अग्निहोत्र करने में जो आनन्द है, उससे भी वंचित होते हो, और तैरने का आनन्द भी साथियों के साथ तैरने में होता है, वह भी तुम्हें नहीं मिल पाता। ऐसा चुभता तर्क होता था आचार्य जी का। तब छात्र ने आचार्य जी के चरण स्पर्श कर लिये और पक्का नियमपालक हो गया। गुरुकुल में सम्बन्धियों के विवाहादि पर छात्रों को घर जाने की स्वीकृति नहीं मिलती थी। इस नियम के अनुसार आचार्यप्रवर ने अपने बड़े पुत्र यशपाल सिद्धान्तालंकार के विवाह पर गुरुकुल में प्रविष्ट अपने छोटे पुत्र सत्यभूषण को जाने की अनुमति नहीं दी। जो नियम वे दूसरों पर लागू करते थे उन्हें अपने ऊपर लागू करने में और भी अधिक कठोर होते थे। सप्ताह में एक दिन शनिवार को अध्ययनवेला की प्रार्थना के पश्चात् स्वाध्याय-सम्मेलन की परिपाटी उन्होंने ही चलायी थी, जिसमें वे छात्रों को नियम-पालन की और ज्ञान-विज्ञान की बातें अपने उपदेश में

बताते थे। अपने और छात्रों के मध्य पिता-पुत्र के सम्बन्ध की चर्चा भी वे प्राय: करते थे।

एक घटना

स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों की बात है। गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य पं. देवशर्मा जी थे। यह संयोग की ही बात है कि आचार्य रामदेव जी देहरादून से हरिद्वार गुरुकुल कांगड़ी आये हुए थे। उसी दिन पुलिस बड़ी संख्या में गुरुकुल कांगड़ी परिसर में आ गयी और बहुत से सिपाहियों ने गुरुकुल में लगे राष्ट्रिय ध्वज को चारों ओर से घेर लिया। शायद वे राष्ट्रिय ध्वज को उतार कर यूनियन जैक फहराना चाहते थे। महाविद्यालय के विद्यार्थियों को पता लगा तो वे सब काम छोड़ कर राष्ट्रध्वज की ओर दौड़े, आकर ध्वज से चिपट गये और नारे लगाने लगे। तभी आचार्य रामदेव जी घटनास्थल पर पहुंच गये। उन्होंने स्थिति की गंभीरता को समझा और पुलिस-अफसर के पास जाकर बोले—देखिए, ये नौजवान ब्रह्मचारी हैं, जान दे देंगे, पर झंडा नहीं उतरने देंगे। आप इस झंझट में क्यों पड़ते हैं? सब जवानों को यहां से हटा दीजिए। चलिए, मैं आपको गुरुकुल दिखाता हूँ, आप देख कर प्रसन्न होंगे। तब सब जवान झण्डे के पास से हट गये। जो दो-तीन अफसर थे, उन्हें आचार्य जी पुस्तकालय में ले गये। उस समय तक भवन बहुत कम बने थे। पुस्तकालय विद्यालय-भवन के मध्य के हॉल में था। वे लोग पुस्तकालय की अलमारियां देखते रहे कि शायद कोई आपत्तिजनक साहित्य मिल जाए। अन्त में एक पुस्तक उन्होंने निकाल ली, जो उन्हें आपत्तिजनक प्रतीत हुई। आचार्य जी ने कहा कि इस कोटि की तो और भी बहुत सी पुस्तकें आप कहें तो मैं आपके लिए निकलवा देता हूँ। इस पर झेंप कर इंस्पैक्टर ने वह पुस्तक भी छोड़ दी और पुस्तकालय में ही इस आशय की रिपोर्ट लिखने बैठ गया कि हमें इस संस्था में काई आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिली। उसकी अंग्रेजी भाषा में कुछ गल्तियां थीं। आचार्य जी ने कहा—क्षमा कीजिए, मैंने सदा जीवन में अध्यापकी की है, कृपया भाषा की ये गल्तियां ठीक कर लीजिए। इस पर वह और भी झेंप गया। पुलिस दल जैसा आया था वैसा ही वापिस चला गया। इस घटना पर गुरुकुलवासियों की यह टिप्पणी रही कि इस समय अचानक आचार्य रामदेव जी न आ गये होते तो कुछ अनहोनी हो सकती थी। छात्रों और पुलिस के बीच में संघर्ष होना अनिवार्य था, जिसका परिणाम कुछ भी हो सकता था।

जेल-यात्रा

आचार्य जी ने देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भी भाग लिया तथा सन् १९३२-३३ के सत्याग्रह आन्दोलन में वे जेल भी गये। उस समय जेल से महात्मा गांधी का श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार के नाम एक पत्र आया कि मुझे यह जानकर अच्छा लगा कि गुरुकुल के कुछ छात्र सत्याग्रह करके जेल गये हैं तथा पं. देवशर्मा जी भी जेल में हैं, पर मैं जानना चाहता हूँ कि आचार्य रामदेव जी कहां हैं। जब उन्हें सूचित किया गया कि वे भी जेल में हैं तब उन्हें अत्यन्त

सन्तोष हुआ तथा उन्होंने अनुभव किया कि आर्यसमाज केवल शास्त्रार्थ ही नहीं करता, अपितु अन्य ठोस कार्य भी करता है तथा उसमें देशभक्ति भी है। आचार्य जी की जेल-यात्रा से भी गुरुकुल का उत्कर्ष बढ़ा। सत्याग्रह में पंजाब कांग्रेस के डिक्टेटर के रूप में आपको एक वर्ष का कारावास मिला था। पहले आपको रावलपिण्डी जेल में रखा गया। फिर स्वास्थ्य खराब होने के कारण मुलतान जेल भेज दिया गया।

महाप्रयाण

जिसका जन्म पिता लाला चन्दूलाल जी के घर ३१ जुलाई सन् १८८१ को ग्राम बजवाड़ा (जिला होशियारपुर) में हुआ था, उस महामनीषी ने अपना समस्त जीवन गुरुकुल, आर्यसमाज, नारी-शिक्षा आदि को समर्पित कर कन्यागुरुकुल देहरादून में ९ दिसम्बर १९३९ को इहलोकलीला संवरण कर ली। उसके महाप्रयाण पर देहरादून की घाटी सिसक पड़ी, पर्वतमाला आँसू बहाने लगी, गुरुकुलों के चेहरे म्लान हो गये, गुरुकुल-शिक्षाप्रणाली धीरज खो बैठी, आर्यसमाज काँप उठा, जग रो पड़ा। विश्वास नहीं होता था कि वह वैदिक संस्कृति का पुजारी, आर्यसभ्यता का प्रहरी आज हमारे बीच नहीं रहा। किन्तु उसके आदर्श आज भी जीवित हैं। अपनी धुन के धनी उस महान् आचार्य के चरणों में हमारा शतशः प्रणाम है।

डॉ. रामनाथ वेदालङ्कार
वेदमन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों द्वारा राष्ट्रसेवा एवं बलिदान

जिस समय भारत पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, सर्वत्र लार्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली का बोलबाला था, सभी महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जा रही थी, यूरोपीय संस्कृति और जीवन-पद्धति को प्रतिष्ठा का पद प्रदान किया जा रहा था और इन विश्वविद्यालयों से दीक्षित स्नातकों में अपने देश, जाति, राष्ट्र, समाज व धर्म के प्रति अनादर की भावना उत्पन्न की जा रही थी, ऐसे समय में जगद्वन्दनीय महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रतिपादित प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को मूर्त रूप देने के लिए कुलपिता अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने सन् १९०० ई. में गुरुकुल की स्थापना की। उनके सम्मुख इस संस्था की स्थापना का प्रधान उद्देश्य जहां एक ओर अंग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली के विरोध में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने वाली एक नयी प्रणाली का सूत्रपात करना था, वहां दूसरी ओर गुरुकुलीय शिक्षा के माध्यम से ऐसे नागरिक तैयार करना भी था जो स्वतन्त्रता, मानसिक स्वाधीनता एवं राष्ट्रप्रेम की भावना से ओतप्रोत, चरित्रवान् तथा वैदिक धर्म, आर्य संस्कृति एवं भारतीय सभ्यता के रंग में रंगे हुए हों और जिनमें भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार एवं लोकसेवा की तड़प हो। इन्हीं आदर्शों को दृष्टि में रखकर गुरुकुल का संचालन किया गया और इस कार्य में काफी हद तक सफलता भी मिली।

आज गुरुकुल की स्थापना को लगभग १०० वर्ष पूरे हो गए है। स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा रोपे गये नन्हें से पौधे ने विशालकाय वृक्ष का रूप धारण कर लिया है। इस अवधि में गुरुकुल ने देश, जाति व समाज को अपने आदर्शों के अनुरूप ऐसे लोक सेवक नागरिक प्रदान किये हैं जिन्होंने अपने रचनात्मक कार्यों द्वारा राष्ट्रीय नव-निर्माण, सामाजिक, धार्मिक व साहित्यिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और 'कुलमाता' के गौरव को उत्तरोत्तर बढ़ाया है।

यहाँ हम गुरुकुल के स्नातकों द्वारा राष्ट्र के क्षेत्र में की गई सेवा एवं बलिदान का सिंहावलोकन करेंगे।

वर्तमान शताब्दी में सरकारी नियंत्रण से स्वतन्त्र रहते हुए सही अर्थों में राष्ट्रीय शिक्षा देने वाली सर्वप्रथम क्रांतिकारी संस्था गुरुकुल कांगड़ी ही थी। इसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी स्वयं एक देशभक्त राष्ट्रीय नेता थे, उनके मन में देश को स्वतन्त्र कराने की उत्कट अभिलाषा थी और इसके लिए जहाँ उन्होंने अपने जीवन की चिन्ता किए बिना वीरतापूर्वक असहयोग आन्दोलनों और सत्याग्रहों में भाग लिया, वहां गुरुकुल के वातावरण को भी विशुद्ध रूप से राष्ट्रीय बनाये रखने का प्रयास किया। यही कारण है कि ब्रिटिश सरकार चिरकाल तक इसे राजद्रोही एवं भयंकर खतरे का मूल मानती रही और इसके विषय में ब्रिटिश मजदूर दल के नेता रैमजे

मैकडानल्ड ने निम्न भाव प्रकट किए थे, जिनमें एक ओर गुरुकुल की उत्कृष्टता को स्वीकार किया गया है और दूसरी ओर सरकारी मनोवृत्ति का स्पष्ट बोध कराया गया है—"भारत के राजा-महाराजाओं के विषय में जिन्होंने थोड़ा सा भी पढ़ा है, उन्होंने गुरुकुल का नाम अवश्य सुना होगा। यहां आर्यसमाजियों के बालक शिक्षा ग्रहण करते हैं। आर्यों की भावना और सिद्धान्तों का यह अत्यन्त उत्कृष्ट मूर्त रूप है। इस उन्नतिशील धार्मिक संस्था के विषय में जितने भी संदेह किए जाते है वे सब इस गुरुकुल पर लाद दिए गए हैं। इसलिए इस पर शासन की तिरछी नजर है।"

यह सब होते हुए भी गुरुकुल राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत नागरिकों को उत्पन्न करने के अपने लक्ष्य से पल भर के लिए भी नहीं डिगा। यहां के छात्रों और दीक्षित स्नातकों ने राष्ट्रीय क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है और कुछ ने मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की भी आहुति दे दी। जब कभी महात्मा गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह संग्राम छिड़ा और नवयुवकों का आह्वान किया गया तो गुरुकुल के छात्र व स्नातक अग्रणी रहे।

१९३० के सत्याग्रह संग्राम में जब त्याग, तपस्या और बलिदान के लिए नवयुवकों की पुकार हुई तो श्री सर्वमित्र और सत्यभूषण ने देश के लिए हंसते-हंसते अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

१९३० के नमक सत्याग्रह, १९३०-३२ के अवज्ञा आन्दोलनों तथा १९४२ के राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी गुरुकुल के छात्र व स्नातक किसी से पीछे नहीं रहे। सन् १९४२ में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की ९ वीं और १० वीं दोनों कक्षाओं ने दिल्ली में चार-चार और पांच-पांच के समूह में धरना दिया, गिरफ्तार हुए और बोस्टन जेल में रखे गये। गुरुकुल कांगड़ी के महाविद्यालय के भी अनेक छात्रों ने ४२ के आन्दोलन में भाग लिया और सहारनपुर जेल में रखे गए। सर्वश्री देवशर्मा विद्यालंकार, चन्द्रमणि विद्यालंकार, भीमसेन विद्यालंकार, कृष्णस्वरूप विद्यालंकार, दीनदयालु शास्त्री, धर्मवीर वेदालंकार, भूदेव विद्यालंकार, सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, सुरेन्द्रनाथ आयुर्वेदालंकार, पूर्णचन्द्र विद्यालंकार, वासुदेव विद्यालंकार, रामेश्वर सिद्धान्तालंकार, सुभाष वेदालंकार, अमरनाथ विद्यालंकार, हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार, सत्यदेव विद्यालंकार, सोमप्रकाश आयुर्वेदालंकार, अवनिमोहन विद्यालंकार, धर्मेन्द्रनाथ वेदालंकार, वेदभूषण वेदालंकार, राजेश्वर वेदालंकार हरिदत्त आयुर्वेदालंकार, वेदप्रकाश आयुर्वेदालंकार, जगदीश वेदालंकार, भीमसेन वेदालंकार मेघाव्रत आयुर्वेदालंकार, चन्द्रगुप्त आयुर्वेदालंकार, गुरुदत्त आयुर्वेदालंकार, ब्रह्मदत्त विद्यालंकार, विद्यासागर विद्यालंकार, जयकृष्ण विद्यालंकार आदि ने इन आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और जेल यात्रा भी की। इनमें से कुछ तो उस समय तक स्नातक बन चुके थे और कुछ छात्र जीवन बिता रहे थे। यदि प्रतिशत की दृष्टि से गणना की जाए तो बहुत ही कम शिक्षा संस्थाएं ऐसी होंगी, जिनके छात्रों व स्नातकों को गुरुकुल के छात्रों व स्नातकों की भांति बहुत बड़ी संख्या

में जेलयात्रा का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो।

गुरुकुल के प्रथम स्नातक श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार प्रारम्भ से ही क्रांतिकारी विचारधारा के थे। आपने सुप्रसिद्ध क्रांतिकारियों के साथ सक्रिय रूप से कार्य किया और सन् १९१४ में राजा महेन्द्रप्रताप के साथ विदेश चले गए और वहीं आपका निधन हो गया।

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति को तो राष्ट्रप्रेम की भावना अपने पिता महात्मा मुंशीराम से मानो विरासत में ही मिली थी। बाल्यावस्था में ही उनमें राष्ट्रीय विचारों का सूत्रपात हो गया था और मन ही मन उन्होंने लोकमान्य तिलक को अपना राजनीतिक गुरु मान लिया था। उनके जीवन का ध्येय था, 'समाज व राष्ट्र की सेवा'। उनमें भारतीयता व राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। उन्होंने 'विजय' एवं 'अर्जुन' के माध्यम से अपनी ओजस्विनी लेखनी द्वारा सत्याग्रह व राष्ट्रीयता का सन्देश जन-जन तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया, जिस कारण वे राजद्रोही के रूप में प्रसिद्ध हो गए और ब्रिटिश सरकार की आंखों में खटकने लगे। १९२७, १९३० और १९३२ में इसी कारण उन्हें जेल यात्राएं करनी पड़ीं, परन्तु वे जेल के कष्टों को सहकर भी अपने ध्येय पर अडिग रहे और जीवन पर्यन्त देश, धर्म और जाति की सेवा में लगे रहे। १९५२ में राष्ट्रपति ने उन्हें सच्चे राष्ट्रसेवक और विद्वान् के रूप में राज्यसभा का सदस्य मनोनीत करके सम्मानित किया।

श्री देवशर्मा विद्यालंकार (आचार्य अभयदेव) महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यों के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहते थे और उन्होंने अपने पैतृक स्थान चरथावल में असहयोग आन्दोलन का अच्छा कार्य किया।

श्री पं. कृष्णस्वरूप विद्यालंकार ने बदायूं जिले में महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य किया है। वे कई वर्षों तक इस्लाम नगर में कांग्रेस के प्रधान व मंत्री तथा टाउन एरिया कमेटी के अध्यक्ष रहे और स्वतन्त्रता संग्राम के सिलसिले में दो बार जेल भी गए।

श्री केशवचन्द्र सिंह आयुर्वेदालंकार शाहजहांपुर जिले के प्रभावशाली एवं लोकप्रिय राष्ट्रीय नेता है और कांग्रेस के प्रतिष्ठित कार्यकर्त्ता है। उन्होंने अपना जीवन कांग्रेस के कार्यों के लिए ही समर्पित कर दिया है। वे वर्षों तक विधानसभा के सदस्य भी चुने जाते रहे।

सहारनपुर जिले की राष्ट्रीय जागृति का प्रधान श्रेय गुरुकुल को है। १९३० में रुड़की में हुए नमक-सत्याग्रह आन्दोलन में गुरुकुल के छात्रों व स्नातकों ने ही बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया था। श्री पूर्णचन्द्र विद्यालंकार सहारनपुर जिले के त्यागी, तपस्वी एवं अग्रणी राष्ट्रीय नेता है। आपने ग्रामोद्धार और महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यों में विशेष योगदान किया। कुछ वर्ष जिला कांग्रेस कमेटी के प्रधान तथा उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के सदस्य भी रहे। उत्तर प्रदेश की

जनजागृति का बहुत बड़ा श्रेय आपको भी दिया जाता है। इस जिले के विकास और प्रतिष्ठा को बढ़ाने में श्री दीनदयालु शास्त्री का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। वे लगातार कई वर्षों तक उत्तरप्रदेश की विधानसभा व विधानपरिषद् के सदस्य रहे और श्री चन्द्रभानु गुप्त के मन्त्रिमण्डल में उपशिक्षामंत्री चुने गए। राज्य की राजनीति में उनका प्रमुख स्थान था।

श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार ने दिल्ली में गुप्त रूप से शहीद शिरोमणि भगतसिंह के साथ क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लिया। १९३० में उन्हें कलकत्ता में सत्याग्रह आन्दोलन के सिलसिले में तथा १९३८ में कानपुर में नमक कानून का उल्लंघन करते हुए श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के साथ जेल जाना पड़ा।

श्री सत्यदेव विद्यालंकार गांधी जी और जमनालाल बजाज के सान्निध्य में वर्धा आश्रम में रहे, उन्होंने १९२३ में राष्ट्रध्वज आन्दोलन में भाग लेकर पहली बार राष्ट्रीय संघर्ष में प्रवेश किया। परिणामत: अनेक बार जेलयात्रा करनी पड़ी।

श्री सत्यपाल सिद्धान्तालंकार ने महान् क्रांतिकारी भगतसिंह व शहीद चन्द्रशेखर आजाद के निकट सम्पर्क में आकर उनके क्रांतिकारी कार्यों में हाथ बटाया। लाहौर में सांडर्स हत्याकांड व दिल्ली एसेम्बली में हुए बम विस्फोट के सिलसिले में इनकी गिरफ्तारी का वांरट भी जारी हुआ था।

श्री धर्मवीर वेदालंकार भी स्वतंत्रता-सेनानियों में अग्रणी रहे है। वे पूज्य बापू की प्रबल प्रेरणा पाकर आजादी की लड़ाई में कूद पड़े और कई सत्याग्रहों में भाग लेकर कारावास-जीवन के अनुभव प्राप्त किए। इनकी कार्यशैली से प्रभावित होकर १९३७ में कांग्रेसी सरकार ने इन्हें रांची नगरपालिका का आयुक्त मनोनीत किया।

बिहार की राजनीति में भी गुरुकुल के स्नातकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार ने बिहार कांग्रेस कमेटी और दानापुर कांग्रेस कमेटी के प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में अपने रचनात्मक कार्यों से प्रदेश की अभूतपूर्व सेवा की । श्री विद्याकिशोर विद्यालंकार बिहार के सक्रिय राजनीतिक कार्यकर्त्ता हैं। इन्होंने अपना सारा जीवन कांग्रेस के रचनात्मक कार्यों द्वारा इस प्रदेश के विकास के लिए समर्पित कर दिया है। १९६२-६७ में ये बिहार विधानसभा के सदस्य चुने गए। इस अवधि में बिहार सरकार ने इन्हें विभिन्न सलाहकार मंडलों व समितियों में मनोनीत करके इनकी योग्यता व क्रियाशीलता का पूरा-पूरा लाभ उठाया।

पटना निवासी श्री सुरेन्द्रनाथ विद्यालंकार भी सच्चे राष्ट्रसेवक है। इनका शहीद भगतसिंह के कार्यकलापों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। इन्होंने उनके कार्यों में सक्रिय सहयोग दिया और उनके मुकदमें के लिए हजारों रूपयें एकत्र करके कलकत्ता भेजे। साथ ही इन्होंने असहयोग आन्दोलन

में सम्मिलित होने के कारण सपत्नीक जेलयात्रा भी की।

पंजाब व हरियाणा का राजनीति-क्षेत्र भी स्नातकों के योगदान से अछूता नहीं रहा। श्री रामेश्वर सिद्धान्तालंकार ने गांधी सेवा संघ और कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में कई बार राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लिया और जेल यात्रा की ।

श्री अमरनाथ विद्यालंकार प्रख्यात राष्ट्रीय नेता है। ये १९४१ में किसान आन्दोलन और १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन के सिलसिले में कई वर्षों तक जेल में रहे। ये स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पंजाब विधानसभा के सदस्य बने। नया संविधान बनने पर १९५२ में लोकसभा के, १९५७ में विधानसभा तथा १९६२ में पुन: लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। ये १९५६ में पंजाब के श्रम व स्वास्थ्य मंत्री और १९५७ में श्रम, शिक्षा व भाषामंत्री रहे। इस समय ये लोकसभा के सदस्य के रूप में अपने स्वतन्त्र विचारों और क्रियात्मक कार्यों द्वारा देश की सेवा में व्यस्त हैं। श्री समरसिंह वेदालंकार तथा श्री जगदीश वेदालंकार ने भी पंजाब विधानसभा के सदस्य तथा पंजाब कांग्रेस कमेटी के प्रमुख कार्यकर्त्ता के रूप में काफी ख्याति प्राप्त की।

आंध्रप्रदेश में स्व. विनायकराव विद्यालंकार की सेवाओं को आज भी आदर के साथ स्मरण किया जाता है। ये कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। अपनी राष्ट्रीय सेवाओं के कारण १९५१ में विधानसभा के सदस्य और प्रदेश के वित्तमंत्री तथा दूसरे चुनाव में लोकसभा के सदस्य चुने गए। इन पदों पर कार्य करते हुए अपनी योग्यता एवं दूर-दर्शिता के कारण ये काफी लोकप्रिय हुए। श्री शंकरदेव वेदालंकार भी इसी प्रदेश के होनहार नेता है। ये १९५२-५६ में हैदराबाद राज्य के समाजसेवा मंत्री और १९५७-६२ में लोकसभा के सदस्य रहे और आज भी लोकसभा के सदस्य के रूप में देश की सेवा कर रहे है।

अनेक क्रांतिकारियों को भी गुरुकुल में प्रश्रय मिलता रहा है। श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर भी इनमें से एक हैं। आपको 'पृथ्वीसूक्त' पुस्तिका लिखने पर गुरुकुल से बेड़ियां पहनाकर गिरफ्तार किया गया था।

डॉ. विनोदचन्द्र विद्यालङ्कार
II/४०५, कृषि एवं प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, पन्तनगर (नैनीताल)

मेरे पितामह
अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी

इतने महान् पुरुष की पौत्री होना, स्वयं में एक रोमांचक अनुभव है। जब लोगों को विशेष रूप से आर्य समाज से सम्बन्धित व्यक्तियों को अकस्मात् पता चलता है कि मै उस महान् व्यक्ति की पौत्री हूँ, तो उनके नेत्रों में श्रद्धा एवं आदर के भाव उमडने लगते हैं और हाथ जुड़ जाते हैं। कई तो पैरों की ओर हाथ बढ़ाते हैं। तब मैं अत्यन्त संकुचित हो उठती हूँ। सोचती हूँ कि क्या मैं इस आदर के योग्य हूँ ? उस समय अपने को बहुत तुच्छ पाती हूँ। पर कर भी क्या सकती हूँ ? दादा जी के विलक्षण व्यक्तित्व, उनकी राष्ट्र के प्रति धार्मिक, राजनैतिक व सामाजिक सेवाओं का प्रसाद मुझे मिलता ही रहा है।

सर्वप्रथम मुझे अपने दादाजी की महानता का प्रसाद तब मिला, जब कन्या गुरुकुल देहरादून में मेरा प्रवेश हुआ। गुरुकुल के कार्यालय में पहुँचते ही, सम्पूर्ण आश्रम में समाचार फैल गया। पिताजी से विदा हो, उदास मन से, अधिष्ठात्री माँ के साथ आश्रम के परिसर में प्रवेश किया, तो आश्चर्य और उत्सुकता से भरे सैकड़ों नेत्र मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। ब्रह्मचारिणियों में खलबली मच गई कि "स्वामी जी की पौत्री" आ गई। गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक, आर्यनेता, कुशल वक्ता और देश, धर्म के लिए बलिदान होने वाले महान् नेता, स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी को पाठ्यक्रम में पढ़ती थी। "श्रद्धानन्द बलिदान दिवस" पर सात दिन प्रभात फेरी होती थी। दिसम्बर की कड़कड़ाती सर्दी में, सवेरे साढ़े तीन बजे आश्रम का निर्धारित वेश (सफेद खद्दर की धोती, जिसके किनारे एक इंच चौड़े नीले होते थे) खूब अच्छी तरह ओढ़कर, हाथ में लालटेन लेकर प्रभातफेरी के लिए निकला जाता था। भजन गाते और जयजयकार करते, पांच बजे ओम् के झण्डे के चारों ओर एकत्रित हो, "जयति ओम् ध्वज व्योम विहारी" के साथ झण्डाभिवादन कर, फिर नित्यकर्मों में प्रवृत्त होते थे।

अस्तु, जब आश्रम में पहुँची तो "श्रद्धानन्द जी की पोती" आ गई के साथ स्वागत हुआ और फिर धीरे–धीरे "श्रद्धानन्द" गायब हो गया और केवल "पोती" रह गया। मेरी अपनी पहचान समाप्त हो गई। स्वाभाविक है मुझे बहुत बुरा लगा। दु:खी और परेशान होकर कुछ कहती भी, तो कोई असर न होता। लगभग एक डेढ़ महीने बाद पिताजी फिर देखने आये कि मैं स्वस्थ प्रसन्न तो हूँ। मैने आंखों में आंसू भरकर उन्हें अपनी दु:ख गाथा सुनाई। पिताजी थोड़ा सा मुस्कराये और सिर पर हाथ रखकर कहा, "बस इतनी सी बात है। अच्छा ये बता और किसी कन्या को भी इस भांति सम्बोधन किया जाता है ?"

मेरे "ना" कहने पर उन्होंने हंसकर मुझे आश्वस्त करते हुए कहा – "देख, तू विशिष्ट पोती है। इसी से तुझे ऐसा पुकारते हैं" उसके बाद उन्होंने संक्षेप में दादाजी के बारे में बताया। तब मुझे लगा कि मैं तो यूँ ही परेशान थी, यह तो मेरे लिए गर्व का विषय है। इतनी आसान भी नहीं है यह अनुभूति। व्यंग्योक्तियां भी सुननी पड़तीं। खेलो कूदो या पढ़ने में जरा सी ढील हुई नहीं, तो सुनो, "कहाँ इसके दादा और कहाँ यह। नाम ही बदनाम कर दिया दादा का।" कौन समझाये उन्हें कि वो–वो थे और मैं–मैं हूँ।"

स्वामी जी का बलिदान २३ दिसम्बर १९२६ को हुआ था। मैं उस समय मात्र डेढ़ वर्ष की थी। अत: मेरे हृदय में दादाजी की जो भी स्मृतियाँ हैं वे पिताजी से उधार ली हुई हैं।

उस दिन की घटना पिताजी प्राय: सुनाया करते थे। उन्ही के शब्दों में, "जैसा कि मुझे याद है कि पिताजी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) कई दिनों में निमोनिया से पीडित थे। डा. अन्सारी का इलाज चल रहा था। एक दिन पहले ही ज्वर नार्मल हुआ था। डाक्टर ने पूर्ण विश्राम का आदेश दिया था। वे कुछ देर पहले ही उनसे मिलकर घर अर्थात् "अर्जुन प्रेस" के ऊपरी मंजिल पर लौटे थे और भोजन कर चुके थे कि बाबू जीवन लाल जी ने नीचे से आवाज दी कि स्वामी जी को गोली मार दी गई है। मैं वैसे ही सीढ़ियाँ उतर कर भागा। पिताजी उसी बाजार में थोड़ी दूर पर ही दूसरी मंजिल पर रहते थे। आज वह भवन " श्रद्धानन्द बलिदान भवन" के नाम से जाना जाता है। ऊपर जाकर जो दृश्य देखा वो इस प्रकार था – "पिताजी शान्त भाव से आराम कुर्सी पर सर टिकाये लेटे थे। उनके भगवे कुर्ते पर सामने की ओर लाल रक्त के धब्बे दिखाई दे रहे थे। एक और सेवक धर्मसिंह अपनी जांघ दबाये बैठा था। हत्यारे ने उसे भी गोली मारी थी। अन्त में बिस्तर के पीछे की ओर पं० धर्मपाल जी विद्यालंकार पट्ट पड़े थे। मैंने सबसे पहले पिताजी की नाड़ी देखी, माथे को छुआ। एक दम ठण्डा था। कोई स्पन्दन न था। धर्मपाल जी से पूछा, "क्या आपको भी गोली लगी है। ?"

"नहीं, मैंने हत्यारे को दबा रखा है, आप मेरी चिन्ता मत कीजिए, स्वामी जी को देखिए"। धर्मपाल जी को हम चाचाजी कहते थे। बाद में वे भी हमें यह घटना सुनाते थे। डीलडौल और कद से भव्य पहलवान लगते थे। बाद में वे गुरुकुल कांगड़ी के सहायक मुख्याधिष्ठाता भी रहे। उस समय वे दादाजी के सेक्रेटरी थे। जब तक पुलिस नहीं आई, वे उस हत्यारे अब्दुल रशीद को उसी भांति दबाये रहे।"

'तभी की एक स्मृति, पिताजी इस घटना के साथ सुनाते थे। शहर में ज्यों ज्यों यह खबर फैलती गई, उत्तेजना फैलती गई। यह खबर सुनते ही एक व्यक्ति छुरा लिए, उत्तेजना में दहाड़ता ऊपर आया और पूछा, "कहाँ है वह हत्यारा ! उसको मैं जीवित नहीं जाने दूँगा।" बडी मुश्किल से उसे रोका। पर सायंकाल तक शहर में साम्प्रदायिक दंगे आरम्भ हो गये, जिसमें कम से कम ४–५ लोग मारे गये। स्वामी जी की शवयात्रा का इतना बड़ा जलूस देहली में शायद न कभी

निकला था न निकलेगा। लोग पिताजी से पूछते थे कि ऐसा क्यों हुआ ? स्वामी जी तो हिन्दू मुसलमानों दोनों के हृदय सम्राट् थे। जामा मस्जिद के मिम्बर से प्रबचन करने का श्रेय केवल स्वामी श्रद्धानन्द को ही प्राप्त हुआ था। फिर ऐसा क्यों हुआ ?

दादाजी अत्यन्त संवेदनशील व भावुक व्यक्ति थे। जो भी करते सम्पूर्ण हृदय व शक्ति से करते। कांग्रेस में शामिल हुए तो सम्पूर्ण हृदय से। सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन में शामिल ही नहीं हुए, उसका नेतृत्व भी किया। "हम" की व्याख्या वे हिन्दू और मुसलमान से करते थे।

उस समय समाज में वही अवधारणा थी कि अगर एक हिन्दू मुसलमानों के साथ सम्पर्क रखता है या मुसलमान बन जाता है, वह फिर हिन्दू नहीं बन सकता। मुल्लाओं द्वारा धर्म परिवर्तन, ईसाईयों द्वारा दलितों को ईसाई बनाने का कार्य, अनवरत चल रहा था। अगर कोई अपनी गलती समझकर फिर से हिन्दू धर्म ग्रहण करना चाहे, तो उसके रास्ते बन्द थे। महर्षि दयानन्द की शिक्षा व आर्यसमाज की आध्यात्मिक प्रेरणा से स्वामी जी ने उन बिछड़े भाईयों को फिर से अपने साथ मिलाने के लिए शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भ किया। समूह के समूह स्वेच्छा से शुद्ध होने लगे – तो मुसलमानों ने गांधी जी से शिकायत की। जिस गांधी को हिन्दुओं के मुसल्मान होने पर कोई एतराज न था, मुसलमानों की शिकायत पर बौखला गए और स्वामी जी को तुरन्त इस आन्दोलन को बन्द करने का आदेश दिया। जैसा कि स्वामी जी का स्वभाव था, जो उचित समझते थे वही करते थे और सम्पूर्ण हृदय से करते थे। महात्मा गांधी के पत्र के उत्तर में उन्होंने कांग्रेस की सदस्यता से ही त्याग पत्र दे दिया। महात्मा गांधी ने अपने पत्र "यंग इण्डिया" में शुद्धि के विरूद्ध बहुत कुछ लिखा और उसी के परिणाम स्वरूप यह घटना घटी। मुसल्मानो का साहस और बढ़ गया। उन्हें सह मिल गई।

इस तुष्टिकरण की नीति ने हमारे देश का अनगिनत अहित किया है और आज भी उसी नीति पर चलकर राष्ट्र का र्स्वथा अहित किया जा रहा है।

मै भावुकता में बहुत कुछ कह गई। बताना तो चाह रही थी दादा जी की कुछ अन्तरंग बाते। पर बह गई राजनीति में –

मेरे पिता जी मेरे दादा जी के सबसे छोटे व लाड़ले बेटे थे। अपने दादा जी की मृत्यु के समय मेरे पिता जी दो वर्ष के थे दादा जी अपनी भाभी व भाई आत्माराम जी को गृहस्थी का सारा भार सौंप सामाजिक, धार्मिक कार्यो में अधिक से अधिक समय देने लगे। उसी समय उन्होंने जालन्धर में शानदार कोठी का निर्माण करवाया था। दादा जी का व्यक्तित्व जितना भव्य था वैसे ही उनके कार्य शानदार और भव्य होते थे। उस समय वे वकील मुंशीराम थे। कोठी के साथ ही सद्धर्म प्रचारक का कार्यालय व प्रेस था। अस्तबल में एक बडी बन्द बग्घी, एक छोटी गाडी, घोडे, दो गाय हर समय रहती थी। कचहरी छोटी बग्गी मे जाते थे उसे स्वयं चलाते ओर पीछे कोचवान खडा रहता। उस समय कोट, पेन्ट व टाई पहनते थे। अपनी अनेक व्यस्तताओं मे भी बच्चो को अच्छी धार्मिक कथायें सुनाने का समय निकाल लेते। आर्यसमाज के उत्सवों या अन्य कार्य से जाते तो लौटकर बच्चों की पढ़ाई आदि के बारे में पूछते।

एक बार दादा जी लाहौर आर्य समाज के अधिवेशन से लौटे तो उनका सामान, सड़क

के दूसरी ओर आर्य समाज के मंदिर में उतारा गया। इधर खलबली मच गई पिता जी की ताई ने समझा कि उनसे कोई गलती हो गई सब बच्चो को लेकर रोती हुई आर्यसमाज मंदिर पहुंची तब दादा जी ने उसे शान्त करके बताया कि "उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि गुरुकुल बनाने के लिए जब तक ३० हजार रुपया एकत्र नहीं कर लूँगा, घर में कदम नहीं रखूँगा।"

उनके जाने के बाद कोठी में सन्नाटा फैल गया। उस समय ताया जी आठवीं व पिताजी सातवीं में पढ़ रहे थे। कुछ दिनों बाद दादा जी की आज्ञा से दोनों भाइयों को "गुजरांवाला की वैदिक पाठशाला" भेज दिया गया। गुरुकुल के लिए हरिद्वार में भूमि प्राप्त होने के बाद वहीं से उन्होंने दादा जी के पीछे गुरुकुल के प्रथम ब्रह्मचारी के रूप में गुरुकुल में प्रवेश किया।

कालान्तर में अपनी यह कोठी भी दादाजी ने गुरुकुल को दान कर दी। इस कोठी को दान देने की भी स्मृति पिताजी को सदा उद्वेलित करती थी। उस वर्ष पिताजी व तायाजी (इन्द्र विद्यावाचस्पति व हरिश्चन्द्र वेदालंकार) स्नातक बनने वाले थे। दादाजी ने अपना वसीयतनामा लिखा हुआ था – जिसमें जालन्धर की कोठी बेचकर दोनो पुत्रों को बराबर देने का प्रावधान था। लगभग २० हजार रुपये कोठी के मिलेंगे। दस हजार इन्द्र को 'सद्धर्म प्रचारक' देहली से निकालने के लिए व हरिश्चन्द्र को दस हजार रुपये विदेश में जाकर "बैरिस्ट्री" पास करने के लिए।

अकस्मात ही उनका विचार बदल गया। देहली में एक धनाढ्य रायसाहब के यहाँ गुरुकुल के लिए दान लेने गए। वे बाहर ही नहीं आए। उठकर डेरे पर आकर, उन्होंने आत्ममन्थन किया कि ऐसा क्यों हुआ ? समझ में आया – "तूने तो अभी पूर्णाहुति दी ही नहीं" विचार आया और निश्चय हो गया। पिताजी बताते थे – "उत्सव से एक दिन पहले सवेरे चार बजे हम दोनों भाइयों को ऊपर बंगले पर बुलाया और दानपत्र सामने रखकर कहा "सहमत हो तो हस्ताक्षर कर दो"। असहमत होने का कोई प्रश्न ही नहीं था। हम दोनों ने हस्ताक्षर कर दिए। बाद में बड़ी बहन वेदकुमारी जी व अन्य परिजनों ने समझाया कि अभी भी समय है। मना कर दो। बची–खुची सम्पत्ति भी दान कर दी ! हम दोनों भाई मुस्कराकर चुप रहे क्योंकि जानते थे उन्हें समझाना व्यर्थ है! हम ही जानते हैं कि उन्होंने हमें विरासत में क्या दिया है ?

दूसरा दिन अपील का था। उस उत्सव पर लगभग ७५ हजार नर नारी उपस्थित थे। पिताजी अपील करने खड़े हुए और देहली वाली घटना सुनाकर अपना दानपत्र पढ़ सुनाया। भाषण लगभग डेढ़ घण्टे का था। पण्डाल में स्तब्धता थी। लोगों की आंखों में आंसू बह रहे थे। उस समय के आर्य नेता महाशय कृष्ण जी, भक्त प्रवर लब्भूराम नैधर, सभा प्रधान लाला रामकृष्ण जी आंसू पोंछ रहे थे। भाषण समाप्त होते ही पण्डाल तालियों और नारों से गूंज उठा।

लिखते–लिखते हाथ थक गये, पर स्मृतियाँ जो सून–सुनकर हृदय में संजो रखी थी, समाप्त नहीं हो रहीं। अन्त में प्रभु से यही प्रार्थना करती हूँ कि मुझे व स्वामी श्रद्धानन्द के मानस पुत्रों को शक्ति दे कि उनके बनाये पथ पर दो चार कदम भी चल सकें – इसी से वे धन्य हो जायेंगे।

– पुष्प शोभा विद्यालंकृता

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय

६० राजपुर रोड़, देहरादून का संक्षिप्त परिचय

(गुरुकुल कांगड़ी वि.वि. हरिद्वार का अंगभूत महाविद्यालय)

स्वतंत्र भारत के स्वप्न दृष्टा, आर्य समाज के संस्थापक, युग प्रवर्तक, नारी जागरण के पुरोधा श्री महर्षि दयानन्द जी सरस्वती की दिव्य दृष्टि के वरदान स्वरूप ही वैदिक संस्कृति एवं शिक्षा के पुनरुत्थान के लिए ही गुरुकुलों की स्थापना हुई। पाश्चात्त्य शिक्षा पद्धति से भारत वर्ष को मुक्त करने के लक्ष्य को लेकर ४ मार्च १९०२ को हरिद्वार के कांगड़ी गांव में अमर बलिदानी श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के द्वारा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी थी। इसी शृंखला में इस कन्या गुरुकुल महाविद्यालय का नाम भी अनन्त काल तक आर्य समाज के इतिहास में स्मरण किया जाता रहेगा। जहां वैदिक सभ्यता, संस्कृति के साथ–साथ आधुनिक ज्ञान–विज्ञान का अनूठा समन्वय है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसकी रजिस्ट्री भारत सरकार के एक्ट २१ए १८६० ई० के अनुसार सन् १८८४ में हुई थी। २६ नवम्बर १८९८ ई० को आर्य प्रतिनिधि पंजाब ने गुरुकुल खोलने का निश्चय किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने बालकों की शिक्षा के लिए गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार की स्थापना की। उन्हीं नियमों के अनुसार बालिकाओं के लिए २३ कार्तिक १९८० विक्रमी, तदानुसार ८ नवम्बर १९२३ ई० को दीपावली के दिन दिल्ली में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय की स्थापना की गई। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी से प्रेषित होकर सुप्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान् नेता स्व० श्री आचार्य रामदेव जी, जिनका गुरुकुल महाविद्यालय–विश्वविद्यालय के निर्माण में भी महत्त्वपूर्ण योगदान है, इस संस्था के आदि संस्थापक थे। प्रथम आचार्या श्रीमती विद्यावती सेठ जी थी। कन्या गुरुकुल तीन साल के लगभग दिल्ली में रहकर १ मई १९२७ को देहरादून आ गया और तब से यही पुष्पित – पल्लवित हो रहा है।

प्राचीन ऋषि – मुनियों द्वारा प्रतिपादित आदर्शों के अनुरूप अलग–अलग जाति वंश, सम्प्रदाय और धर्म की छात्राओं को बिना किसी भेदभाव के गुरुकुल आश्रम–व्यवस्था में रहकर दीक्षित करके आर्य समाज के मंतव्यों के अनुसार वेद–वेदांग, संस्कृत साहित्य, प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ–साथ अर्वाचीन ज्ञान–विज्ञान में शिक्षित करके और इस प्रकार देश और मानव जाति की सेवा के लिए बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न आदर्श नारियां तैयार करने के उद्देश्य से इस संस्था की स्थापना की गई। गुरुकुल महाविद्यालय विश्वविद्यालय उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ आज एक विशाल वट की भांति पुष्पित एवं पल्लवित हो रहा है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में खटकने वाली जो त्रुटियां हैं उनका निरीक्षण एवं निराकरण ही इस संस्था का प्रधान लक्ष्य है। अशिक्षा एवं



सन् १९६६ ई० के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार-कुलपति, तत्कालीन रक्षामन्त्री श्री यशवन्तराव बलवन्तराव चह्वाण को वेश धारण कराते हुए।

अंधविश्वास से जर्जरित नारी समाज का कायाकल्प करने के लिए एक नवीन सांस्कृतिक चेतना का प्रतिष्ठान, रूढ़ियों के ध्वंस पर जागृति के नव सृजन का आह्वान तथा जीवन के शाश्वत् नीति सूत्रों का आदर्शीकरण ही कन्या गुरुकुल का महान् उद्देश्य है। इस संस्था की शिक्षा पद्धति का अपना एक मापदण्ड है। जिसमें प्राचीन आदर्शों के पुनरुत्थान के साथ–साथ नवीन एवं उपयोगी उद्भावनाओं और विचार सारणियों का समावेश तथा सजग अन्वेषण है। और है जीवन के पोषक तत्वों के सदुपयोग करने की प्रबल प्रवृत्ति। इस प्रकार यह कन्या गुरुकुल अपनी ईकाई में भारतीय शिक्षण प्रगति की एक ऐतिहासिक सूचना है। संस्था में शिक्षा प्राप्त करने के लिए आने वाली छात्राओं के लिए यहीं छात्रावास में रहना अनिवार्य है। विभिन्न वर्गों और जातियों की कन्याएं भारत के सभी प्रान्तों उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब, उड़ीसा, कश्मीर, आसाम आदि तथा भारत के बाहर के देशों नेपाल, बर्मा, अफ्रीका, कुवैत, बगदाद, मलाया सिंगापुर, चीन से भी यहां शिक्षा ग्रहण करने आती है। यहां ३०० छात्राओं के लिए चार छात्रावास हैं। वर्तमान में यहां एम.सी.ए., एम.बी.ए., एम.बी.एस. तथा एम.बी.ई आदि पाठ्यक्रम भी पढ़ाये जा रहे हैं।

देहरादून की जलवायु

कन्या गुरुकुल देहरादून रेलवे स्टेशन से राजपुर होकर मंसूरी जाने वाली पक्की सड़क के दाईं ओर रेलवे स्टेशन से लगभग २ मील दूर सुन्दर सघन वन तथा प्राकृतिक दृश्यों से घिरी हुई स्वास्थ्यप्रद, समुद्रीय सतह से लगभग १८०० फीट ऊँची भूमि में स्थित है। यहां की जलवायु ग्रीष्म तथा शीत दोनों ऋतुओं में समान रूप से स्वास्थ्यप्रद है। छात्राओं के निवास के लिए ७५ बीघा भूमि में सुन्दर तथा विस्तृत आश्रम, भोजनशाला, स्नानागार, सभा भवन, औषधालय तथा चिकित्सालय एवं विद्या भवन आदि आवश्यक भवन हैं। गुरुकुल की भूमि तथा भवनों का इस समय वर्तमान मूल्य लगभग १४ करोड़ रुपये है। खेलने के लिए खुला मैदान है। चारों तरफ सुन्दर पर्वतीय दृश्य तथा वनों की हरियाली मन को लुभाने वाली है।

अपनी प्राकृतिक छटा के कारण ही देहरादून भारतीय सरकार के बड़े–बड़े विभागों का केन्द्र है। यहां वन विभाग तथा सैन्य शिक्षा के उच्चतम कॉलेज हैं। अंग्रेजी स्कूलों की तो यहां भरमार है। सर्वे ऑफ इण्डिया का सबसे बड़ा कार्यालय भी यहीं है। देहरादून के स्वास्थ्यप्रद जलवायु के कारण यह नगर सब प्रकार की शिक्षा तथा प्रगतियों का केन्द्र होता जा रहा है। इस समय यह उत्तरांचल राज्य की राजधानी भी है। दिल्ली से इस संस्था को यहां लाने का प्रधान कारण यहां की स्वास्थ्यप्रद जलवायु तथा प्राकृतिक छटा है।

विकास

ईश्वर का धन्यवाद है कि कन्या गुरुकुल जो अपने शैशवकाल में प्रथम चार श्रेणियों से किराये की कोठियों में आरम्भ हुआ था वह अब इसके कार्यकर्ताओं के परिश्रम एवं लगन के फलस्वरुप विगत ७४ वर्षों से भारत का एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय महाविद्यालय बन चुका है और अपने हीरक जयन्ती वर्ष में प्रवेश कर रहा है तथा इसने अपना राजकीय स्थान भी बना लिया है। इसके

समस्त भूमि एवं भवनों के मूल्यों को लगाकर इसकी सम्पत्ति लगभग पांच करोड़ रुपये हैं। इस गुरुकुल में वैदिक और अर्वाचीन साहित्य के साथ–साथ गृह विज्ञान, अंग्रेजी, शिल्पकला, संगीत, इतिहास, भूगोल, गणित, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, गृहविज्ञान, गृह चिकित्सा तथा विज्ञान आदि अर्वाचीन विज्ञानों की शिक्षा राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से दी जाती है। गुरुकुल में उच्च मानसिक उन्नति के साथ–साथ ब्रह्मचर्य के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करते हुए व्यायामादि द्वारा शारीरिक उन्नति के लिए विशेष रुप से उधोग किया जाता है।

कन्या गुरुकुल को वर्तमान उन्नत अवस्था तक लाने में यहां की सर्वप्रथम आचार्या कुमारी विद्यावती जी सेठ का योगदान गुरुकुल के इतिहास में सदैव स्वर्णिम अक्षरों में लिखा रहेगा। आपने अपना सम्पूर्ण यौवन उसके निर्माण में लगा दिया। उनके हाथ का लगाया हुआ यह पौधा आज एक विशाल वृक्ष वन गया है। यह उनकी तपस्या तथा कर्मठता का ज्वलन्त प्रतीक है।

गुरुकुल को महाविद्यालय का रूप देने का सर्वाधिक श्रेय स्व० श्री आचार्य रामदेव जी के अथक परिश्रम एवं प्रयत्नों को ही है। महाविद्यालय के आरम्भ करने पर शिक्षिकाओं के अभाव में यह स्वयं महाविद्यालय की छात्राओं को मनोविज्ञान, इतिहास, सामान्य ज्ञान तथा आर्य विषय पढ़ाते रहे। कन्याओं के ज्ञानवर्धन की ओर उनकी बहुत लगन थी। स्व० श्री आचार्य रामदेव जी के त्याग, तप तथा बलिदान स्वरूप उनके अदम्य उत्साह एवं अहर्निश परिश्रम से यह संस्था इस स्थिति तक पहुंच सकी है। श्री आचार्य रामदेव जी की सेवाओं की छाप समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रही है। अपने जीवन काल मे गुरुकुल कांगड़ी को एक सफल विश्वविद्यालय का रूप देकर और उसे आर्थिक दृष्टि से दृढ़ करने में अपना पूर्ण सहयोग देने के पश्चात् उन्होंने अपना समय कन्या गुरुकुल को उन्नत करने में लगाया। उनके अथक् परिश्रम के परिणाम स्वरूप ही आज कन्या गुरुकुल को अखिल भारतीय रूप मिला है। कन्या गुरुकुल के लिए धन संग्रह करने में तथा इसे उन्नत करने में उन्होंने दिन रात सर्दी गर्मी तथा अपने आराम की तनिक भी चिन्ता नहीं की। उन्होंने स्वास्थ्य का ध्यान न रखा और अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करने के कारण ५८ वर्ष की अल्पायु में ही उनका स्वर्गवास हो गया। वास्तव में कन्या गुरुकुल की चिन्ता में ही उनके प्राण गये। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के शब्दों में–**"गुरुकुल ही स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी का सच्चा स्मारक है। इसे आर्थिक दृष्टि से निश्चित बनाना आर्य पुरुषों का ही कर्तव्य है।"**

सन् १९५७ से ३१ मई सन् १९६३ तक ही श्री पं० यशपाल सिद्धान्तालंकार ने मुख्याधिष्ठाता तथा व्यवस्थापक के पद पर ही रहकर इस संस्था के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने इस कुल की सेवा अथक लगन एवं परिश्रम से की है। छप्पन हजार रुपये की लागत से आचार्य रामदेव सभा भवन तथा आचार्य विद्यावती सेठ भोजन भवन का निर्माण किया गया। गुरुकुल के इतिहास में आपकी सेवायें सदा आदर से स्मरण की जायेंगी। जून १९६३ को इस संस्था में ही सेवा करते हुए आपका स्वर्गवास हो गया। सन् १९५३ से संस्था

के संस्थापक स्व० श्री आचार्य रामदेव जी की पुत्री श्री दमयन्ती कपूर आचार्या के पद पर ही कार्य कर रहीं हैं। आप निरन्तर गुरुकुल की उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। डा० सत्यकेतु जी विद्यालंकार ने आर्य समाज के इतिहास के तृतीय भाग पृष्ठ ४७७ में लिखा है कि आपने (श्रीमती दमयन्ती कपूर) पिछले चार दशकों में इस संस्था को विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति के चरम शिखर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। इनके समय में कन्याओं के शिक्षा के स्तर में उल्लेखनीय प्रगति हुई है तथा साथ ही शिक्षकेत्तर कार्यकलापों में नये–नये कीर्तिमान् स्थापित किये गये हैं। आपके समय में १९५६ से अलंकार युग (स्नातक विभाग) का श्री गणेश हुआ। अलंकृता के पुराने पाठ्यक्रम के स्थान पर गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का अलंकार पाठ्यक्रम शुरु किया। इसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का अंगभूत महाविद्यालय बनाया गया। आपको नागरिक परिषद् देहरादून की ओर से सन् १४ अगस्त १९८४ को 'दून रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। २६ अक्टूबर १९९९ को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की ओर से 'विद्या मार्तण्ड' की उपाधि प्रदान की गई। आप दो बार सन् १९७८ तथा १९८४ में कनाडा, अमेरिका एवं लंदन की यात्रा कर चुकी है। टोरान्टो, डेट्रायट, डिजनी वर्ड, डिजनी लैण्ड, लंदन की पार्लियामेंट एवं मैन्ट्रियाल के विभिन्न कालेज भी गई जो कि पूर्व एवं पश्चिम के शिक्षा सम्बन्धी तुलनात्मक अध्ययन में सहायक सिद्ध हुआ।

१९५४ तक यहां १२ श्रेंणियों का पाठ्यक्रम और अन्तिम उपाधि का नाम विद्यालंकृता था। परन्तु सन् १९५५ से इस संस्था में भी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के अनुसार १५ श्रेणियों का पाठ्यक्रम प्रारम्भ कर दिया गया और कन्याओं को भी विद्यालंकार की डिग्री मिलनी प्रारम्भ हो गई। कन्या गुरुकुल के विद्यालंकार विभाग को यू०जी०सी० द्वारा विधिवत् मान्यता १ जनवरी १९८६ से प्राप्त हुई तथा विद्यालंकार विभाग की शिक्षिकाओं एवं शिक्षकेत्तर कर्मचारियों को भी गुरुकुल कांगड़ी का वेतनमान मिलना प्रारम्भ हो गया। अत: यू०जी०सी० के नियमानुसार केवल विद्यालंकार विभाग को ही विश्वविद्यालय के अधीन कर दिया गया है। शेष विद्याविनोद का संचालन एवं प्रबन्ध पूर्ववत आर्य विद्या सभा के आधीन ही चल रहा है। पुराने विद्यालंकृता के पाठ्यक्रम के अनुसार १९३१ से प्रतिवर्ष शिक्षा समाप्त करके स्नातिकाएं गुरुकुल से निकलने लगीं। पहले चार वर्षों की स्नातिकाएं सुश्री सुलभा जी, सुशीला देवी जी, शान्ति जी, चन्द्रप्रभा जी, दमयन्ती जी, शान्ती जी विद्यालंकृता उल्लेखनीय हैं। इनमें दो आचार्य रामदेव जी की कन्याएं थी।

स्व० श्रीमती चन्द्रप्रभा विद्यालंकृता ने भी आठ–दस वर्ष इस संस्था की सेवा में लगाये। पिछले तीस वर्ष से श्रीमती दमयन्ती कपूर वर्तमान प्रधानाचार्य ने अपने जीवन का अधिकांश भाग इस संस्था के निर्माण और विकास में लगाया है। उनके भाई स्व० श्री यशपाल सिद्धान्तालंकार ने लगभग आठ वर्ष तक मुख्याधिष्ठाता के रूप में इस संस्था की सेवा की। आरम्भिक रुप में न केवल आचार्या विद्यावती जी ने अपितु उनकी बहनों ने भी इस संस्था के विकास में सराहनीय

योगदान किया। श्रीमती ओमवती एम०ए०एम०ओ० कई वर्षों तक छात्राओं को अवैतनिक रूप से न केवल संस्कृत पढ़ाती रहीं अपितु उन्होंने छात्राओं को स्त्रीयोपयोगी शिल्पकलाओं—सिलाई बुनाई आदि की शिक्षा दी। इन कलाओं के प्रशिक्षण हेतु भवन निर्माण के लिए १००० रुपये का दान दिया, कला कौमुदी नामक पुस्तक लिखकर सारी आय गुरुकुल को दी। उनकी एक बहन राधारानी ने कन्याओं के आश्रम के संचालन में बहुमूल्य सहयोग दिया।

कन्या गुरुकुल का राष्ट्र की प्रगति में योगदान तथा उपलब्धियां

इस गुरुकुल की स्नातिकाएं जहां एक ओर कुशल गृहणियां सिद्ध हैं, वहीं दूसरी ओर उनमें से अधिकांश ने किसी न किसी रुप में समाज व राष्ट्र की प्रगति के विविध क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है।

सुयोग्य स्नातिका स्व० श्रीमती सीतादेवी भारत की सुप्रसिद्ध नेता थी। आप कई वर्ष तक लोकसभा की सदस्या भी रहीं आपने पंजाब के सार्वजनिक जीवन में बड़ा कार्य किया। आपका मारा जीवन देश व जाति की सेवा में ही व्यतीत हुआ। श्रीमती सीता बहन, श्रीमती चन्द्रमणि पण्डित विद्यालंकृता बडौदा की प्रख्यात समाज सेविका हैं। इन्होंने महिला सदन, बडौदा की मुख्याधिष्ठात्री के रूप में कार्य करते हुए हजारों महिलाओं को सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से ऊँचा उठाने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। आर्य समाज व वैदिक धर्म प्रचार प्रसार में कन्या गुरुकुल की अनेक स्नातिकाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ख्यातिप्राप्त एवं विदुषी आर्य उपदेशिका स्व० श्रीमती चन्द्रप्रभा विद्यालंकृता इसी गुरुकुल की गौरवमयी देन थी। इन्होंने आर्य समाज सहरगोधा (पाकिस्तान) और दिल्ली बिड़ला मिल की आर्य समाजों में उल्लेखनीय सेवा की है। स्व० श्रीमती अरून्धती विद्यालंकृता ने क्वेटा (बिलोचिस्तान) में आर्य समाज का प्रशंसनीय कार्य किया है। श्रीमती सुशीला देवी विद्यालंकृता के नाम से आन्ध्र प्रदेश का कौन सा नर—नारी परिचित नहीं है। आपकी प्रभावशाली एवं ओजस्वी वक्ता के रुप में आर्य जगत् में अपनी प्रतिष्ठा बनाई है। आप वर्षों तक आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद की मन्त्री भी रहीं है।

श्रीमती सत्यवती विद्यालंकृता ने अफ्रीका में आर्य समाज की जो सेवायें की हैं, वे सदा स्मरणीय रहेंगी। श्रीमती शान्ता विद्यालंकृता (कोचर) नैनीताल आर्य समाज की और सुमेधा विद्यालंकृता नागपुर में आर्य समाज की अत्यन्त सक्रिय कार्यत्री रही हैं।

श्रीमती वेदवती आर्य समाज की गतिविधियों को आगे बढ़ाने में पर्याप्त सक्रिय हैं। इन्होंने सीतापुर में स्त्री आर्य समाज की स्थापना की। इस समय वह मेरठ की स्त्री आर्य समाज की प्रधान हैं। श्रीमती दमयन्ती कपूर लम्बे समय से कन्या गुरुकुल देहरादून की आचार्या के रूप में तन—मन —धन से समाज की सेवा में लीन हैं। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश भाग अपनी मातृ संस्था के विकास एवं संचालन में लगा दिया है। स्व० सुधामयी विद्यालंकृता ने आर्य

समाज व समाज सेवा में ग्रामीण जन मंगल तथा सैनिकों की सेवा का प्रंशसनीय कार्य किया है। गुरुकुल कांगड़ी की स्त्री समाज में उन्होंने मंत्री एवं प्रधान के रुप में नवजीवन का संचार किया है। श्रीमती अनुसूया जी विद्यालंकृता जोधपुर की एक प्रतिष्ठित कार्यत्री हैं। श्रीमती चन्द्रकान्ता विद्यालंकृता नागपुर आर्य समाज की ख्याति प्राप्त नेता हैं।

अनेक स्नातिकाओं ने विभिन्न ललित कलाओं के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की है। कु० अर्चना खोसला विद्यालंकृता एम०ए० ने अभिनय के क्षेत्र में अपने सशक्त अभिनय एवं प्रशंसनीय उपलब्धियों से प्रसिद्धि का उपार्जन किया है। आजकल वह दिल्ली में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा में यशस्विनी कार्यत्री हैं। श्रीमती वीणा विद्यालंकृता (धर्मपत्नी श्री उर्मिल कुमार थपरियाल) लखनऊ आकाशवाणी में एक नवोदित कलाकार के रुप में उभर रहीं है। कु० शारदा के संरक्षण में आपने चित्रकला की शिक्षा प्राप्त की है। आपकी रामायण एवं अजन्ता की चित्रकारी विशेष रुप से सराहनीय है।

कन्या गुरुकुल की अनेक स्नातिकाओं ने उद्योग के क्षेत्र में भी नये आयाम स्थापित किये हैं। श्रीमती रूक्मणी विद्यालंकृता (नीलू गुप्ता के नाम से प्रसिद्ध) भारत की एक सुप्रसिद्ध उद्योग संस्थान की डायरेक्टर हैं। वह व्यापार के सिलसिले में कई बार विदेश यात्रा कर चुकी हैं। इस समय दिल्ली में सोनाली एम्पोरियम की अध्यक्ष हैं। कन्या गुरुकुल की अनेक स्नातिकाएं शिक्षा के क्षेत्र को अपनाकर भावी पीढ़ी के नव निर्माण एवं विकास में उल्लेखनीय योगदान कर रही हैं। डा० शान्ता विद्यालंकृता (कोचर) और डा० विद्यालंकृता दिल्ली के जानकी देवी महाविद्यालय में हिन्दी की प्राध्यापिका है। डा० ब्रह्मवती विद्यालंकृता (नारंग) महादेवी स्नातकोत्तर महाविद्यालय में, श्रीमती वेदवती विद्यालंकृता नेशनल इस्माईल डिग्री कालेज मेरठ में और डा० सुमेधा विद्यालंकृता लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ दिल्ली में डा० हेमलता विद्यालंकृता सुन्दरबली महिला कालेज भागलपुर में डा० विमला विद्यालंकृता वाराणसी में, श्रीमती सरोज विद्यालंकृता दिल्ली के श्यामप्रसाद मुकर्जी कालेज में, श्रीमती मंजू विद्यालंकृता राजकीय महिला महाविद्यालय अमृतसर में संस्कृत की प्राध्यापिका है। डा० सरला विद्यालंकृता शिकोहाबाद के बी०डी०एम० गर्ल्स डिग्री कालेज में उपप्राचार्या के पद को अलंकृत कर रही है। डा० सूनृता विद्यालंकृता, सरोज विद्यालंकार आदि कतिपय स्नातिकाएं कन्या गुरुकुल देहरादून में भी अध्यापन कार्य कर रही है। एक पुरानी स्नातिका श्रीमती कृष्णा विद्यालंकृता शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी विचारधारा की प्रबल समर्थक है और इन्होंने लखनऊ में एक पब्लिक स्कूल की स्थापना की है। हरिजन बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में कुमारी पुष्पावती विद्यालंकृता द्वारा की गई सेवाएं सदा स्मरणीय रहेगी। इस समय वह दिल्ली में ओखला स्थित कस्तूरबा बालिका विद्यालय की प्रधानाचार्या के पद पर सफलता पूर्वक कार्य कर रही है। आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान पं० बुद्धदेव विद्यालंकार जी की पुत्री श्रीमती प्रभात शोभा विद्यालंकृता एक अत्यन्त विदुषी एवं समाज सेविका

है। सन् १९७६ में सिंगापुर में आयोजित सम्मेलन की अध्यक्षता आपने ही की थी। काफी समय तक आप अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन की उप प्रधान भी रही। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र से मान्यता प्राप्त विश्व धर्म और शान्ति सम्मेलन की सदस्या होने के नाते अमेरिका एवं कनाडा की अध्ययन यात्रा भी कर चुकी है। इस समय भी आप आर्य समाज की सेवा में संलग्न हैं। कन्या गुरुकुल देहरादून की अनेक स्नातिकाओं ने विभिन्न विश्वविद्यालय के अनुसंधान के क्षेत्र में नवीन कीर्तिमान् स्थापित किये हैं। इनके द्वारा लिखे एवं विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत शोध प्रबन्धों से वैदिक तथा संस्कृत और हिन्दी साहित्य के अनेक अछूते पहलुओं पर नया प्रकाश पड़ा है।

शारीरिक शिक्षण

मानव जीवन के लिए बौद्धिक एवं मानसिक विकास की जितनी आवश्यकता है उतनी ही शारीरिक विकास की भी है। क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रह सकता है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही शारीरिक शिक्षण को यहां इतना महत्त्व दिया गया है। नेटबाल, बॉस्केटबाल, बैडमिन्टन, लांग जम्पस आदि पश्चिमी खेलों तथा लाजिम, लाठी आदि का भी यहां अच्छा अभ्यास किया जाता है। आसनों के शिक्षण की भी अच्छी व्यवस्था है। एक अनुभवी तथा इस विषय की विशेषज्ञा शिक्षिका के निरीक्षण में यह विभाग संचालित होता है। कन्याओं के खेलने के लिए विस्तृत खेल का मैदान है। समय—समय पर देहरादून में होने वाले खेल प्रतियोगिताओं में यहां कन्याओं ने सर्वप्रथम रहकर कई विजयोपहार प्राप्त किये हैं।

चतुर्मुखी सांस्कृतिक प्रगति

१. जिला स्तर, मण्डलीय स्तर पर तथा स्टेट स्तर पर आयोजित अन्तर विद्यालय क्रीडा प्रतियोगिताओं में यहां की छात्राओं ने जूनियर एवं सीनियर चैम्पियनशिप (सन् १९६० से लेकर १९७६) लगातार जीत कर कई विजयोपहार प्राप्त किये हैं।

२. गायन एवं वादन सम्बन्धी विभिन्न संगीत प्रतियोगिताओं में यहां की छात्राओं ने कई चल विजयोपहार प्राप्त किये तथा नवीन कीर्तिमान स्थापित किये।

३. आर्य समाज एवं विभिन्न महाविद्यालयों में समय—समय पर आयोजित होने वाली वाद—विवाद प्रतियोगिताओं में भी यहां की छात्राओं ने सर्वप्रथम रहकर विजयोपहार प्राप्त किये।

४. इसी प्रकार नृत्य एवं भावपूर्ण नाटक प्रतियोगिताओं में भी देहरादून ने सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करके कई बार प्रथम स्थान प्राप्त किया व शील्ड प्राप्त की।

५. समय—समय पर आयोजित होने वाली विभिन्न धार्मिक प्रतियोगिताओं में भी (मंत्र एवं गीता के श्लोक लेखन एवं निबन्ध लेखन) यहां की छात्राओं ने सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करके यहां का नाम उज्ज्वल किया है।

दीक्षान्त संस्कार

विद्यालंकार (१४ वीं कक्षा) उत्तीर्ण करने पर छात्राओं को विद्यालंकार की उपाधि दी जाती है। इस उपाधि दान के लिए समारोहपूर्वक दीक्षान्त समारोह होता है। जिसमें बड़े–बड़े नेता उपस्थित होते हैं। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्रियों एवं लोक नेताओं को दीक्षान्त भाषण देने के लिए आमन्त्रित किया जाता है। गत वर्षों में दीक्षान्त भाषण देने वाले प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम निम्नलिखित है–

१. माता कस्तूरबा गांधी
२. श्रीमती जमुना लाल बजाज
३. श्री रामेश्वरी नेहरू
४. कमलाबाई किबे
५. राजकुमारी अमृतकौर
६. लीलावती मुन्नी
७. मीरा बहन
८. उमा नेहरू
९. विजयलक्ष्मी पंडित
१०. डा० डी० एस० कुठारी – चियरमैन यू० जी० सी०
११. सम्पूर्णानन्द जी शिक्षा मंत्री
१२. डा० के० एल० श्रीमाली – भूतपूर्व शिक्षा मंत्री, भारत सरकार
१३. आचार्य जुगलकिशोर जी
१४. श्री कमलापति त्रिपाठी – भूतपूर्व शिक्षा मंत्री, उत्तर
१५. श्री चन्द्रभानु जी गुप्ता – मुख्यमंत्री
१६. श्री लाल बहादुर शास्त्री – प्रधानमंत्री
१७. श्री भक्तदर्शन – शिक्षा मंत्री
१८. कर्नल पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार – उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

महात्मा गांधी एवं पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी यहां पधार कर अपने आशीर्वाद से हमें कृतज्ञ किया। अन्त में उस परम पिता परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि हम सब को ऐसी शक्ति एवं निष्ठा प्रदान करें कि जिससे इस संस्था की उन्नति में अधिक से अधिक योगदान कर सकें। संस्था दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति करें।

आचार्या श्रीमती दमयन्ती कपूर
आचार्या
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, देहरादून

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय और आयुर्वेद

गुरुकुल और आयुर्वेद का अभिन्न अटूट सम्बन्ध रहा है। प्रात: स्मरणीय अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना करते समय जिन मूल सिद्धान्तों को अपना आदर्श माना, उनमें प्राचीन भारतीय साहित्य वेद, दर्शन, संस्कृत, विज्ञान आदि के साथ आयुर्वेद विषय भी सम्मिलित था। गुरुकुल के प्रारम्भिक काल में विद्यालंकार एवं सिद्धान्तालंकार पाठ्यक्रमों के साथ आयुर्वेद की शिक्षा भी दी जाती थी। सन् १९२२ में आयुर्वेद महाविद्यालय की पृथक् स्थापना हुई, जिसके स्नातकों को आयुर्वेदालंकार की उपाधि दी जाती थी।

गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेदिक कॉलेज ने देश को अनेक विद्वान् दिये, जिनमें कुछ प्रमुख नाम जयदेव विद्यालंकार, अत्रिदेव गुप्त विद्यालंकार, धर्मदत्त विद्यालंकार, वैद्य रणजीत राय देसाई आयुर्वेदालंकार, डॉ. धर्मानन्द केसरवानी आयुर्वेदालंकार, डॉ. इन्द्रसेन जेटली आयुर्वेदालंकार, आचार्य ब्रह्मदत्त शर्मा, आचार्य निरञ्जन देव आयुर्वेदालंकार, डॉ. अनन्तानन्द आयुर्वेदालंकार, डॉ. कृष्ण कुमार आयुर्वेदालंकार आदि हैं। उस समय गुरुकुल के आयुर्वेदालंकार स्नातकों को म्यूनिख विश्वविद्यालय, जर्मनी से एम.डी. करने की मान्यता प्राप्त थी। डॉ. धर्मानन्द केसरवानी, डॉ. इन्द्रसेन जेटली, डॉ. राजेश्वर, डॉ. नारायण दत्त, डॉ. राजपाल सिंह, डॉ. राजीव आदि ने म्यूनिख से एम.डी. की उपाधि प्राप्त की। उपरोक्त स्नातकों ने आयुर्वेद ग्रन्थों के लेखन, चिकित्सा एवं शल्य शास्त्र में पर्याप्त कार्य किया और गुरुकुल को यश का भागी बनाया। गुरुकुल के भिन्न-भिन्न उत्सवों के अवसर पर गाया जाने वाला कुलपताका गीत–**"जिसकी चरण धूलि ने पाला....."** के रचयिता **आचार्य निरञ्जन देव आयुर्वेदालंकार "प्रियहंस"** थे।

सन् १९५० में मैं आयुर्वेद कॉलेज के प्रथम वर्ष में आया था। उन दिनों मैंने गुरुकुल की शिक्षा पद्धति में कुछ विशेषताओं को अनुभव किया। वेद, कला एवं आयुर्वेद महाविद्यालय के सभी ब्रह्मचारी टेकचन्द नागिया छात्रावास में ही अनिवार्य रूप से रहते थे। सभी की वेशभूषा सफेद खद्दर का कुर्ता-पायजामा होती थी। नित्य प्रति प्रात:-सायं दो बार आश्रम में सन्ध्या-हवन नियमित रूप से होता था। आयुर्वेद कॉलेज के पाठयक्रम में वेद, उपनिषद् तथा व्रत्ताभ्यास अनिवार्य रूप से सम्मिलित था। आयुर्वेद के अन्य विषयों के साथ इन विषयों में भी उत्तीर्ण होना अनिवार्य था। आश्रम में कुल मंत्री, क्रीडा मंत्री, आयुर्वेद परिषद्, साहित्य परिषद्, संस्कृतोत्साहिनी सभा, इंग्लिश लिट्रेरी सोसायटी आदि विभिन्न गतिविधियां चलती थी, जिसमें वेद एवं कला महाविद्यालय के साथ आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्र भी पूरी तरह सम्मिलित होते थे।

सन् १९२२ में पृथक् आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना होने के साथ आयुर्वेद के छात्रों के लिए औषधि निर्माण, क्रियात्मक कराने हेतु थोड़ी-थोड़ी मात्रा में आयुर्वेद की औषधियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। आगे चलकर यही औषधि निर्माण **उद्योग शिक्षा विभाग** के नाम से विकसित हुआ, जिससे आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण होने लगा। बाद में इसका स्वरूप **गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी** के रूप में बदल गया। इसके अनेक ख्याति प्राप्त प्रबन्धक हुए। इनमे **पं. सत्यदेव आयुर्वेदालंकार, पं. गणपति विद्यालंकार, पं. दीनदयालु शास्त्री, डॉ. बलदेव आयुर्वेदालंकार, डॉ. हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार** आदि प्रमुख



सन् १९५८ में तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू का गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय में स्वागत करते हुए प्रिंसिपल वैद्य निरञ्जन देव जी (बायीं ओर) व अन्य।

थे। वर्तमान में आयुर्वेदिक कालेज गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक डॉ. राजकुमार रावत जी व्यवसायाध्यक्ष है तथा इनके कुशल नेतृत्व एवं मार्ग-दर्शन में गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी निरन्तर प्रगति कर रहा है।

आयुर्वेदिक कॉलेज सन् १९५२ में भारतीय चिकित्सा परिषद्, उ.प्र. के साथ सम्बद्ध हुआ एवं १९५७ में प्रथम B.I.M.S का बैच निकला। सन् १९५६ में आयुर्वेदालंकार उपाधि अन्तिम बार दी गयी। १९५८ में भारतीय चिकित्सा परिषद् ने B.I.M.S की उपाधि को बदलकर B.A.M.S (आयुर्वेदाचार्य) कर दिया तथा प्रवेश योग्यता इन्टरमीडिएट सांइस ग्रुप बी कर दी। सन् १९७१ में उ.प्र. के समस्त आयुर्वेद कॉलेजों को उ.प्र. सरकार ने कानपुर वि.वि. के साथ आयुर्वेद फैकल्टी बनाकर सम्बद्ध कर दिया। इससे पूर्व उ.प्र. सरकार के मंत्रीमण्डल ने सर्वसम्मति से उ.प्र. के समस्त आयुर्वेद कॉलेजों को गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के साथ एफिलिएट करने का प्रस्ताव पारित किया। परन्तु गुरुकुल के तत्कालीन अधिकारियों ने सरकार के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इस समय उ.प्र. सरकार आयुर्वेदिक कॉलेज को ५० प्रतिशत अनुदान देती थी और ५० प्रतिशत संस्था को वहन करना पडता था। इस बढ़ते हुए व्यय भार को दृष्टि में रखते हुए १५ मई, १९७७ को विद्यासभा ने सर्वसम्मति से कॉलेज को बिना शर्त उ.प्र. सरकार को देने का प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव के आधार पर १० अगस्त १९७८ को उ.प्र. सरकार के महामहिम राज्यपाल महोदय के अध्यादेश के द्वारा आयुर्वेदिक कॉलेज को उ.प्र. की सरकार ने अधिग्रहण कर लिया और इसकी प्रबन्ध समिति आर्य विद्या सभा को भंग कर दिया।

गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेदिक कॉलेज की स्थापना का उद्देश्य आयुर्वेद के सुयोग्य चिकित्सक उत्पन्न करना था। प्रारम्भ में आयुर्वेद के सभी विषयों के साथ-साथ आधुनिक चिकित्सा पद्धति का भी अध्ययन कराया जाता था। सन् १९७० में केन्द्रीय सरकार ने सेन्ट्रल कौंसिल ऑफ इण्डियन मेडिसिन (C.C.I.M) एक्ट पास करके सम्पूर्ण भारत वर्ष में B.A.M.S (आयुर्वेदाचार्य) का पाठ्यक्रम लागू कर दिया। अब यही पाठ्यक्रम गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेदिक कॉलेज में भी लागू है। यहाँ ८० शय्याओं का सुसज्जित अन्तरंग चिकित्सालय है, जिसमें शल्य, शालाक्य, काय चिकित्सा, प्रसूति विभाग, एक्सरे आदि की व्यवस्था है। केन्द्रीय सरकार की सहायता से एक विशाल पंचकर्म विभाग के नये भवन का निर्माण हुआ है। कॉलेज के चिकित्सालय में आयुर्वेदिक पंचकर्म विभाग पहले से ही कार्यरत था, जिसमें स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, अनुवासन, आस्थापन, शिरोविरेचन आदि विधियों के द्वारा जीर्ण रोगियों का सफलतापूर्वक उपचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त कॉलेज में एक अनूठा संग्रहालय है, जिसमें जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, शरीर शास्त्र एवं विकृति विज्ञान आदि से सम्बन्धित दुर्लभ सामग्री सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त हाथी का अस्थि पंजर, अजगर का अस्थि पंजर तथा सफेद भालू का अस्थि पंजर आदि यहाँ के मुख्य आकर्षण है। हजारों दर्शनार्थी प्रतिवर्ष इस संग्रहालय को यहाँ देखने आते हैं। कॉलेज में शवच्छेदन भवन, प्रयोगशाला, शल्य क्रिया भवन (Operation theater), अन्तरंग-बहिरंग विभाग, विशाल वनस्पति वाटिका आदि है।

सन् १९२२ में कॉलेज की स्थापना के पश्चात् निम्नलिखित यशस्वी प्राचार्य हुए, जिनकी संक्षिप्त सूची अग्रलिखित है–

१. डॉ. राधाकृष्ण, एम.बी.बी.एस., एम.डी. १९२२–१९३९

२.	वैद्य धर्मदत्त, विद्या मार्तण्ड	१९३९–१९४३
३.	आचार्य डॉ. ताम्बे, एम.बी.बी.एस., एम.डी.	१९४३
४.	डॉ. रामरक्ष पाठक, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद बृहस्पति	१९४३–१९४७
५.	डॉ. जवाहर लाल, एम.बी.बी.एस., एम.डी.	१९४८–१९५१
६.	डॉ. अम्बिका दत्त शास्त्री, ए.एम.बी.एस.	—
७.	डॉ. सुन्दर लाल भण्डारी, एम.बी.बी.एस., एम.डी.	१९५१–१९५४
८.	डॉ. नरेन्द्र नाथ शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य	१९५५–
९.	डॉ. वैद्य निरञ्जन देव, आयुर्वेदालंकार	१९५६–१९६५
१०.	डॉ. अनन्तानन्द, आयुर्वेदालंकार	१९६५–१९७७
११.	डॉ. क्रान्ति कृष्ण, आयुर्वेदालंकार, एम.ए.	जनवरी १९७७–१३ मार्च १९७७
१२.	डॉ. धर्मपाल सिंह वर्मा, ए.एम.बी.एस.	१४ मार्च १९७७–२३ जुलाई १९७७
१३.	डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह वर्मा, ए.एम.बी.एस.,एम.ए.	२४ जुला. १९७७–५ अक्टू. १९८०
१४.	डॉ. सुरेशचन्द्र शास्त्री, बी.आई.एम.एस.	६ अक्टू. १९८०–३० जून १९८४
१५.	डॉ. के.सी.वर्मा, बी.आईएस.एस., एम.ए.	१मई १९८४–८ अक्टू. १९९०
१६.	डॉ. एच.सी. कटियार	११अक्टू. १९९०–२६ नव. १९९७
१७.	डॉ. रक्षा गोस्वामी	
१८.	डॉ. पूजा भारद्वाज, बी.ए.एम.एस.	२७ नव. १९९७ से

सुझाव

वर्तमान में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आयुर्वेद में पोस्ट ग्रेजुएट (एम.डी. आयुर्वेद) तथा पी–एच.डी. आयुर्वेद पाठ्यक्रम केन्द्रीय चिकित्सा परिषद् (C.C.I.M.) के अनुसार प्रारम्भ करना चाहिए तथा उत्तरांचल में प्राप्त वनोषधियों को संग्रह कर, उन पर अनुसंधान करने हेतु एक अनुसंधान केन्द्र की स्थापना करनी चाहिए।

अन्त में मैं प्यारी गुरुकुल माता को, अपने सभी गुरुजनों को सादर प्रणाम करता हूँ तथा अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी की कृति "गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय" की यशकीर्ति विश्व में फैलती रहे, ऐसी प्रभु से प्रार्थना करता हूँ।

डॉ. राजेन्द्र कुमार अग्रवाल
आयुर्वेदालंकार, एम.ए.(मनोविज्ञान)
आयुर्वेद भवन, आर्यनगर ज्वालापुर
सेवानिवृत्त रीडर एवं अध्यक्ष
रसशास्त्र-भैषज्य कल्पना विभाग
राज. आयुर्वेदिक कॉलेज, गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

शुक्ल यजुर्वेदे द्यौश्च पृथिवी च

वेदेषु दिवश्च पृथिव्याश्चोल्लेखो युगपदेव प्रायेण दृश्यते। अनयोर्द्वयोर्घनिष्ठसायुज्य–साहचर्यकारणादेव बहुशोऽनयोरुल्लेखो 'द्यावापृथिवी' इति समस्तरुपेण दृश्यते। द्यौ: पृथिवी च दृश्यब्रह्माण्डस्य द्वावन्तौ स्तो ययोर्युगपदुल्लेखेन स्वत एव तयोर्मध्यस्थितस्य सकलस्य जगतो भावनाऽभि व्यज्यते, परन्तु व्याप्तिमिमां विशदयितुं मध्यस्थितस्यान्तरिक्षस्यापि स्पष्टोल्लेखो वर्तते। परमेश्वरस्यानेकनामभिस्तस्य व्याप्ति: पृथिव्यन्तरिक्षद्युपरिवेष्टिते समस्ते चराचरात्मके संसारे निर्दिष्टा।

विष्णुनामा परमेश्वर: क्रमशो दिवं पृथिवीम् अन्तरिक्षं च व्याप्नोति, तस्यानया प्रतिष्ठया वयं सुखप्रकाशाभ्यां संयुज्यामहै।[१] ब्राह्मणग्रन्थेषु यज्ञोऽपि विष्णुरेव निर्दिष्ट:।[२] तदनुसृत्यं यज्ञोऽपि दिवमन्तरिक्षं पृथिवीं च व्याप्नोति येन वायुशुद्धया मनुष्य: सुखं ज्ञानप्रकाशं च लभते।[३]

एवमेव सर्वस्यावरको वरुणनामा परमेश्वरोऽतिबलिष्ठो वृषभ: कामानां वर्षयिता वाऽस्ति। स्तम्भितोऽनेन द्युलोको निर्मितश्च अन्तरिक्षस्य पृथिव्याश्च विस्तर:। स एव सम्राट् सर्वेषु लोकेषु विद्यते। सर्वाण्येतानि तस्यैव नियमितानि कार्याणि।[४]

अग्निरपि सर्वत्र देदीप्यमान:, सर्वप्रकाशक: सर्वेषां च नेता परमेश्वरोऽस्ति। तस्य परमं जन्म दिवि कथितम्, अन्तरिक्षं तस्य नाभि:, मध्यमस्थानं केन्द्रं वोक्तं, पृथिव्यां च योनिरर्थात् विविधपार्थिवजीवानां पदार्थानां चोत्पत्तिस्थानमस्ति।[५] एवं परमेश्वरव्याप्तिं द्योतयितुं दिवा, पृथिव्या च साकमन्तरिक्षमपि स्पष्टं निर्दिष्टम्।

अन्यस्मिन् स्थले तावदुक्तं यत् "हे अग्रणी परमेश्वर, भवतो यत्तेजो द्युलोकेऽस्ति, हे पूजनीयप्रभो, यच्च तेज: पृथिव्याओषधिषु जलेषु चास्ति, येव च महदन्तरिक्षं विस्तारितं तत् प्रकाशकं तेज: सर्वद्रष्ट, नायकं सर्वत्र गन्तृ च विद्यते।"[६] अत्र परमेश्वरस्येवाग्नितत्त्वस्य सूर्यविद्युदग्निरूपेण व्याप्ति त्रिष्वपि लोकेष्वभिप्रेता।

अन्यस्मिन् मन्त्रे सूर्यमाध्यमेनाख्यातेयं व्याप्ति:। तथाहि सूर्यस्य पृष्ठभाग: सर्वोपरिभागो वा द्यौ:, पृथिवी तस्य (प्रकाशस्य) सहस्थानम् आत्मा चान्तरिक्षम् अर्थात् तत्र तस्य पूर्णविस्तरोऽस्ति। समुद्रस्तस्य योनि:[७], यतस्तत एवासावुदीयमान इव लक्ष्यते।[८] तथैव सूर्य: परमेश्वरस्य सर्वासां दिव्यशक्तीनां मुखरूप:। स हि मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्च नेत्रम् उदयसमकालमेव च दिवमन्तरिक्षं पृथिवीं च प्रपूरयति प्रकाशेन। एवंविध: सूर्यो जङ्गमस्य स्थिरस्य च संसारस्यात्मा वर्तते।[९] सूर्यमाध्यमेन परमेश्वरस्य व्याप्तिमेवावलोकयाम: सर्वत्र।

उवटमहीधरयो: कर्मकाण्डानुसारिण्यां व्याख्यायांमुदुम्बरशाखाया अग्रे: (सकोणदण्डस्य)[१०]

यज्ञयूपस्य च[११] द्युलोकान्तरिक्षपृथिवीषु व्याप्त्यर्थं प्रोक्षणं विहितमस्ति। सम्भवतोऽस्याः क्रियाया माध्यमेन यज्ञस्य सर्वत्र व्याप्तिरभिप्रेता। परन्तूभयोरेव स्थलयोर्मन्त्रे 'प्रोक्षामि' इति क्रियाया अभावात् विनियोगानुकूल्यार्थं क्रियेयमध्याहार्या भवति।

महर्षिदयानन्दभाष्ये पुनः कश्चिदेवंविधोऽध्याहादो नापेक्ष्यते यदनुसारेण निर्जीवशाखादिपदार्थस्य व्याप्तिः संलक्ष्येत। तन्मतेन मन्त्रप्रसङ्गः सभाध्यक्षो वर्तते। स एव यवोऽर्थात् मिश्रणकर्ता पृथक्कर्ता चोच्यते। सोऽस्मान् श्रेष्ठगुणैर्योजयतु दुष्टैस्तथा च दानदीनतादिदोषैः शत्रुभिश्च यावयतु दूरोकरोतु।[१२] "हे सभाध्यक्ष, राजन्, अहं सत्यधर्मप्रकाशायाकाशगमनाय पृथिवीस्थपदार्थानां च पुष्ट्यै त्वामहयाश्रयामि।[१३] तदनुसारं द्यौर्विद्याप्रकाशोऽस्ति, अन्तरिक्षं वायुस्तत्र सञ्चरतां विमानादिवाहनानां च कृतेऽवकाशोऽस्ति पृथ्वी चास्मदुपयोगनिमित्तानां विविधपदार्थानामुत्पत्तिस्थलम् आधारश्च विद्यते। अन्यस्मिन्नप्येकस्मिन् मन्त्रे राज्याभिषेकोद्यतं सभाध्यक्षं सम्बोध्याचार्यादि विद्वांसः प्रब्रुवन्ति—"विद्यादिप्रकाशार्थं त्वां न्यायप्रकाशकं, सत्कार्याणामवकाशार्थं त्वामवकाशप्रदं तथा च, बृहद्राज्याय त्वां राज्यविस्तारकं पूर्वजा विद्वांसः शोधयन्तु अर्थात् सम्यग्राज्यसञ्चालनाय हितपूर्वकं शिक्षयन्तु।"[१४]

अस्मिन्नेव क्रमे सदोमण्डपस्य मध्ये यदोदुम्बरशाखा निरवन्यते तदा तस्या व्याप्तिरपि त्रिषु लोकेषु शब्दैरेभिः प्रार्थ्यते— "हे शाखे, त्वं द्युलोकमुपरि स्तम्भय, त्वमन्तरिक्षं पृणीहि, त्वं च पृथिव्यां दृढीभव।"[१५] व्याख्यामिमामनुसृत्य शाखया द्युलोकस्तम्भनप्रार्थना हास्यास्पदमेव वक्तुं शक्यते। एवमेव क्रमेण यदा यूपं यज्ञस्तम्भो वा निखन्यते तदास्य स्तुतिरेवं क्रियते—"हे यूप, त्वमग्रभागेन दिवमस्पृशः, त्वं मध्येनान्तरिक्षमपूरयः, अवशिष्टेन चाधोभागेन त्वया भूमिर्दृढीकृता।"[१६] किं सीमिताकारं भौतिकं यूपं क्रिया एता उपर्युक्ताः कर्तुं समर्थः? अतएव श्रौतसूत्रोक्तकर्मकाण्डे एतादृशानां निर्जीवपदार्थानामाधारे कासाञ्चिददृष्टदिव्यशक्तीनां कल्पनां कृत्वा ता अधिष्ठात्र्योऽभिमाननित्यो वा देवता उच्यन्ते (शाखादीनामचेतनत्वे ऽपि तदभिमानिनीनां देवतानां सत्त्वाद् देवतात्वम्। 'अभिमानिव्यपदेशस्तु' इति व्यास सूत्रोक्तेः इति महीधरः।) परन्त्वेतत् सर्वं चिन्तनं कल्पनाप्रसूतमेव, न च तर्कबुद्ध्या स्वीकर्तुं शक्यते।

अतएव महर्षिदयानन्देन तर्कबोधमनुसृत्यनिम्नलिखिताव्याख्या कृतास्त्येतेषां मन्त्राणाम्—"हे विद्वन् समाध्यक्ष, भवानस्मदर्थं विद्यादिगुणानां प्रकाशमुत्कृष्टरूपेण धारयतु, अन्तरिक्षं मेघवृष्टिशुद्धवायुभिः पूरयतु तथा च तत्रत्यान् प्राणिनः सुखसमृद्धिभिः प्रपूरयतु पृथिव्यां च सद्विद्यागुणान् विस्तारयन् सुखानि वर्धयतु।"[१७]

एवमेवोपर्युक्तस्य द्वितीयमन्त्रस्याधोलिखितायां व्याख्यायामपि मन्त्रस्य सार्थकता तर्कसंगतेति वृद्धिं गता—"हे सभाध्यक्ष, त्वं सर्वप्रथमं विद्यान्यायप्रकाशं स्पृश, सर्वतस्त्वं स्वमध्यमावस्थायाम् (अर्थात् उन्नतावस्थायाम्) धर्मप्रचारावकाशं पूरय(अर्थात् तव प्रयासैः सर्वत्र धर्मप्रचारो भवेत्)

उत्कृष्टनियमैश्च भूमिराज्यं प्राप्य तेन वर्धस्वं।"

कर्मकाण्डानुसारेणैकस्मिन् मन्त्रे द्युलोकान्तरिक्षपृथिवीषु यूपस्य (यज्ञस्तम्भस्य) व्याप्तिं द्योतयितुं द्युलोकान्तरिक्षपृथिवीनां युगपदुल्लेखो दृश्यते।[१९] यूपनिर्माणार्थं यो वृक्षश्छिद्यते स पतनसमये एभिः शब्दैः सम्बोध्यते– "हे यूपवृक्ष, त्वं द्युलोकं हिंसिनं मा कुरु, त्वन्तरिक्षं न हिंसय, त्वं पृथिव्या सह सङ्गतो भव।" यूपं वज्ररूपं मत्वात्रानेन मन्त्रेण सर्वेषां लोकानां शान्तिः प्रार्थिता।[२०] यज्ञार्थं वृक्षच्छेदनस्य वर्णनेनायं विनियोगः पर्यावरणस्योपेक्षां करोति, यज्ञः पुनः अध्वरोऽस्ति, ध्वररहितो हिंसाविहीनो वा, पर्यावरणस्य च रक्षकः।

अपरपक्षे च महर्षिदयानन्देन कृतायां व्याख्यायामेवं विधाऽसङ्गतिर्व लक्ष्यते। तदनुसारं विद्वान् सभाध्यक्षः सम्बोध्यैवम् उच्यते–"त्वं सूर्यप्रकाशं मा हिंसीः अर्थात् नापबाधस्व, त्वम् अवकाशमपि हिंसितं मा कार्षीः, त्वं च पृथिव्या सान्निध्ये वर्चस्व।"[२१] पर्यावरणरक्षादृष्ट्याऽत्र परोक्षरूपेणाऽयुच्छितभवननिर्माणम् निषिदम्, तेन हि सघननिर्माणेन च स्वच्छवायुप्रवेशो दुर्लभ एव जायते। तथा च वायोः स्वच्छन्दविचरणार्थम् अवकाशोऽव्यधिकतमो वाञ्छितः। पृथिव्याः सन्निधौ वृतेरप्ययम् अभिप्रायो यत् स ओषधिवनस्पति नदीकूपजलादिभूसम्पदां पशुपक्षिणां रक्षया च पर्यावरणं रक्षन् वर्तताम्। वज्ररूपो यूपो यज्ञस्तम्भो नाभिप्रेतोऽपितु पर्यावरणविनाशकः समाजशत्रुरेव। राज्ञः शासकस्यैतत् कर्तव्यं यत् स एवं विधं शत्रुं विनाश्य प्रजापालको भूत्वा ऐश्वर्यं प्राप्नोतु।[२२]

अनेन सिध्यति यद् यदा द्युपृथिव्यन्तरिक्षाणां युगपद् उल्लेखो भवति तदा द्यौः प्रकाशस्य, अन्तरिक्षम् विस्तृतावकाशस्य पृथिवी च विस्तारसर्वोत्पादकत्वादिगुणानां प्रतीकत्वेन दृश्यते। तथा ह्येकस्मिन् मन्त्रे विद्वान् सम्बोध्यते, "त्वं सूर्यप्रकाशं न बाधस्व, अन्तरिक्षस्थम् अवकाशमपि नावरुन्द्धि, त्वं पृथिव्या सह वर्तस्व।" पर्यावरणरक्षामुपलक्ष्याप्रत्यक्षतयाऽत्र निबिडतुङ्गभवननिर्माणं निषिद्धम्। वायुर्निर्बाधो वहत्वित्यधिकाधिकस्य महती खल्वावश्यकताऽवकाशस्य। पृथिव्या सह वर्तनस्यायमभिप्रायो यत् पृथिव्यां यौषधिवनस्पतिनदीजलरूपाऽन्या च पशुपक्षिखनिजादिरूपा या भूसम्पदस्ति तस्या रक्षणप्रवृत्तेनैव मनुष्येण वर्तितव्यम्।

मित्रनायकस्य सूर्यस्य प्रकाशोऽपि त्रिषु लोकेषु व्याप्तः। यद्यप्यत्र रविः स्पष्टोल्लेखो नास्ति तथापि मित्रस्य द्युस्थानीयतया तस्योल्लेखेनैव स्वतो द्युलोकः संकेतितः। अत्र तावन्मन्त्रे पृथग् भूमेरुल्लेखेन पृथिव्याश्च प्रथनात् पृथिवी खल्वन्तरिक्षं मतम्। मित्रमेव जातवेदसमुक्त्वा तं रोगराहित्याय प्रजाकल्याणाय च प्रयोक्तुं सङ्कल्पोऽभिव्यक्तः।[२३] सूर्यस्तु व्यापकैः स्वगुणैः कल्याणतम इति यास्कोऽपि मित्रं मृत्यो रक्षकं निर्ब्रवीति।[२४]

यजुर्वेदस्यानेकेषु मन्त्रेषु दिवः पृथिव्याश्चान्तरिक्षं विनाप्युभयोर्निर्देशेनापि सम्पूर्णविश्वे व्याप्तिरभिव्यक्ता। एकस्मिन् वैष्णवे मन्त्रे भणितं यदियं पृथिवी यथान्नमयी गवादिपशुयुक्ता च,

तथैव विविधरूपैर्मिश्रामिश्रवस्तुयुक्ताऽस्ति। इयमेव मनुष्याव मननशीलाय सर्वाणि भूतानि सर्वभूतनिर्मितांश्च पदार्थान् वितरति। है विष्णुनामन् सर्वव्यापकेश्वर, त्वं रोदसी अर्थात् द्युलोकं पृथिवीं च स्तम्भितवानसि।[२५]

तथैवाग्निरपि विश्वस्य मूर्धा, अर्थात् शीर्षस्थोऽथवा सर्वोपरि विद्यते। स द्युलोकस्य महत् तत्त्वमस्ति, स एव च पृथिव्याः पालको रक्षकश्च वर्तते।[२६] एवं खलु अग्नितत्त्वस्य भौतिकविद्युत्सूर्यरूपेणाथवा जगन्नेतुः परमेश्वरस्य पृथिव्या आरभ्य द्युलोकपर्यन्तं सर्वत्र व्याप्तिरभिव्यक्ता। मन्त्रांशेन् "अपां रेतांसि जिन्वति" इत्येतेनान्तरिक्षमप्यत्र निर्दिष्टम्, यतोऽन्तरिक्षमेव वृष्टिजलमुत्पादयति, तदेव जलस्य रेतः सारं वा।

एतदग्नितत्त्वं तथा महत्त्वपूर्णमस्ति यदेतत् सर्वव्यापकम् उक्तम् प्रार्थ्यते च यत् सर्वे विद्वज्जनास्तमग्निं सम्यक् प्राप्नुवन्तु अवगच्छन्तु वा। अग्निरसौ सूर्यरूपेण द्युलोकस्य पुत्रोऽस्ति, अयं च पृथिवीलोकोऽपि तस्यैव विद्यते।[२७]

महान् द्युलोकः पृथिवी चास्माकमिमं यज्ञं सुखैः योजयतामास्मान् च धारणपोषणादिगुणयुक्तैर्व्यवहारैः पदार्थैश्च पूरयताम्।[२८] अत्र हि दिवः पृथिव्याश्चोल्लेखेनैव सकलविश्वे यज्ञव्याप्तिरभिहिता। द्यौश्च पृथिवी च दृश्यजगतो द्वावन्तौ स्तः, तयोश्च व्याहारेण स्वत एव तयोर्मध्यस्थं सर्वमेव वस्तुजातं निर्दिश्यते।

अग्न्याधानस्य प्रसिद्धमन्त्रे[२९]ऽपि यत्र द्युलोकमहत्तया पृथिव्याश्च विस्तारेणोपमीयाऽग्न्या–धानक्रियाया अनुष्ठानमभिव्यक्तं तत्र लोकयोरुभयोरेवमुल्लेखेन तयोर्मध्ये समस्तविश्वव्याप्तिः सङ्केतितास्ति।

अन्यस्मिन्नपि मन्त्रे यज्ञो द्यौरर्थात् सूर्यकिरणस्थः पृथिवी अर्थात् पृथिवीव विस्तृत इति कथयित्वा सकलविश्वे यज्ञस्य व्याप्तिः सङ्केतिता।[३०] अत्र सर्वेषां निवासहेतुभूतस्य यज्ञस्य सम्पादयितृ पावयितृ च विशुद्धं मनोऽपि सकलविश्वे व्याप्तमिति सङ्केतोऽपि ग्रहीतुं शक्यते।[३१] उवटमहीधराभ्यां पुनः कर्मकाण्डमुपलक्ष्य उरवाया मृद्भाण्डस्थाल्या वा ग्रहणायास्य मन्त्रस्य विनियोगो विहितः तदनुसारं मन्त्रेणानेन उरवा सम्बोधिता। अत्रोरवैव द्यौरिति गृहीता यतस्तस्या निर्माणक्रमे मृत्तिकाक्लेदनाय यज्जलं मिश्र्यते तद् वृष्टिरूपेण द्युलोकादेव प्राप्यते, अतो निर्माणसाहाय्यत्वात् उरवैव द्यौरभिमता। सैवोरवा पृथिव्यपि वर्तते यतः खलु यया मृत्तिकयोरवा निर्भीयते सा पृथिव्या एव प्राप्यते।[३२]

द्युलोकस्य पृथिव्याश्च पृथक् सत्ता तु विद्यत एव। अनेकेषु मन्त्रेषु यद्यपि व्याप्तिर्ताभिप्रेता तथाप्यनयोदल्लेखो युगपदेव कृतः। द्युलोकस्तावदुन्नतः प्रकाशरूपः सुखस्य प्रतीकभूतोऽस्ति। अत एवाभिलाषोऽयमभिण्यक्तो यत् "वयं पृथिव्या द्युलोकमारोहेम।"[३३] पृथिवी भौतिकताया निम्नजीवनस्य प्रतीकमस्ति। तस्मादुत्थानम् उद्गतिरुत्कर्षो दिव्यगुणप्राप्तिश्च ततश्च प्रकाशज्योतिःपरमानन्दप्राप्तिश्च मनुष्यस्य जीवितलक्ष्यमत्र द्योत्यते।

निम्नस्थायाः सत्या अपि पृथिव्या एवैतद् गौरवं यदियमेव विदुषां यजनस्थलम्। अत्रैव यज्ञानुष्ठानेन मनुष्यो दिव्यत्वमधिगच्छति। यजमानोऽस्या रक्षायै कृतसंकल्पो ऽस्ति। स प्रतिजानाति "अस्या ओषध्या मूलम् अहं न छिन्द्याम्" इति अर्थात् "पर्यावरणं रक्षेयम्" इति। तत्फलेन यज्ञोऽयम् अन्तरिक्षे मेघं गच्छतु द्यौश्च वर्षतु।[34]

अस्मै यज्ञायैव यजमानः प्रतिजानाति यदहं पृथिव्यां यज्ञस्थलात् दानहीनं राक्षसस्वभावं शत्रुं नाशयेयं येनायं विधायज्ञः सत्सङ्गं व्याप्नोतु अध्ययनाध्यापनाभ्यां च वाण्या व्यवहारेण च शब्दविद्याया वृष्टिर्भवतु विद्याप्रसारश्च भवेत्।[35]

उपर्युक्तयोरुभयोः तं दुष्टस्वभावं शत्रुमस्यां पृथिव्यामेव अर्थात् निम्नस्तरे भौतिकजगत्येव बद्धं प्रार्थना कृतास्ति योऽस्माकं परोपकारा यज्ञकर्मणि बाधको भूत्वाऽस्मान् प्रति द्वेषपूर्वकमाचरति, अस्मादेव कारणाच्च यं प्रति वयं द्विष्मः।[36] अत्र हि 'परम्' इति 'अस्याम्' इति शब्दद्वयं मत्वा सभाष्यं कृतं यत्र परम् इत्यस्यार्थः 'शत्रुम्' इति वर्तते। परमुवटमहीधरयतानुसारेणायमेकः 'परमस्याम्' इति शब्दोऽस्ति तदनुसारं च 'परमस्यां पृथिव्याम्' इत्यस्याभिप्रायः पृथिव्या अन्तिमस्थानं नरकाह्वयमस्ति यत्रान्धं तमो विद्यते।[37] वैज्ञानिकदृशा च पृथिव्याः कस्मिन्नपि कोणे एतादृशस्य 'नकरस्य' कल्पना न सम्भाव्यते।

पृथिव्या दिवश्च पृथगुल्लेखोऽप्यनेकेषु स्थलेषु विलोक्यते। अथर्ववेदवद् यजुर्वेदेऽपि भूमिर्मातृवत् सम्बोधिता। "मात्रे पृथिव्यें नमः, मात्रे पृथिव्यै नमः। हे मनुष्य, इयं पृथिवी त्वदर्थमेव राजते।"[38]

अन्यस्मिन्नपि मन्त्रे मातरमिव पृथिवीं सम्बोध्य तस्याः रक्षणाय सङ्कल्पो ऽभिव्यक्तः।[39] अत्रोक्तम् "हे पृथिवीमातः, त्वं मां मा हिंसीः, अहं च त्वां न हन्याम्।" पृथ्वीं प्रति वैदिकीयमुदात्त भावना तन्निवासिनोऽस्मान् तस्याः पर्यावरणरक्षया तस्या अन्येषां निवासिनां विशेषतश्च मनुष्याणां रक्षार्थं प्रेरयति। वयं चेन्मातरं रक्षामस्तदा रक्षिता सा स्वयमेवास्मान् रक्षिष्यति।

अस्मभ्यं जीवनोपयोगिनोऽनेकान् पदार्थान् दत्त्वा तु पृथिव्यस्मान् रक्षत्येव, साकमेव चास्मभ्यं निवासार्थं स्थानं दत्त्वाप्यस्मान् सभ्यान् सुरक्षितांश्च विदधाति। अत एव जनाः प्रेरिता यत्ते पृथिव्यां स्वनिवासार्थं द्वारयुक्तानि गृहाणि सुदृढानि कृत्वा वर्धयन्तु।[40] एतदेव गृहं मनुष्याणां सुखसाधनमस्ति।

अन्यस्मिन् प्रसङ्गे जाज्वल्यमानस्य शरीरे रसरूपस्य तत्त्वस्य सञ्चारकस्य वाऽग्नेः पृथिव्याः सहस्थानात् पृथिवी—मध्याद्वा खननस्योल्लेखो विद्यते।[41] अयं पुरीष्योऽग्निः ज्योतिष्मान्, सम्यक्सुखप्रदः, निरन्तरदीप्त्या देदीप्यमानः, प्रजाभ्यः शिवः कल्याणकरोऽहिंसकश्चास्ति।[42] परं कोऽयं पुरीष्योऽग्निर्यः पृथिव्याः खननेन प्राप्यते। निरुक्ते तावत् पुरीषमुदकं वर्णितं तच्च प्रसन्नताजनकं वा पूरकं वेति निरुक्तम्।[43] अयं जलेन सम्बद्धो वैद्युताग्निरपि मन्तुं शक्यते। तस्मिन् प्रसङ्गे प्रथितत्वात् पृथ्वी

एवान्तरिक्षमिति मतं युक्तिसंगतं प्रतीयते।[४४] अयं पृथिव्या उद्भूत: पुरीष्योऽग्नि: स भवितुमर्हति यस्योद्भव: कश्चिज्जलरूपं तरलं वा खनिजं स्यात्। भूगर्भशास्त्रानुसारेण भूमिगतं जलमेव युगानि यावज्जैव–रासायनिकप्रक्रियया उदज्वलन (हाइड्रोकार्बोनिक) प्रक्रियया वा खनिजमृतैलरूपं गृह्णाति। अयं पुरीष्याग्नि: किम् ओषजनआक्सिजनवाति: सम्भाव्यते यतोऽस्य प्राप्तिरङ्गारादिभ्योऽनेकेभ्य: खनिजेभ्यो निर्दिष्टा।[४५] एतदतिरिक्तं पुरीषे जलेवा ओषजनो नियमतो विद्यत एव। अयं तावदग्नि: कथयितुं शक्यते यतो ज्वलनक्रियायामसौ सहायकोऽस्ति। पृथिव्युदभूता: पादपा अपि रात्रिं विहाय प्राय ओषजनं सर्वप्राणिप्रीणयितारं मुञ्चन्ति। अत: खलु पुरीष्याग्ने: पृथिव्या: खननम्।

येष्वन्येषु यजुर्वेदमन्त्रेषु पृथिव्या अग्नेत्खननं निर्दिष्टं, तत्रापि स एवोपर्युक्त: पुरीष्याग्निरेवाभिप्रेत इति प्रतीयते।[४६]

वेददृष्ट्या स्वर्ग: सुखमयं स्थानं त्वस्ति परमसौ पृथिव्या बहि: क्वचिदपि न स्थित:। स्वशुभकर्मभिर्जनस्तमाप्तुं शक्नोति। धनादेर्दाता, वेगवान् (अश्वसदृश:) पृथिव्यामेव सत्कर्मभि: स्वकीयै: दु:खरहितं सुखमयमतिश्रेष्ठलोकं निर्माति तं चारोहति अर्थादुन्नतिं प्राप्नोति।[४७] वस्तुतस्तु धर्माचरणपुरुषार्थाभ्यां पृथिवी एव स्वर्ग: सम्पद्यते।

अनेकेषु मन्त्रेषु केवला द्यौरप्युल्लिखिता। बहुलतया द्यौर्द्युलोको, दीप्तिस्थानं प्रकाशोवास्ति। एकस्मिन् मन्त्र उक्तं यद्बहुज्ञानमयी वेदवाणी यज्ञक्रिया च प्रकाशवतां सूर्यादिलोकानाम् आधारं प्रापयति तज्ज्ञानं वा प्रददाति।[४८] उवटमहीधरानुसारं च कर्मकाण्डीयविनियोगदृष्ट्या यस्यां इषदि (शिलायां) तण्डुलानि पिण्यन्ते तस्या उन्नयनाय अधस्तात् स्थापिता या शक्या (कीलायुधविशेष:) अनेन मन्त्रेण सम्बोध्यते सा चात्र द्युलोकस्य स्तम्भनकारिणी प्रोक्ता।[४९]

द्युलोक: सूर्यलोक एवास्ति यत: स पृथिव्या नेदिष्ठो महाप्रकाश:। अस्य पर्थिवाग्ने: प्राणापानवत् ऊर्ध्वाधोगमनं कुर्वन्ती दीप्तिर्विचरति। स एव स्वगुणैर्महान्तमग्निं सूर्याख्यं प्रकटयति।[५०]

बहुवचने द्युप्रयोग: प्रायश: प्रकाशार्थे दृश्यते। य: सूर्य: प्रतिदिनं पृथिव्यादीन् त्रिंशतं लोकान् प्रदीपयति, तं पतङ्गं निरन्तरगतिशीलं वा प्रति स्तुतिरूपा वाणी अथवा विद्यारूपा वाणी धार्यते।[५१]

द्यौरेव प्रकाशो दीप्तिर्वा। अग्नि: परमेश्वरो वा नोऽधिकप्रकाशमयीं विद्यां राज्यरूपं धनं च प्रदातुं प्रार्थित:।[५२]

एवमेवास्माभि: प्राणानां, सर्वग्रहाकर्षकस्य सूर्यस्य वायोर्जलस्य वैतेषां त्रयाणां तत्त्वानां महती नीतिप्रकाशयुक्ता च रक्षा प्राप्येत।[५३] अत्र नीतिशब्दो न्यायवाचकोऽस्ति।

महीधरेण यत्र 'दिव्यधाम' इत्यस्य व्याख्या द्युलोकस्थानम् इति कृता तत्रैव

महर्षिदयानन्दानुसारेणैतानि सुखप्रकाशे वर्तमानानि स्थानि सन्ति।[५४]

द्यौर्विस्तरमानदण्डरूपाप्युल्लिखिता। एकस्मिन् मन्त्रे विद्वानेवं सम्बोधितः, त्वं स्वज्ञानकर्मभिर्दिवो दीप्तेर्वा परिमाणेन विस्तरं प्राप्नुहि अर्थात् विस्तृतसुखो भव।[५५]

महीधरानुसारेण मन्त्रोऽयं कृष्णाजिने कमलपत्रं निधाय तस्या उच्चार्यते–"हे पुष्करपत्र, त्वं द्युलोकपरिमाणेन विस्तारमाप्य प्रथितं भव" (हे पुष्करपर्ण द्युलोकस्य परिमाणेन उरुत्वेन त्वं विस्तृतं भव।)

द्यौ ज्योतिरस्ति, प्रकाशोऽस्ति यो बुद्धेः प्राप्यते। सर्वगुणोत्पादकः परमेश्वरो दिव्यगुणान् युक्त्वा बुद्ध्या विद्याप्रकाशं सुखं च प्राप्तवतो महाविज्ञानधारकांश्च जनयतु।[५६]

महीधरमतेनाग्निचयनकर्मणि स्वर्गप्राप्तिकामान् देवान् यज्ञकर्मणि नियोज्य सविता देवः तान् अग्निकमार्थं सततं प्रेरयतु।[५७]

निष्कर्षतः कथयितुं शक्यते यदन्तरिक्षेण साकं तद्विनापि च द्यौः पृथिवी च सम्पूर्णविश्वेव्याप्तिं द्योतयतः। पृथक्प्रयोगे पृथिवी विस्तरप्रतीकम्, सा माताप्युक्ता, सा स्वगर्भादग्निं जनयति। द्यौर्विस्तरः सर्वविधप्रकाशो दीप्तिश्च।

डॉ. कृष्णलालः
दिल्ली विश्वविद्यालयीय–
संस्कृतविभागाचार्यपूर्वः

सन्दर्भ संकेत

१. दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा......, अन्तरिक्षे......., त्रैष्टुमेन छन्दसा............, पृथिव्यां गायत्रेण छन्दसा.........।। वा.सं. २.२५
२. यज्ञो वै विष्णुः। श.ब्रा. १.१.२.१३
३. यो वेवेष्टि व्याप्नोत्यन्तरिक्षस्थलवाटवादिपदार्थान् स यज्ञः। वयमस्मादन्नात्स्वरगन्म। वयमनेन यज्ञेनास्यै प्रतिष्ठायै ज्योतिषा संयुक्ताः समभूम भवेम।। वा.सं. २.२५ पर दया. भा.
४. अस्तभ्वाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः। आसीदद् विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि।। वा.सं. ४.३०
५. दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः, पृथिव्यामधि योनिरित्।। वा.सं. ११.१२
६. अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्य त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः।। वा.सं. १२.४८
७. द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमाऽत्माऽन्तरिक्षं समुद्रो योनिः। वा.सं ११/२०
८. समुद्रादूर्मिर्मधुमां उदारत्। वा. सं. १७.८९

९. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुश्च।। वा.सं. ७.४२, १३.४६

१०. दिवे त्वान्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा। वा.सं. ५.२६ (मही. प्राक्षत्यग्रमध्यमूलानि दिवे त्वेति प्रतिमन्त्रं प्रोक्षार्याति सर्वत्र साकाङ्क्षत्वात्। (कात्यायनश्रोतसूत्रे ६.२.१५,१६)—हे औदुम्वर्चग्रभाग द्युलोकप्रीत्यर्थं त्वां प्रोक्षामि)

११. वा. सं. ६.१

१२. यवोऽसि यवयास्मद द्वेषो यवयारातीः (दयानन्दः हे सभाध्यक्ष त्वं मिश्रणा—मिश्रणकर्ता वर्तसे, यवय श्रेष्ठगुणैः सह मिश्रय दोषेभ्यश्च दूरीकारय। स्वेभ्य ईर्ष्यादिदोषान् शत्रून् च दूरीकारय)। वा.सं. ५.२६

१३. स्वा. दयानन्दः — दिवे सत्यधर्मप्रकाशाय अन्तरिक्षाय आकाशे गमनाय पृथिव्यै, पृथिवीस्थपदार्थपुष्टये सभाध्यक्षं त्वामाश्रयामि।

१४. स्वा. द. दिवे विद्यादिप्रकाशाय न्यायप्रकाशं त्वाम्, अन्तरिक्षाय सत्यानुष्ठानावकाशदं त्वां, पृथिव्यै भूरिराज्याय राज्यविस्तारकं त्वां लोका न्यायदृष्ट्या समीक्षणीयाः पितृषदनाः ये पितृषु पूर्वजेषु विद्वत्सु सीदन्ति ते शुन्धन्ताम् शोधयन्तु। वा.सां. ६.१ भाष्यम्।

१५. उद्दिवं स्तभानान्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्याम्। वा.सं. ५.२७, महीधरः—हे औदुम्बरि, त्वं द्युलौकं स्तम्भय, ऊर्ध्वः स यथा न पतति तथा कुर्वित्यर्थः।

१६. द्यामग्रेणास्पक्ष आन्तरिक्षं मध्येनासाः पृथिवीमुपरेणादृहीः। वा.सं. ६.२—महीधर—हे यूप त्वमग्रभागेन दिवं स्पृष्टवानसि, मध्यभागेन अन्तरिक्षम् आपूरितवानसि, अधोभागेनावशिष्टप्रदेशेन भूमिं दृढीकृतवानसि।

१७. वा. सं. ५.२७ मन्त्रे दयानन्दभाष्यम्—हे परमविद्वन्, त्वं कृपयाऽस्मदर्थं दिवं (विद्यागुण—) प्रकाशम् उत्कृष्टरूपेण स्थिरं कुरु, अन्तरिक्षम् आकाशं तत्रस्थप्राणिवर्गं च पूरय, भूमौ यथा विद्यासद्गुणं विस्तारयति तथा वर्धय।

१८. वा.सं. ६.२ मन्त्रें दयानन्दभाष्यम्—हे सभाध्यक्ष, द्यां विद्यान्यायप्रकाशं पुरस्तात् स्पृश, मध्यमेन मध्यमावस्थाविशेषेण आ समन्तात् अन्स्तात् स्पृश, मध्यमेन मध्यमावस्थाविशेषेण आ समन्तात् अन्तरिक्षं धर्मप्रचारस्यावकाशम् अप्राः पिपृहि, पृथिवीं भूमिराज्यम् उपरेण उत्कृष्टनियमेन अदृंहीः प्राप्य वर्धस्व।

१९. द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव। वा.सं. ५.४३

२०. हे यूपवृक्ष, द्यां द्युलोकं त्वं या लेखीः मा हिंसीः। इह तु लिख हिंसार्थः। अन्तरिक्षं मा हिंसीः, पृथिव्या सह सङ्गतो भव। यूपस्य वज्ररूपत्वाल्लोकानां शान्तिराशास्यत इति भावः। (महीधरभाष्यम्)

२१. हे विद्वन्, द्यां सूर्यप्रकाशं मा लिखेः, अन्तरिक्षम् अवकाशं मा हिंसीः हन्याः, पृथिव्या सह सम्भव। — दयानन्दभाष्यम्।

२२. यतः कारणात् यथा तेतिजानो भृशं तीक्ष्णः स्वधितिः वज्रायुधं शत्रून् विच्छिद्यैश्वर्यं प्रापयति तथा त्वमपि प्रापये। वा.सं. ५.४३

२३. मित्रः संसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा संसृजामि प्रजाभ्यः।। वा.सं. ११.५३
२४. मित्रः प्रभीतेस्त्रायते—निरुक्त १०.२१
२५. इरावती धेनुमती हि भूतं सूपवसिनी मनवे दशस्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखेः।। वा.सं. ५.१६
२६. अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति।। वां. सं. ३.१२
२७. परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानं रायो मनुष्याणाम्। दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्यांल्लोकः।। वा.सं. ६.६
२८. मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः।। वा. सं. ८.३२
२९. भूर्भवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। वा.सं. ३.५
३०. वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि। वा.सं. १.२
३१. द्र. 'शुक्लयजुर्वेद में मनश्चिन्तन' पं. चारूदेवशास्त्र्यभिनन्दनग्रन्थ, खं. २, पृ. ७०, तु. दयानन्दभाष्यम्—यो यज्ञः पवित्रकारकोऽस्ति, सूर्यरश्मिस्थो भवति, पृथिव्यसि—वायुना सह विस्तृतो भवति।
३२. महीधरभाष्यम्—हे स्थालि मृज्जलाभ्यां निष्पन्ना त्व द्यौरसि जलहेतुवृष्टिप्रदद्युलोकरूपासिः द्युसम्ब—पात्रद्रूपत्वमस्यामुपचर्यते। तथा पृथिव्यसि पृथिव्याः सकाशादुद्धृतया मृदा निष्पन्नत्वात् पृथिवीरूपत्वम्।
३३. दिवं पृथिव्या अध्यारुहाम। वा.सं. ८.५२
३४. पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिंसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौः। वा.सं. १.२५, दयानन्दभाष्यम्—देवा यजन्ति यस्यां तस्या विस्तृताया भूमेः यवादेः मूलं वृद्धिहेतुं मा उच्छिन्द्याम्, मया पृथिव्यां योऽयं यज्ञोऽनुष्ठीयते, सं व्रजं मेघं गच्छतु, गत्वा गोष्ठानं सूर्यरश्मिस्थानं द्यौः वर्षतु।
३५. अपाररूं पृथिव्यै देवयजनाद् वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौः। दयानन्दभाष्यम्—अहं पृथिव्यां देवा यजन्ति यस्मिन् तस्मात् स्थानादररूं राक्षसस्वभावं शत्रुं हन्याम्। व्रजं व्रजन्ति जानन्ति जना येन तं सत्सङ्गं गच्छतु, गोष्ठानं गौर्वाणी तिष्ठति यस्मिन् अध्ययनाध्यापने तं व्यवहारं (यथाहं वर्षामि तथा भवानपि वर्षतु), ते तव (मम च) द्यौः विद्याप्रकाशः सर्वान् प्राप्नोतु।
३६. बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः।
३७. उवटः—परमस्यां पृथिव्यां यत्र अन्धतामिस्रो नरकस्तत्र। महीधरः—तत्र बन्धनं कुरु यत्र भूमेरन्तिमे प्रदेशेऽन्धतामिस्रो नरकोऽस्ति।
३८. नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राट्।। वा.सं. ९.२२
३९. पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहंत्वाम्। वा.सं. १०.२३

४०. स्वरभिविख्येषं हहन्तां दुर्या: पृथिव्याम्। वा.सं. १.११
४१. पृथिव्या: सधस्थयादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनाम:।। वा.सं. ११.२८
४२. ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुना दीघतम्। शिवं प्रजाभ्योऽहिंसन्तं पृथिव्या: सधस्थादग्निं पुरीष्यमंगिरस्वत् खनाय:।। (तत्रैव)
४३. प्रीणयितृ वा पूरयितृ वा। नि. २.२२
४४. द्रष्टव्यम् उपरिलिखितमन्त्रस्य दयानन्दभाष्यम्—पृथिव्या अन्तरिक्षात् सधस्थात् सहस्थानात् अग्निं वायुस्थं विद्युतं पुरीष्यं पालकेषु साधनेषु साधुम्। तुलनीयम्—वा.सं. ११.९, १६
४५. हिन्दीविश्वकोशे 'पैट्रोलियम', 'ऑक्सिजन' इति शब्दौ द्रष्टव्यौ।
४६. वा. सं. ११, १९, २१,२२
४७. उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाक: सुलोकं सुकृतं पृथिव्याम्। तत: खनेम सुप्रतीकमग्निं स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम्।। वा.सं. ११.२२ दयानन्दभाष्यम् —धनदाता वाजी वेगवान् अर्वा अश्व इव सुकृतं धर्माचारेण प्राप्यं सुलोकं सुप्रतीकं शोभना प्रतीतिर्यस्य तम् ....स्व: सुखम् उत्तमम् अतिश्रेष्ठं नाकम् अविद्यमानदु:खम् अक: सिद्धं कुर्यात्।
४८. धिषणासि पर्वती दिव: स्कम्भनीरसि। वा.सं. १.१९, दया.भा. धिष्णा वाक्, वेदवाणी, पर्वती पर्बहुज्ञानं विद्यते यस्यां सा दिव: प्रकाशवत: सूर्योदिलोकस्य स्कम्भनी: स्कम्भं प्रतिबद्धं नयतीति सा भवति।
४९. इषद: पश्चाद्भागे शम्यां स्थापयेत्। तां प्रत्युच्यते—"हे शम्ये द्युलोकस्य स्तम्भनकारिणी त्वमसि। पतनवारणायान्तरिक्षरूपेण स्तम्भनकारित्वम्।" महीधरभाष्यम्
५०. अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन् महिषो दिवम्।। वा.सं. ३.७
५१. त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते। प्रति वस्तोरह द्युभि:।। वा.सं. ३.८
५२. अग्ने......द्युमत्तं रविं दा:। वा.सं. ३.२५ दया.भा. अग्ने सर्वाभिरक्षकेश्वर, द्यौ: प्रशस्त: प्रकाशो विद्यते यस्मिंस्तदतिशयितं रविं विद्याचक्रवर्त्यादिधनसमूहम्।
५३. महि त्रीणामकोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्ण:। दुराधर्षं वरुणस्य।। वा.सं. ३.३१, दयानन्दभाष्यम्—द्यौर्नीतिप्रकाश: क्षियति निवसति यस्मिन् तत्। मित्रस्य प्राणस्य, अर्यम्ण: य ऋच्छति नियच्छत्याकर्षणेन पृथिव्यादीन् स सूर्यलोकस्तस्य वरुणस्य वायोर्जलस्य वा। महीधरभाष्यम्—द्युक्षं द्युमन्ति सुवर्णादिद्रव्याणि क्षियन्ति यत्र तत्।
५४. श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि द्विव्यानि तस्थु:।। वा.सं. ११.५
५५. दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व। वा.सं. ११.२९—दया.भा. दीप्ते: विभागेन बहोर्भावेन विस्तृतसुखो भव।
५६. युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योति: करिष्यत: सविता प्रसुवाति तान्।। वा.सं. ११.३
५७. अन्येन कर्मणा स्वर्गं गच्छतो देवानग्निकर्मणि सविता प्रेरयिता सविता प्रजापति: तान् देवानिन्द्रियविशेषान् युक्त्वा विषयेभ्यो नियम्य प्रसुवाति प्रकर्षेणाग्निकर्मणि प्रेरयति। कीदृशान्, स्वर्यत: स्वर्गप्राप्त्यै उद्यतान्।

यथार्थ के दर्पण में

इतिहास किस प्रकार से असत्य लिखा जाता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण हैदराबाद का शास्त्रार्थ है। पौराणिक पण्डितों एवं आर्य समाजी विद्वानों के मध्य ६ जुलाई १९३५ को हैदराबाद में यह शास्त्रार्थ हुआ था। पौराणिक पण्डितों में मुख्य थे— पण्डित माधवाचार्य और आर्य समाजी विद्वानों में प्रमुख थे—पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार।

इस शास्त्रार्थ से सम्बद्ध ऋषि दयानन्द के चित्र पर जूता मारने के विषय को लेकर मेरे मन में आशंका थी, अतः मैंने स्वयं ही एक दिन पण्डित जी (स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज) से इस घटना के सम्बन्ध में पूछा। उन्होंने कहा—बात सामान्य सी थी किन्तु कुछ लोगों ने ईर्ष्यावश इसको तूल दिया। माधवाचार्य जब शास्त्रार्थ के लिए खड़े हुए, उन्होंने कहा कि आर्य समाजी मूर्तिपूजा नहीं करते हैं तो आप ऋषि दयानन्द के चित्र के ऊपर पैर रखें। मैंने कहा कि यह मेरे गुरुदेव का चित्र है। मैं इसका सम्मान तो करता हूँ किन्तु पूजा नहीं करता। बात आगे चलती रही और माधवाचार्य जी का बीस कला का समय समाप्त हो गया क्योंकि शास्त्रार्थ में प्रत्येक वक्ता को अपना पक्ष रखने के लिए बीस मिनट मिलते थे। मैं अपने समय में चित्र सहित पुस्तक पर खड़े होकर बीस कला तक मूर्तिपूजा के विरोध में बोलता रहा। पौराणिक पण्डित इसे देखकर अपनी घोर पराजय समझ अवाक् एवं हतप्रभ रह गये। वे अपने को पराजित अनुभव कर रहे थे। इसी बीच उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा कि सभा में कोलाहल करने लगे—'पण्डित बुद्धदेव जी ने ऋषि दयानन्द के चित्र के ऊपर जूता मारा है'। निश्चित रूप से सामान्य जनों को भड़काकर विजय को पराजय में बदलने का उनका यह षड्यन्त्र था। जैसा कि ऋषि दयानन्द के जीवन में भी कई बार पौराणिक पण्डितों के द्वारा इस प्रकार के अनेक षड्यन्त्र किये जाते रहे थे। शास्त्रार्थ समाप्त हो गया।

आर्य समाज में जो लोग स्वामी श्रद्धानन्द जी से द्वेष रखते थे तथा जो मेरे से भी व्यक्तिगत द्वेष रखते थे, उन लोगों को मुझे नीचा दिखाने का जैसे एक अवसर मिल गया और उन्होंने अपने समाचार पत्रों (वीर अर्जुन आदि) में मुझे जान से मारने तक के लिए भी लोगों को प्रोत्साहित किया किन्तु हुआ कुछ नहीं। इधर विपक्षी सनातनी पण्डितों ने 'ऋषि दयानन्द के चित्र पर बुद्धदेव का जूता' इस नाम से एक पुस्तक प्रकाशित करा डाली, जिसमें जैसा कि उनसे आशा की जाती है, यथार्थ से बहुत दूर कल्पित घटनाओं का समावेश किया गया। उस पुस्तक का खूब प्रचार प्रसार किया गया। यदि चित्र सहित पुस्तक पर खड़े होने मात्र से ऋषि दयानन्द का अपमान होता तो पौराणिक और आर्य समाजियों में भेद क्या? अन्यथा प्रत्येक राष्ट्र के पत्रों पर वहाँ के श्रेष्ठ महापुरूषों के चित्र रहते हैं। भारत में उस समय डाक टिकटों पर महारानी विक्टोरिया का चित्र होता था, वर्त्तमान समय में गांधीजी का चित्र होता है। इन पत्रकों के दुरूपयोग को रोकने के लिए प्रतिदिन ही डाक घरों में उन राष्ट्रनायकों के चित्रों पर डाकिया काली मोहर लगाता है। क्या इससे उनका अपमान होता है? यो तो उनके संविधान की रक्षा के लिए किया जाता है। मैंने भी जो किया था, वह न आवेश में किया था, न शीघ्रता में। मैंने वो किया था— ऋषि दयानन्द की

मूर्तिपूजा विरोधी सिद्धान्त की रक्षा के लिए, और सोच समझकर किया था। अब जो लोग इसको अन्यथा सोचते है या तर्क वितर्क करते हैं, वे ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के प्रतिकूल हैं। उनके इतना कहने पर मेरा समाधान हो गया और मैं चुप हो गया।

अब मैं पाठकों के समक्ष ऋषि दयानन्द के जीवन की दो घटनाओं को प्रस्तुत कर रहा हूँ— "पहली घटना लाहौर की है, जब स्वामी जी से प्रचारार्थ कहीं बाहर जा रहे थे, उनके साथ में नयी पुरानी बहुत सी पुस्तकों के बण्डल थे, जिनमें वेद की पुस्तकों की अधिकता थी। लाहौर संस्थात्र पर पहुँचने पर ज्ञात हुआ कि गाड़ी के आने में विलम्ब है। महर्षि कुछ देर तो इधर— उधर भ्रमण करते रहे किन्तु बाद में पड़े बण्डलों में से किसी एक पर बैठ गये। साथ जाने वाले सेवकों में से किसी एक ने कहा—महाराज! इस बण्डल में तो वेद हैं। ऋषि ने उत्तर दिया—वेद ज्ञान उत्कृष्ट है। यह तो कागज जड़ है, इस पर बैठने से वेद का न किसी प्रकार से अपमान है न कोई हानि। गाड़ी के आने तक वे उसी पर बैठे रहे"।

दूसरी घटना २८ अगस्त सन् १८८१ की है— "जब कुछ मुसलमान काजी जी को साथ लेकर शास्त्रार्थ के लिए ऋषि दयानन्द के पास पहुँचें तो स्वामी जी ने उनको बताया कि तुम दासीपुत्र इसलिए हो कि इब्राहीम की दो पत्नियाँ थीं। एक ब्याही हुई सारा और दूसरी दासी हाजरा। सारा से ईसाई और यहूदी लोग हुए और हाजरा से मुसलमान। फिर तुम्हारे दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? काजी ने कहा कि कुरान में ऐसा नही लिखा है। स्वामी जी ने कुरान मंगवाकर काजी जी को दिखलाया। उसी वर्ष इस्माइल को हाजरा ने उत्पन्न किया, जो सारा खातून की दासी थी। (सन्दर्भ—कुराने सूरे अनकबूत, खण्ड—दो, पृष्ठ—१६६)

काजी ने कहा कि दासी तो थी परन्तु विवाह (निकाह) कर लिया था। फिर स्वामी जी ने कहा कि वास्तव में तो वह दासी ही थी। आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? काजी जी निरूत्तर हो गये और सभी मुसलमान अवाक् होकर देखते रह गये। उसी समय कुरान को स्वामी जी ने कुर्सी के नीचे रख दिया। काजी जी ने कहा—आपने यह क्या किया? कुरान को पाँव में रख दिया। अब स्वामी जी ने कहा—काजी साहब तनिक विचार करो, क्या काजी नाम ही से कहलाते हो? कागज और स्याही कैसे बनते हैं और छापा खाने में कागज किस प्रकार छपते हैं? कलम क्या चीज है और कहाँ उत्पन्न होती है? इस पर सभी मुसलमान निरुत्तर होकर काजी जी के साथ चले गये"।

इन दो सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में यदि ध्यान से देखा जाये तो पण्डित बुद्धदेव जी का ऋषि दयानन्द के चित्र सहित पुस्तक पर पैर रखकर मूर्त्तिपूजा के विरोध में भाषण देना; न कुकृत्य था, न आवेश था, न अनुचित। अब जो लोग आज भी 'निर्णय के तट पर' पुस्तक में कुकृत्य; या बिहारीलाल शास्त्री जैसे लोगों ने, जो उस समय न शास्त्रार्थ में थे, न उनको पूरी जानकारी ही थी, केवल माधवाचार्य की पुस्तक 'स्वामी दयानन्द के चित्र के ऊपर बुद्धदेव का जूता' के सहारे ही लिखा है, वह सर्वथा असत्य है। उसका सत्य घटना से कोई सम्बन्ध नहीं। पाठकवृन्द इस यथार्थ को जानकर अपने विवेक का सदुपयोग करें।

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती
गुरुकुल प्रभात आश्रम
भोला झाल, मेरठ—२५० ५०१

प्राचीन एवं अर्वाचीन विषयों की संगम स्थली गुरुकुल कांगड़ी

यह मेरे लिए एक अत्यन्त सौभाग्य का समय है कि मैं इस अद्‌भुत गौरवमयी संस्था के शताब्दी वर्ष के ऐतिहासिक क्षणों का साक्षी हो रहा हूँ। धन्य है! अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द, जिनका लगाया पौधा आज एक विशाल वट वृक्ष का रूप ले चुका है।

स्वामी जी ने जब इस संस्था की स्थापना की थी, तब संभवत: मुख्य उद्देश्य गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति का पुनरूद्धार था, जिससे चरित्रवान, नैतिक तथा शारीरिक रूप से समृद्ध नागरिकों का निर्माण किया जा सके, जो कि राष्ट्र को पराधीनता की जंजीरों से मुक्त कराने में महती भूमिका निभा सकें। गुरुकुल कांगड़ी आज भी इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। आज आवश्यकता है, मानसिक पराधीनता को समाप्त करने की। आज यह विश्वविद्यालय अपने इस वर्तमान लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्राचीन एवं अर्वाचीन विषयों की एक अद्‌भुत संगम स्थली के रूप में विकसित हो रहा है।

किसी भी कार्य की महत्ता तब सिद्ध हो पाती है जब उस कार्य को करने वाला व्यक्ति स्वत: उत्पन्न हुए व्यवधानों से संघर्ष करते हुए विजयश्री का वरण करता है। जो कर्ता इन व्यवधानों पर विजय प्राप्त करके अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अग्रसर रहता है, वही राष्ट्र नायक, समाज नायक कहलाता है। प्रकृति ने भी स्वामी जी की परीक्षा ली किन्तु उस महानायक ने हार नहीं मानी और गुरुकुल कांगड़ी आज अपनी यात्रा का १०० वां वर्ष पूर्ण कर रहा है।

समय बदला, देश स्वतन्त्र हुआ। भारत ही नहीं, सकल विश्व में गुरुकुल के स्नातकों की तूती बोलने लगी। गुरुकुल कांगड़ी भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार का केन्द्र बिन्दु (epicertre) हो गया। गुरुकुल में होने वाले विचार मंथनों से उत्पन्न तरंगों से पूरा विश्व प्रभावित होने लगा। एक विचार क्रांति का जनक बन गया था गुरुकुल कांगड़ी। वेद के चिंतन को नई दिशा दी यहाँ के स्नातकों ने। संस्कृत साहित्य, आयुर्वेद, योग, भारतीय दर्शन, भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में गुरुकुल के विद्वानों को प्रामाणिक माना जाने लगा। भारत सरकार ने भी गुरुकुल कांगड़ी की विशेष सेवाओं को ध्यान में रखते हुए, इसे मानित विश्वविद्यालय के सम्मान से अंलकृत किया।

पुरूषार्थ चतुष्टय के अनुसार हमारे जीवन के चार लक्ष्य हैं– धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्ति। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति निरन्तर इस ओर अग्रसर है कि हम सभी अपने जीवन के ये चारों लक्ष्य पूरे कर सकें। यहाँ जिस प्रकार वेद, संस्कृत साहित्य, योग, दर्शन हमारा धर्म मार्ग प्रशस्त करके मोक्ष प्राप्ति तक पहुँचाते हैं, उसी प्रकार काम अर्थात् desires एवं अर्थ अर्थात् Wealth प्राप्ति के लिए व्यवसायिक पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किये

गये।

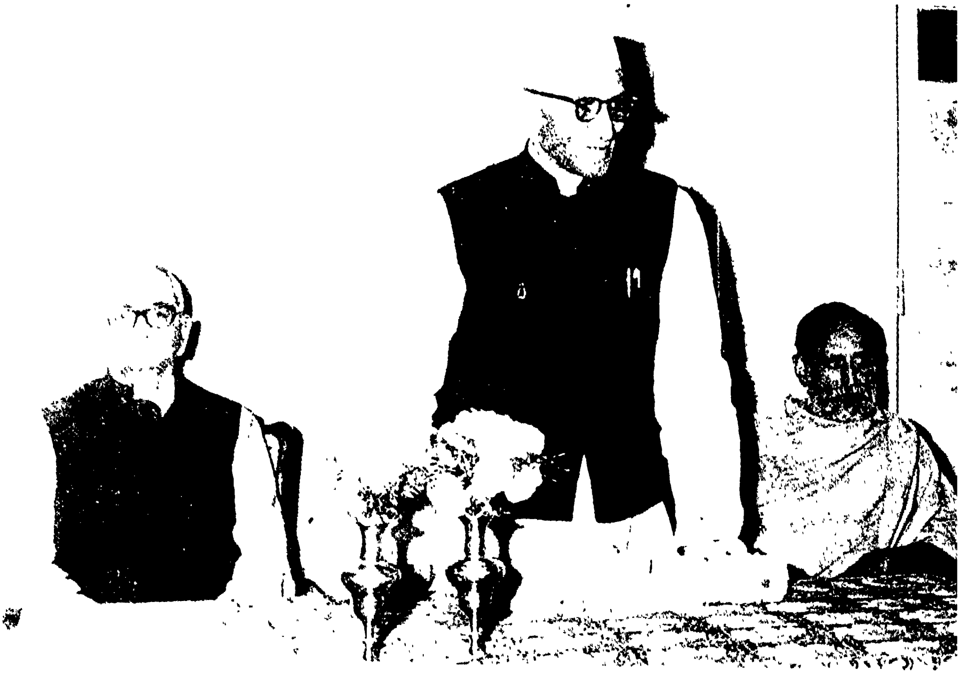
आज राष्ट्र एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ पदार्थ की महत्ता सर्वोपरि है। आध्यात्मिकता का अभाव है। ऐसे संक्रमण काल में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय इस ओर प्रयासरत है कि हमारे वैज्ञानिक, प्रबन्धक, अभियांत्रिकी स्नातक, कम्प्यूटर विश्लेषक जहाँ एक ओर अपने विषय में पारंगत हों, वहीं जीवन मूल्य, वैदिक आदर्श उन्हें हर पल जीवन में ऊपर उठते रहने में सहयोग करते रहें। किसी भी राष्ट्र की उन्नति इस बात पर निर्भर करती है कि नागरिक व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़कर देश के हित को सर्वोपरि माने। ऐसी स्थिति के लिए हमारे Engineers को भारतीय संस्कृति–परम्परा का ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही प्राचीन भारतीय काल में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की उच्च अवस्था का ज्ञान भी आवश्यक है।

प्राचीन भारत में टैक्नोलॉजी

प्राचीन काल में भारत तकनीक के क्षेत्र में बहुत आगे था। वैसे स्टेनलैस स्टील का निर्माण करने में हमारे विश्व वैज्ञानिक अभी–अभी सफल हुए हैं। स्टेनलैस स्टील नाम की चीज इसी शताब्दी की देन है। आप यह भी देखें कि १००० वर्ष पूर्व से दिल्ली में लौह स्तम्भ खड़ा हुआ है। वह लोहे का स्तम्भ इतना बड़ा है कि उसे खोद कर निकाला नहीं जा सकता और वह हजारों वर्ष से खड़ा हुआ है, उसके ऊपर कोई जंग नहीं लगी है। उस समय कितना उन्नत धातु कर्म रहा होगा?

श्री धर्मपाल जी द्वारा लिखित पुस्तक "१७ वीं, १८ वीं शताब्दी में भारतवर्ष के अन्दर विज्ञान और तकनीकी" को पढ़ने से ज्ञात होता है कि अंग्रेज अधिकारी जो कि भारत में तैनात थे, वे यहाँ की उन्नत तकनीक तथा विज्ञान के विषय में समय–समय पर इंग्लैण्ड पत्र लिखते थे। उस पुस्तक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि भारत वर्ष में लोहा कैसे बनता था। इंग्लैण्ड में तो बड़ी भारी मशीनें हैं जिसमें फरनेस हैं। भारतवर्ष में एक छोटा सा उद्यम था जिसको हम कुटीर उद्यम कहते हैं। तीन–चार आदमी मिलकर अपनी मशीन लेकर और कुछ ईटों को इकट्ठा करके उसका एक विशेष प्रकार का फरमा बनाते थे, एक विशेष प्रकार का कोयला लाते थे और लोहे की खनिज लाते थे और फिर वे उसमें से लोहा तैयार करते थे। लोहे में पत्ते का रस डालते थे, अनेक प्रकार की और औषधियां डालते थे। इसके कारण से ही लोहा बहुत शुद्ध और अच्छा बनता था और वह लोहा अपने यहाँ उस समय में पचास रूपये क्विण्टल मिलता था, उसी समय इंग्लैण्ड के अन्दर वही लोहा २००/– रूपये क्विण्टल था।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस कुटीर उद्योग को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाकर आठ मील, दस मील जहाँ उसकी आवश्यकता हो, स्थापित कर सकते थे। इसी कुटीर उद्योग में बना लोहा इतनी अच्छी क्वालिटी का था कि तरह–तरह की चीजें बनाने का काम होता था। इतना अच्छा लोहा, इतनी अच्छी धातु, इतने सस्ते में बनाना यहाँ नया नहीं था।



गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विद्यासभा भवन में कुलपति श्री रघुवीर सिंह शास्त्री तथा आचार्य भगवान देव के समक्ष भाषण करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री मोरारजी देसाई।



प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्र हूजा, प्रसन्न मुद्रा में।

वैदिक काल से ही भारत टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में समकालीन सभ्यताओं में अग्रणी था। वेद के कुछ उदाहरण इस दिशा में ध्यान आकर्षित करते हैं।

युवं पेदवे पुरूवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरूतारं दुवस्यथः।
शर्य्यैरभिधुं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्।।

(ऋग् १.११९.१०)

इस मंत्र में टैलीग्राफी की चर्चा की गई है। साथ ही यह मंत्र विद्युत प्रवाह के लिए धातु के प्रयोग और संचार माध्यमों की ओर इंगित करता है।

वैदिक साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें उच्च शक्ति वाले वाहनों के प्रयोग का वर्णन है। विशेष रूप से रथ तथा वायुयानों में तब अत्यन्त विकसित ज्ञान था। उदाहरणार्थ–

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवे दिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्।।

(ऋग् १.३४.७)

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा।
मनोजुवो यन्मरूतो रथेष्वा वृषाव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम्।।

(ऋग् १.८५.४)

उपरोक्त दोनों मंत्रों में ऐसे यानों के निर्माण का निर्देश है जो कि मन से भी तेज चल सके। इस प्रकार के यानों को वर्तमान के Sonic एवं Supersonic जहाजों के समान समझ सकते हैं। साथ ही यहाँ वाष्प जो कि जल से बनायी जाती है, के उपयोग का इंजन चलाने में प्रयोग का निर्देश है। यह यान एक शहर से दूसरे शहर तथा एक देश से दूसरे देश तक यातायात के लिए प्रयोग में आते हैं।

इन मंत्रों से स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी संचार माध्यम, विद्युत प्रवाह, अत्यन्त तेज गति से चलने वाले वायुयान, वाष्प चालित इंजन का प्रयोग होता था। अन्य मंत्र भी उपलब्ध हैं जो कि गणित, जलविज्ञान, कृषिविज्ञान, धातुकर्म के क्षेत्र में प्राचीन भारत की उन्नत अवस्था का वर्णन करते हैं।

इतने उन्नत, विकसित, समृद्धशाली इतिहास के बाद भी आज हम विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में पिछड़े नहीं तो अग्रणी भी नहीं माने जाते हैं। मुख्यतः भाषा की समस्या है तथा बीच में एक बहुत लम्बा समय आक्रान्ताओं से जूझने में बीत गया जिसके कारण एक रिक्त स्थान उत्पन्न हो गया है। यदि आज भी सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध हो जाए, तो संभव है कि हम पुनः विश्वगुरू का गौरव प्राप्त कर सकें।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय इस ओर अग्रसर है कि किस प्रकार वह अनमोल धरोहर

आम जनता के लिए उपयोगी हो सके, तथा मात्र लेख लिखने या भाषण देने तक सीमित न रहे।

आज राष्ट्र को ऐसे प्रबंधक चाहिए जो कि नैतिक मूल्यों से परिपूर्ण हों, ऐसे इंजीनियर्स चाहिए जो कि देशभक्त हों। इसके लिए अपने इतिहास को मात्र एक विषय नहीं समझना चाहिए, बल्कि उस इतिहास के प्रति एक सम्मान तथा गौरव की भावना होनी चाहिए, जिससे स्वयं में कुछ करने का माद्दा पैदा हो सके। इन सभी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए हमें भारतीय संस्कृति के मूल में देखना होगा। जिस प्रकार हमारी सभ्यता, संस्कृति झंझावतों को झेलती हुई आज भी पुष्पित – पल्लवित हो रही है तथा जो भी आक्रमण इस पर हुए उन्हें भी अपने अन्दर आत्मसात करते हुए यह संस्कृति सम्पूर्ण मानव जाति को शान्ति, सौहार्द, प्रेम, दया, सहिष्णुता का संदेश देती रहती है। उसी प्रकार गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय भारतीय संस्कृति का जीता जागता उदाहरण है जहाँ पर समाज में आए परिवर्तनों को अत्यन्त सुन्दरता से समन्वित किया गया है। चाहें अभियांत्रिकी हो, प्रंबधन हो, विज्ञान के गूढ़तम विषय हों, वैदिक विचारधारा से सभी ओत–प्रोत हैं। यहाँ आने वाले प्रत्येक विद्यार्थी का स्वागत यज्ञ से होता है। यहाँ का वातावरण ऐसा है कि जब शिक्षा पूरी हो तो वह एक देशभक्त बनकर राष्ट्र के सम्मान में वृद्धि कर सके।

देश में आज उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशेष संस्थान उपलब्ध हैं। प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में IITs तथा प्रबन्धन के क्षेत्र में IIMs का में एक विशेष स्थान है, यहाँ से अत्यन्त दक्ष एवं निपुण इंजीनियर्स एवं प्रबन्धकों का निर्माण होता है। किन्तु गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से कुशल इंजीनियर, कुशल प्रबंधक के साथ–साथ सम्पूर्ण मानव का भी निर्माण होता है।

धन्य है वह महामानव श्रद्धानन्द जिसकी कर्मस्थली आज विज्ञान और साहित्य, कला एवं प्रयोग, प्राचीन और अर्वाचीन की अद्‌भुत संगम स्थली के रूप में विकसित हो रही है। यह यात्रा ऐसी ही चलती रहेगी तथा गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय एक ज्योतिपुंज की तरह सम्पूर्ण धरा को ज्ञानपुंज से आलोकित करता रहेगा।

रजत अग्रवाल
प्रवक्ता – अभियांत्रिकी महाविद्यालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

'गुरुकुल की आयुर्वेद परम्परा'

किसी भी संस्था, संगठन अथवा समाज का अम्युदय भले ही किन्हीं परिस्थितियोंवश होता प्रतीत हो परन्तु उसके मूल में कोई न कोई विचारधारा अथवा उद्देश्य सन्निहित रहता है। इसी विचारधारा अथवा उद्देश्य से उसके विकास को स्फूर्ति एवं पोषण मिलता है बाद में भी इसी विचारपुंज से जन्मी परम्परायें इसका चतुर्दिक विस्तार करती हैं।

आर्य संस्कृति के स्वप्नदृष्टा एवं पुरोधा, इतिहास पुरुष महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने आर्य संस्कृति के सार्वभौमिक प्रसार हेतु सन् १९०१ में गंगापार, कांगड़ी नामक ग्राम में गुरुकुल की स्थापना की थी। वैदिक शिक्षा के पक्षधर स्वामी श्रद्धानन्द ने वेदवेदांगो के अध्ययन के लिए अनथक प्रयास किया।

वेदों को अपौरुषेय कहा गया है। भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रसाद वैदिक आधार शिला पर ही सुस्थापित है। समस्त धर्म–कर्म का मूल, कर्तव्य का अधार वेद ही है, वेद शाश्वत ज्ञान राशि के स्रोत है।

'वेदोऽखिलोधर्ममूलम्' धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमंश्रुतिः (मनु २.६, १३)

इसी आधार पर कहा गया है

भूतं भव्यं भविष्यश्च सर्वं वेदात् प्रसिद्धयति (मनु १२.९७)

अर्थात् भूत, वर्तमान एवं भविष्य सम्बन्धी समस्त ज्ञान का आधार वेद ही हैं।

इस वेद ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार के लिए दृढ़ संकल्पित महर्षि श्रद्धानन्द ने २२ मई १९२२ को गुरुकुल कांगड़ी आयुर्वेद महाविद्यालय प्रारम्भ किया। युगद्रष्टा परम श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने आधुनिक युग के सन्दर्भ में आयुर्वेद की उपादेयता को दृष्टिगत रखते हुये, उद्भट आयुर्वेद विद्वानों के दिशा निर्देशन में आयुर्वेद पठन पाठन का कार्य प्रारम्भ कराया। जिसमें वेद वेदांग, दर्शनशास्त्र एवं संहिता ग्रन्थों के अध्ययन के साथ–साथ आधुनिक चिकित्सा की शिक्षा भी समाविष्ठ की गई जिससे आयुर्वेद के विद्यार्थी को आधुनिक नैदानिक उपकरणों एवं चिकित्सा उपक्रमों का भी सम्यक ज्ञान प्राप्त हो सके। ऐसे स्नातक भारतवर्ष जैसे निर्धन एवं पराधीन राष्ट्र के लोगों को अधिक से अधिक चिकित्सा सुविधा प्रदान करने मे सक्षम हो सकेंगे।

इसी उद्देश्य से गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय में आयुर्वेदालंकार एवं आयुर्वेद वाचस्पति की स्वनामधन्य उपाधियाँ क्रमशः स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्रदान की जाती थी। यह उपाधियाँ कालान्तर में भारतीय चिकित्सा परिषद् उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा भी मान्यता प्राप्त थीं। आयुर्वेद महाविद्यालय की स्थापना के पूर्व ही गुरुकुल फार्मेसी, विश्वविद्यालय के एक अनिवार्य अंग रस शास्त्र विभाग के अधीन प्रारम्भ हुई। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कार्य को सुचारू रूप से चलाने तथा गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्रों को औषध विभाग विषयक ज्ञान प्रदान करने के लिए इस फार्मेसी की स्थापना की गई थी। सन् १९३५ में विश्वविद्यालय के समुचित संचालन के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा की साधारण सभा ने विद्या सभा की स्थापना की। विद्या सभा द्वारा फार्मेसी एवं रसायन विभाग के व्यवसाय को समुचित रूप से संचालित करने हेतु एक व्यवसाय पटल का गठन किया गया। गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी ने औषधि निर्माण के क्षेत्र में उच्चतर मानदण्डों की स्थापना की। शास्त्रोक्त औषधि निर्माण द्वारा सम्पूर्ण भारतवर्ष में गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी एक सुपरचित संस्था के रूप में जानी जाती है।

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय अपनी गरिमा के अनुरूप स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में भी अपना बहुमूल्य योगदान देता आया है। महाविद्यालय से सम्बद्ध चिकित्सालय में आयुर्वेद के विभिन्न अंगों के बहिरंग विभाग एवं अंतरंग विभाग जनता की सेवा में सतत समर्पित रहे हैं। यहां पैथोलॉजी, एक्स—रे आदि आधुनिक चिकित्सा सुविधायें जनता जनार्दन को निःशुल्क उपलब्ध कराई जाती रही है। प्रमुख विभागों में काय चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, शालाक्य चिकित्सा, प्रसूति एवं स्त्री रोग, बाल रोग आदि विभाग मुख्य है। अंतरंग रोगियों के लिये उपचार भोजन एवं नैदानिक परीक्षणों की सुविधा भी प्रदान की जाती रही है।

गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय की एक उत्कृष्ट आचार्य परम्परा रही है, इस जाज्वल्यमान निहारिका के प्रमुख नक्षत्र डा० राधाकृष्ण, वैद्य धर्मदत्त, डा० सुखदेव, डा० जवाहरलाल, डा० सुन्दरलाल भण्डारी, डा० बेलीराम, वैद्य निरञ्जन देव, डा० अनन्तानन्द, वैद्य रामराज, वैद्य रामनाथ, डा० क्रांति कृष्ण, डा० राजेन्द्र अग्रवाल एवं डा० नरेन्द्र पाल सिंह आदि है। इस महाविद्यालय के अनेक आचार्य सिद्ध हस्त वैद्य रहे है जिनकी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खास पहचान है इस संस्था के स्वनाम धन्य आचार्यों द्वारा विभिन्न आयुर्वेदिक एवं आधुनिक ग्रंथों का प्रणयन किया गया है इनमें चरक संहिता के टीकाकार जयदेव विद्यालंकार, डा० रोमेश बेदी, डा० कृष्ण कुमार आदि का नाम उल्लेखनीय है। डा० इन्द्रसेन जेतली आधुनिक चिकित्सा के निष्णात विद्वान् थे; परन्तु वनौषधियों के सन्दर्भ में उनका ज्ञान अपरिमेय था। आयुर्वेद महाविद्यालय आपकी सेवाओं के लिए सदा ही कृतज्ञ रहेगा। आपके शिष्य वृंद आपके द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण आयुर्वेद जगत को लम्बे समय तक दैदीप्यमान करते रहेंगे।

सन् १९७२ में गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय को कानपुर विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया गया। कुछ अपरिहार्य कारणों से गुरुकुल कांगड़ी महाविद्यालय का १० अगस्त १९७८ को उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्रदेश की अन्य आयुर्वेदिक संस्थाओं के साथ–साथ विधिवत् अधिग्रहण कर लिया गया तब से यह संस्था राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के नाम से प्रसिद्ध है तथा शैक्षणिक कार्यों के संचालन के लिए कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा सम्बद्ध है। सन् १९७२ से अद्यतन गुरुकुल कांगड़ी राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय आयुर्वेद शिक्षण के क्षेत्र में सम्पूर्ण उत्तर भारत में एक प्रतिष्ठित संस्थान के रूप में जाना जाता है। और अपने संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी के बतलाये मार्ग पर चलकर वैदिक परम्पराओं को संपोषण कर रहा है। उत्तरांचल राज्य के सृजन के पश्चात् इस संस्था को हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा सम्बद्ध कर दिया गया है।

अंत में प्राचीन काल की ऋषि परम्परा शिक्षण, चरित्र निर्माण एवं लोकोपकार की त्रिवेणी का संगम थी। विशुद्ध लोकोपयोगी, सर्वजनहिताय शोधप्रयोजनों के लिए एकान्तवास का विधान था। सृजनात्मक शक्तियों के जागरण के लिए ही गुरुकुल परम्परा का उदय हुआ था। इसी क्रम में साहित्य सृजन से लेकर, तकनीकी ज्ञान, कला शिल्प, रसायन एवं चिकित्सा आदि के अनेक प्रयोजन विनिर्मित कराना ही ऋषि श्रेष्ठ का उद्देश्य रहा है। इस उद्देश्य से ही प्रोढ़ों के लिए आरण्यक, सर्वसामान्य हेतु तीर्थाटन एवं विधार्थियों के लिए गुरुकुल का विधान बताया गया है। इन तीनों की प्रतिपूर्ति हेतु गुरुकुल की स्थापना पतित पुण्य सलिला मां गंगा के पावन तट पर कुम्भ नगरी हरिद्वार के कांगड़ी नामक ग्राम में की गयी। गुरुकुल की आयुर्वेद परम्परा से हम सभी आयुर्वेद जगत के व्यक्ति गौरवान्वित है। गुरुकुल की पूर्व आचार्य परम्परा आने वाली पीढ़ी को निरन्तर प्रेरणा देती रहेगी।

डा० सुनील कुमार जोशी
वरिष्ठ शल्यचिकित्सक
राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उत्तरांचल)

गुरुकुल पुस्तकालय के सौ वर्ष

समाज के सर्वांगीण विकास में पुस्तकालय की भूमिका को सर्वप्रथम जिस स्वप्न दृष्टा महानुभाव ने समझा, उस सोच को देखने वाले और कोई नही आधुनिक भारत के ऋषि स्वामी दयानन्द सरस्वती थे जिन्होंने आर्यसमाज की परिकल्पना के साथ प्रत्येक समाज के साथ जुडे पुस्तकालय की कल्पना की तथा आर्य समाज के संगठन में आधिकारिक स्तर पर पुस्तकालयाध्यक्ष के पद का सृजन किया। ऋषि दयानन्द की पुस्तकालय के बारे में यह गहरी सोच दिखाती है कि स्वाध्याय का जीवन में कितना महत्व वें स्वीकार करते थे। स्वामी दयानन्द के सुयोग्य शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द ने आज से सौ वर्ष पूर्व ४ मार्च १९०२ को जब गुरुकुल की स्थापना की तभी उन्होंने अपना वैयक्तिक पुस्तकालय गुरुकुल को दान कर इसके निर्माण का इतिहास रचा।

सन् १९०७ में पुस्तकालय में २३३६ पुस्तकों का संग्रह रहा है। जिसमें पदार्थ विद्या, शिक्षण, इतिहास, जीवन चरित तथा संस्कृत एवं वेद से सम्बन्धित प्रामाणिक ग्रन्थों का संग्रह उपलब्ध था। सन् १९११ में गुरुकुल पुस्तकालय में ५५०० पुस्तकों का बहुमुल्य संग्रह था। इस संग्रह में एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के १४ खंड भी शामिल थे। उस समय भी गुरुकुल पुस्तकालय में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शोध पत्रिकायें मंगवाई जाती थी जिनमें प्रमुख हैं–

1. Pioneer
2. The Review of reviews
3. Punjab educational journal
4. Educational review, Madras
5. The Scientific Americal
6. The Commerce
7. Nature

८. सहृदय संस्कृत पत्रिका
९. संस्कृत रत्नाकर

मैक्समूलर का सम्पूर्ण साहित्य सेकरेट बुक्स आफ इस्ट सन् १९११ में पुस्तकालय में उपलब्ध था। सन् १९१३ में गुरुकुल पुस्तकालय में ७९१२ पुस्तकों का संकलन था तथा १९१४ में ८८७ नई पुस्तकों का समावेश इस पुस्तकालय में हुआ। पुस्तकालय में कर्मचारियों एवं अध्यापकों के द्वारा २२३६ पुस्तकें पढनें हेतु ली गई। सन् १९१४ में इस विशाल गुरुकुल

पुस्तकालय का अवलोकन करते हुए सुप्रसिद्ध इतिहासकार राधा कुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि ऐसा पुस्तकालय बहुत थोडे महाविद्यालयों में दिखाई देता है।

सन् १९१९ की गुरुकुल रिपोर्ट में छपा है कि पुस्तकालय में इस समय पुस्तकालयाध्यक्ष का कार्य उपाध्याय सेवाराम जी को दिया गया। सन् १९१२ में ८ अध्यापकों ने पुस्तकालय की ६६२ पुस्तकों का अध्ययन किया। उस समय २६ ब्रह्मचारियों ने पुस्तकालय की ५४३ पुस्तकों को इश्यू कराया। उस समय पुस्तकालय में इस समय जो भी साहित्य आता था, मुख्याधिष्ठाता द्वारा स्वयं उसकी जांच पडताल की जाती थी, तथा वही साहित्य पढने हेतु उपलब्ध कराया जाता था जो ब्रह्मचारियों के लिये हानिकारक नहीं होता था। गुरुकुल से प्रकाशित वैदिक मैगजीन के विनिमय में अनेकों राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकायें प्राप्त होती थी। सन् १९१९ में पुस्तकालय में उस समय की सभी प्रसिद्ध पत्र—पत्रिकायें आती थी। नमूने के लिये दैनिक पत्रों का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

पायोनियर	—	इलाहाबाद
लीडर	—	इलाहाबाद
टिब्यून	—	लाहौर
पंजाबी	—	लाहौर
अमृतबाजार पत्रिका	—	कलकत्ता
न्यू इंडिया	—	मद्रास
हिन्दु	—	मद्रास

हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में वैद्य कल्पतरू, वेदप्रकाश, सरस्वती, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवजीवन, मर्यादा ब्रह्मचारी, चित्रमय जगत्, विज्ञान आदि पत्रिकायें समाविष्ट हैं।

१९२४ के गुरुकुल की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार पुस्तकालय में १०६३८ पुस्तकें विद्यमान थी जिसमें अंग्रेजी की ६७५३, हिन्दी की १२४५, संस्कृत की १६४२, उर्दू की ५६५ इसके अतिरिक्त पुस्तकालय के इस संग्रह में बंगला ११६ मराठी २२५ गुजराती ९२ पुस्तकें थी। इस वर्ष पुस्तकालय का प्रथम बार स्टाक प्रमाणीकरण का कार्य कराया गया। रिटायर्ड पोस्टमास्टर ज्ञानचंद ने इस स्टाक प्रमाणीकरण का कार्य किया तथा कुल ३६२ पुस्तकें गुम पाई गई। पुस्तकालयाध्यक्ष का दायित्व १९२४ में प्रो० नन्दलाल जी देख रहे थे। सन् १९२० में पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या ११०६० थी तथा उस वर्ष ६९६ नई पुस्तकें पुस्तकालय में समाविष्ट हुई। गुरुकुल में प्रकाशित वैदिक मैगजीन के बदले में इन वर्षो में विदेशो से भी अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिकायें प्राप्त होती रही हैं। गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय की एक पुरानी रिपोर्ट के आधार पर यह कहा जा सकता है कि १९२७ में पुस्तकालय में १६,००० पुस्तकों का बेजोड संकलन था। इस संकलन में वेद, दर्शन, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा क्लासिकल संस्कृत साहित्य के अद्भुत ग्रन्थों का समावेश था। उस समय पुस्तकालय में स्टोरी ऑफ नेशन्स सीरीज, रूलर

ऑफ इन्डिया सीरिज, हिस्टोरियन हिस्ट्री ऑफ वर्ल्ड इनसाइक्लोपेडिया, इनसाइक्लोपेडिया ब्रिटैनिका नवीनतम् संस्करण आदि महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध थे। १९२७ में पुस्तकालय की पुस्तकें डेसीमल वर्गीकरण के आधार पर वर्गीकृत थी। विषय के अनुसार सभी पुस्तकें पृथक–पृथक सेक्सनों में विद्यमान थी। छात्रों को अधिकतम् रूप से पुस्तकालय का उपयोग करने की सुविधा थी।

सन् १९३१ में पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या–१३७८२ थी तथा उस वर्ष इस पुस्तकालय में २८७ नई पुस्तकें आई। पुस्तकालय में इस देश–विदेश से ७७ पत्र–पत्रिकायें नियमित आते थे। ये सभी पत्र–पत्रिकायें उच्च स्तर की शोध सामग्री से परिपूर्ण होती थी।

गुरुकुल में उपलब्ध सन् १९३३ के आलेख के अनुसार पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या १४०६९ रही तथा इस वर्ष २९१ नई पुस्तकें आई। उपलब्ध विवरण के अनुसार छात्रों ने २०६९ पुस्तकें पुस्तकालय से पढने हेतु प्राप्त की तथा अध्यापकों ने २०३८ पुस्तकों को इश्यू कराया। इस समय पुस्तकालय में अंग्रेजी के ६ दैनिक पत्र, हिन्दी के दो तथा उर्दू का एक दैनिक समाचार पत्र आता था। अंग्रेजी में १० साप्ताहिक पत्र नियमित मंगाये जाते थे तथा हिन्दी के १० साप्ताहिक पत्र आते थे, उर्दू में दो साप्ताहिक पत्र प्रकाश उर्दू एवं आर्य गजट आते थे। अंग्रेजी मासिक शोध पत्रिकाये इस समय ३० नियमित आती थी।

सन् १९३५ में गुरुकुल में पुस्तकों की संख्या १४९३७ थी तथा इस पुस्तकालय से छात्रों ने इस वर्ष १२५७ पुस्तकें अध्ययन हेतु ली, इसी प्रकार प्रध्यापकों ने १७७३ पुस्तकों का उपयोग किया। इस समय पुस्तकालय में १० दैनिक समाचार पत्र, १६ साप्ताहिक पत्र, ३६ मासिक पत्रिकायें तथा १० त्रैमासिक पत्रिकाये प्राप्त होती है।

सन् १९३८ में पुस्तकालय में १८,००० पुस्तकों का संकलन था। सन् १९३५ से १९३८ के मध्य ११५० नई पुस्तकें पुस्तकालय में शामिल हुई। १९३८ में पुस्तकालय में अंग्रेजी भाषा की ३२ पत्र–पत्रिकायें आती थी, इसी प्रकार हिन्दी एवं उर्दू भाषा में ५७ एवं ४ पत्रिकायें नियमित आती थी। सन् १९४० में पुस्कालय के संदर्भ संग्रह में निम्नांकित महत्वपूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध थे।

1. The complete work of H.G. Wells (12 Vol.)
2. Standard History of the world (12 Vol.)
3. The book of knowledge (24 Vol.)
4. वाचस्पत्य कोष २० खंड
5. महाभारत तथा रामायण १८ भाग
6. चारों वेद संहितायें भाष्य सहित १२ जिल्द में
7. हिन्दी शब्द सागर ८ भाग में



विश्वविद्यालय के कुलाधिपति पं० हरबंशलाल शर्मा जा का स्वागत करते हुए कुलपति आचार्य वेदप्रकाश शास्त्री जी एवं पं० वेदव्रत शर्मा जी।



पुस्तकालय में आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी का अवलोकन करते विशिष्ट अतिथिगण।

इसके अतिरिक्त उस समय की सुप्रसिद्ध हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा अंग्रेजी पत्रिकायें जो आती थी उसमें प्रमुख है–

१.	सूर्योदय	–	मासिक संस्कृत
२.	विश्वामित्र	–	मासिक हिन्दी
३.	सरस्वती	–	मासिक हिन्दी
४.	विशाल भारत	–	मासिक हिन्दी
५.	कल्याण	–	मासिक हिन्दी
६.	व्यवहारिक वेदान्त	–	मासिक हिन्दी
७.	अर्जुन	–	साप्ताहिक हिन्दी
८.	आर्य मित्र	–	साप्ताहिक हिन्दी
९.	हिन्दु	–	साप्ताहिक हिन्दी
१०.	प्रताप	–	साप्ताहिक हिन्दी
११.	प्रकाश	–	साप्ताहिक उर्दू
१२.	तेज	–	साप्ताहिक उर्दू
१३.	अर्जुन	–	दैनिक हिन्दी
१४.	हिन्दुस्तान	–	दैनिक हिन्दी
१५.	हिन्दुस्तान टाइम्स	–	दैनिक अंग्रजी
१६.	हरिजन	–	साप्ताहिक

पुस्तकालय का वैभव उसके दुर्लभ संग्रह से मूल्यांकित किया जाता है। गुरुकुल पुस्तकालय शायद अपने बेजोड एवं अप्राप्य पुस्तकों के संग्रह में विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि इस संग्रह को बनाने में यहां के स्नातकों ने तथा अन्य विशिष्ट व्यक्तियों ने अपने जीवन भर के संग्रह को दान करके पुस्तकालय को अमूल्य सांस्कृतिक संपदा से सजाया है। १९४९ में गुरुकुल के पुस्तकालय में २३,००० विषयों की १०० पत्र–पत्रिकायें नियमित रूप से आती थी।

१९६२ में जब गुरुकुल विश्वविद्यालय को डीम्ड विश्वविद्यालय का स्तर दिया गया था तब यहां के पुस्तकालय में विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों की संख्या निम्न थी।

१.	अंग्रेजी	– २३,४००
२.	हिन्दी	– १४१५१
३.	संस्कृत	– ६०९४
४.	उर्दू एवं अन्य भाषायें	– २४३५
५.	रसियन भाषा	– १७२५
६.	स्मिथ सोनियन पब्लिकेशन	– २४७१
७.	पत्रिकायें	– ७१.२५

१९६२ में ही पुस्तकालय को नवीन पुस्तकें तथा फर्नीचर क्रय किये जाने हेतु ४०,००० रुपये का सरकार से अनुदान प्राप्त हुआ। प्रसिद्ध थियोसोफिस्ट श्री एफ.टी.ब्रुक्स, गुरुकुल के प्राकृतिक चिकित्सक उपाध्याय श्री भवानीप्रसाद जी, स्नातक देवराज जी, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, रायबहादुर लालचंदजी भाटिया, गीता प्रेस गोरखपुर, भंडारकर रिसर्च संस्थान पूना, स्वाध्याय मंडल औध तथा कर्नाटक प्रैस ने अपनी पुस्तकें गुरुकुल पुस्तकालय को प्रदान की। गुरुकुल पुस्तकालय को स्वामी श्रद्धानन्द जी के पुत्र पं० इन्द्रजी ने भी पुस्तकों का अपना वृहत् निजी संग्रह दिया। उन्होंने पुस्तकालय को ९४५ पुस्तकों का अपना संग्रह भेंटस्वरूप प्रदान किया। इससे पूर्व गुरुकुल की आर्यभाषापाठावली के लेखक श्री भवानी प्रसाद जी ने भी अपना पुस्तक संग्रह भेंट किया।

पुस्तकालय की विकास यात्रा में आज हमें स्मरण हो रहा है कि गुरुकुल के पूज्य आचार्य पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति जिनका अपना निजी १३७८ पुस्तकों का संग्रह था जो कि पुस्तकालय को भेंटस्वरूप प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त गत कुछ वर्षों में निम्नांकित महानुभावों ने भी गुरुकुल पुस्तकालय को अपनी निजी संग्रह की अमूल्य पुस्तकें भेंट करके इसके संग्रह को बहुमूल्य करने में अद्भुत योगदान प्रदान किया।

१. **आचार्य गोवर्धन प्रसाद स्मृति संग्रह**—गुरुकुल के कुलपति रहे श्री बलभद्र कुमार हूजा ने अपने पिता स्व. गोवर्धन शास्त्री की स्मृति में गुरुकुल पुस्तकालय को १८२ पुस्तकें भेंट स्वरूप प्रदान की। श्री गोवर्धन शास्त्री भी गुरुकुल में स्वामी श्रद्धानन्द जी के समय प्राध्यापक रहे हैं।

२. **पं० धर्मदत्त वैद्य संग्रह**—गुरुकुल के पुराने स्नातक पं० धर्मदत्त जी वैद्य के परिवार ने उनकी स्मृति में उनके निजी संग्रह को पुस्तकालय में भेंटस्वरूप प्रदान किया। इस संग्रह में २४१ पुस्तकें है।

३. **विश्वनाथ विद्यालंकार**—गुरुकुल के पुराने स्नातक पं० विश्वनाथ जी के अद्भुत स्वाध्याय संग्रह को उनके परिवार से गुरुकुल पुस्तकालय को १७६ पुस्तकें दानस्वरूप प्रदान की।

४. **केसरवानी स्मृति संग्रह**—इस संग्रह में पुस्तकालय को २०२ पुस्तकें प्राप्त हुई।

५. गुरुकुल के पूर्व कुलपति डा. धर्मपाल जी ने शताब्दी वर्ष में गुरुकुल पुस्तकालय को अपने निजी पुस्तकों के संग्रह में २०० अमूल्य पुस्तकें पुस्तकालय को भेंटस्वरूप प्रदान की। इन पुस्तकों के संग्रह से गुरुकुल पुस्तकालय की साहित्य संपदा में कीर्तिमान वृद्धि हुई है।

पुस्तकालय के कार्य को सुचारू रूप से चलाने हेतु सर्वप्रथम पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति तत्कालीन उपकुलपति के द्वारा दिनांक १५.४.५९ को निम्नांकित महानुभावों की एक पुस्तकालय समिति का गठन किया गया।

१. पं. प्रियव्रत जी आचार्य
२. पं. सुखदेव जी अध्यक्ष वेद महाविद्यालय
३. पं. निरंजन देव जी अध्यक्ष आयुर्वेद महाविद्यालय
४. पं. हरिदत्त जी वेदालंकार
५. पं. धर्मचंद जी शास्त्री
६. पं. रामनाथ वेदालंकार
७. पं. वागीश्वर जी विद्यालंकार, पुस्तकालयाध्यक्ष

इसके पश्चात् पुस्तकालय के भावी विकास की योजनायें तथा परामर्श पुस्तकालय समिति के माध्यम से ही किया जाता रहा है। गुरुकुल पुस्तकालय के पुस्तकालयाध्यक्ष का दायित्व निम्नांकित महानुभावों द्वारा समय–समय पर उठाया गया।

१. प्रो. सेवाराम जी
२. प्रो. नंदलाल जी एम. ए.
३. डा. सत्यकेतु
४. पं. वागीश्वर विद्यालंकार
५. पं. धर्मदेव
६. डा. निगम शर्मा
७. प्रो. सुरेश चंद त्यागी
८. डा. जबरसिंह सेंगर
९. डा. श्यामनारायण सिंह

शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार के द्वारा १९८१ में सर्वप्रथम पुस्तकालयाध्यक्ष का पूर्णकालिक पद विश्वविद्यालय को स्वीकृत किया। इस पद की स्वीकृति लिये जाने में तत्कालीन कुलपति श्री बलभद्रकुमार हूजा ने विशेष रूचि ली तथा इस पद पर वर्तमान पुस्तकालयाध्यक्ष डा. जगदीश विद्यालंकार की नियुक्ति की गई। उन्होंने इस पद का दायित्व १०.१२.८१ को ग्रहण किया।

गत २० वर्षों में पुस्तकालय को एक आधुनिक दिशा देने में उन्होंने सार्थक भूमिका का निर्वाह किया। पुस्तकालय के आज के स्वरूप पर आलेख शताब्दी वर्ष की उपलब्धियों के सन्दर्भ में पृथक् से दिया गया है।

शताब्दी वर्ष में गुरुकुल पुस्तकालय का परिदृश्य

पुस्तकालय का उपयोग करने वाले सदस्यों की संख्या शताब्दी वर्ष२०००–२००१ में ९६६ रही। यह पुस्तकालय देश का एकमात्र ऐसा विश्वविद्यालय है जहां आर्य समाज की पुस्तकों का संग्रह एक पृथक् वीथिका के रूप में विद्यमान है। गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के स्नातकों

एवं प्राध्यापकों द्वारा लिखित पुस्तकों का पृथक् प्रकोष्ठ पुस्तकालय में बना हुआ है। पुस्तकालय में शताब्दी वर्ष २०००–२००१ में कुल पुस्तकों का संग्रह १,३३,००३ है। इस वर्ष १२७४ नई पुस्तकों का समावेश किया गया। ३३६ पुस्तकें गुरुकुल पुस्तकालय को भेंट स्वरूप प्राप्त हुई है। गुरुकुल के छात्रों एवं प्राध्यापकों को शताब्दी वर्ष में ९८४२ पुस्तकों को इश्यू किया गया। कम्प्यूटीकरण का कार्य पूरा किया गया जिसके अन्तर्गत १८,००० पुस्तकों का डेटाबेस तैयार किया गया।

पुस्तकालय के विभिन्न संग्रह

पुस्तकालय का विराट संग्रह अपनी विशिष्टताओं के लिए निम्न रूप से विभाजित है– संदर्भ संग्रह, पत्रिका संग्रह, आर्य साहित्य संग्रह, आयुर्वेद संग्रह, विभिन्न विषयों का हिन्दी संग्रह, विज्ञान संग्रह, अंग्रेजी साहित्य संग्रह, पं० इन्द्र जी संग्रह, दुर्लभ पुस्तक संग्रह, प्रतियोगितात्मक पुस्तक संग्रह, शोध प्रबन्ध संग्रह, रूसी साहित्य संग्रह, आरक्षित पाठ्य पुस्तक संग्रह, उर्दू पुस्तक संग्रह, मराठी संग्रह, गुजराती संग्रह, गुरुकुल प्राध्यापक एवं स्नातक संग्रह, मानचित्र संग्रह, पुस्तकालय वाङ्मय सेवा संग्रह, विश्वविद्यालय प्रकाशन संग्रह, वेदमंत्र कैसेट संग्रह।

विभागीय पुस्तकालय

विश्वविद्यालय के छात्रों की सुविधा एवं उपयोग हेतु विभिन्न विभागीय पुस्तकालयों की स्थापना की गई है। इसके अन्तर्गत रसायनविज्ञान, जीवविज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, कम्प्यूटर विज्ञान, हिन्दी पत्रकारिता, वेद, अंग्रेजी, गणित एवं कन्या महाविद्यालय आदि में विभागीय पुस्तकालय हैं। आलोच्य वर्ष २०००–२००१ में ४०८ पुस्तकों को विभागीय पुस्तकालयों में इश्यू किया गया।

पत्रिका विभाग

विश्वविद्यालय पुस्तकालय द्वारा आलोच्य वर्ष २०००–२००१ में ३४४ पत्रिकायें मंगवाई गई। जिनमें से १० पत्रिकाऐं विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के विनिमय में प्राप्त हुई है। राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर के विभिन्न विषयों की पत्रिकाऐं मंगाने में लगभग एक लाख अट्ठासी हजार आठ सौ बावन रुपये व्यय किये गये तथा २४१ पत्रिकाओं की जिल्दबन्दी की गई।.

सन्दर्भ विभाग

सन्दर्भ विभाग में केवल शोध छात्र/छात्राओं एवं स्नातकोत्तर छात्र/छात्राओं को ही प्रवेश की अनुमति है। प्रतिदिन लगभग २५ से ३० छात्र सन्दर्भ विभाग का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विश्वविद्यालयों के शोध छात्र भी सन्दर्भ विभाग का उपयोग करते हैं।

अधिग्रहण विभाग

आलोच्य वर्ष २०००–२००१ में ५,२७,६६७.०० रू० की कुल १२७४ पुस्तकें क्रय की गई। भारत सरकार तथा उ०प्र० सरकार द्वारा ३३३८२.८०रू० की ४७७ पुस्तकें भेंटस्वरूप प्राप्त हुई हैं।

तकनीकी विभाग

तकनीकी विभाग द्वारा आलोच्य वर्ष में ३००० पुस्तकों को विषयानुसार वर्गीकृत तथा २७३१ पुस्तकों को सूचीकृत किया गया। २८०० पुस्तकों पर टैग आदि का कार्य किया गया।

पुस्तक आवर्तन विभाग

पुस्तक आवर्तन विभाग द्वारा कुल ९८४२ पुस्तकें इश्यू की गई तथा ९०८४ पुस्तकें वापस की गई। जिसके अन्तर्गत विभागीय खातों में इश्यू पुस्तकें ४०८ शामिल हैं।

प्रलेखन विभाग

विश्वविद्यालय पुस्तकालय में उपलब्ध पाठ्य सामग्री को पाठकों की सुविधा हेतु पुस्तकालय द्वारा समय–समय पर सूचीबद्ध कर प्रकाशित किया जाता रहा है। इसके अन्तर्गत अब तक निम्न प्रकाशन किये जा चुके हैं–

१. क्लासिकल राइटिंग ऑन वैदिक एण्ड संस्कृत लिट्रेचर इन लाईब्रेरी

२. शोध एवं प्रकाशन सन्दर्भ

३. शोध सारावली

४. कैटलॉग ऑफ बुक्स इन इंग्लिश लैंग्वैज ऑन लिट्रेचर इन लाईब्रेरी

५. थिसिस इन गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

६. करन्ट लिस्ट ऑफ पिरियोडिकल्स १९९९ और २००१

७. पुस्तकालय में उपलब्ध १७ वीं, १८ वीं, तथा १९ वीं शताब्दी की पुस्तकों का कैटलॉग निर्माण।

पुस्तकालय कम्प्यूटरीकरण सेवा

पुस्तकालय के सम्पूर्ण संग्रह को कम्प्यूटर पर जानकारी दिये जाने हेतु डेटाबेस बनाये जाने का कार्य तीव्र गति से चल रहा है तथा निकट भविष्य में कम्प्यूटर की स्क्रीन पर सभी उपलब्ध पुस्तकें आ जायेंगी। पुस्तकालय में नेटवर्किंग के द्वारा देश के अन्य पुस्तकालयों में उपलब्ध पुस्तकों के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

प्रतियोगितात्मक परीक्षा सेवा

विश्वविद्यालय पुस्तकालय में प्रतियोगिता परीक्षाओं में शामिल होने वाले छात्रों हेतु एक पृथक संग्रह स्थापित है जिसमें १५०० पुस्तकें हैं। प्रतियोगिता परीक्षा से सम्बद्ध १५ पत्रिकायें भी मंगवाई जा रही हैं।

फोटोस्टेट सेवा

आलोच्य वर्ष में पुस्तकालय फोटोस्टेट मशीन द्वारा पाठकों एवं विभिन्न विभागों का ५६,३६१.६५ रू० का कार्य किया गया तथा फोटोस्टेट विभाग द्वारा कुल ८२९८९ प्रतियां फोटोस्टेट की गई। १७ पुस्तकों को फोटोस्टेट द्वारा सुरक्षित किया गया है।

पुस्तकालय के द्वारा वर्ष २०००–२००१ में निम्न विशिष्ट कार्य किये गये–

१. पुस्तकालय कम्प्यूटीकरण सेवा के अन्तर्गत कुल १८००० पुस्तकों का डेटाबेस का कार्य पूर्ण किया गया।

२. पुस्तकालय के कर्मचारियों को कम्प्यूटर का प्रशिक्षण दिये जाने हेतु अन्य स्थानों पर भेजा गया।

३. अन्य पुस्तकालय से सहयोग एवं पाठकों की आवश्यकतानुसार इन्टर लाइब्रेरी लोन पर पुस्तकें उपलब्ध कराया जाना।

४. पुस्तकालय का उपयोग अन्य विश्वविद्यालय के शोध छात्रों ने किया जिनमें प्रमुख रूप से बी.एच.यू. वाराणसी, लखनऊ, श्री अनारदेवी खण्डेलवाल महिला पोलिटैक्निक, मथुरा, रघुनाथ गर्ल्स पी.जी. कालेज, मेरठ, आदि के शोध छात्रों ने पुस्तकालय की सामग्री का अवलोकन किया।

५. विश्वविद्यालय में पढने वाले छात्रों को आर्यसमाज से सम्बद्ध साहित्य पुस्तकालय के द्वारा उपलब्ध कराया गया।

६. पुस्तकालय के द्वारा विभिन्न संस्थाओं, कार्यपरिषद, सीनेट के सदस्य तथा शिक्षा पटल के सदस्यों एवं अन्य गणमान्य व्यक्तियों को भेंटस्वरूप पुस्तकें पुस्तकालय द्वारा उपलब्ध कराई गई।

श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र

विश्वविद्यालय पुस्तकालय के अर्न्तगत श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र का कार्य भी चल रहा है जिसके निदेशक डा. विष्णुदत्त राकेश संकायाध्यक्ष–मानविकी संकाय तथा पुस्तकालयाध्यक्ष इस प्रकाशन केन्द्र के व्यवसाय प्रबंधक का कार्य भी कर रहें हैं। आलोच्य वर्ष

में विश्वविद्यालय प्रकाशनों से ५५,०१२.००रु. की आमदनी हुई है तथा जिनमें से ८५९१.००रु. की ८२ पुस्तकें विनिमय में प्राप्त हुई है। अब तक कुल ३,७४,.७३रु. की बिक्री विश्वविद्यालय को इन प्रकाशनों से हुई है। श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र के प्रकाशन निम्न हैं—

१. क्लासिकल राइटिंग ऑन वैदिक एण्ड संस्कृत लिट्रेचर
२. वैदिक साहित्य संस्कृति एवं समाज दर्शन
३. वेद का राष्ट्रीय गीत
४. वेद और उसकी वैज्ञानिकता
५. शोध सारावली
६. श्रुतिपूर्णा
७. स्वामी श्रद्धानन्द
८. दीक्षालोक
९. भारतवर्ष का इतिहास भाग प्रथम एवं द्वितीय
१०. कुलपुत्र सुनें
११. स्वामी श्रद्धानन्द के सम्पादकीय लेख
१२. स्वामी श्रद्धानन्द की सम्पादकीय टिप्पणियां
१३. स्वामी श्रद्धानन्द : एक विलक्षण व्यक्तित्व
१४. स्वामी श्रद्धानन्द—समग्र मूल्यांकन
१५. पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति कृत्तित्व के आयाम
१६. हिन्दी काव्य को आर्यसमाज की देन
१७. प्रगति के बिम्ब

श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के द्वारा इस वर्ष श्रुति विचार सप्तक नाम ग्रन्थ का प्रकाशन किया गया है।

डा० जगदीश विद्यालंकार
पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

19 वीं शताब्दी के धार्मिक आन्दोलन और आर्य समाज

१९ वीं शताब्दी ने यदि भारत के लिए कोई महत्त्वपूर्ण देन दी तो वह थी धर्म, समाज तथा समस्त राष्ट्रीय जीवन में नवचेतना उत्पन्न करने वाले पुनर्जागरण के आन्दोलन। इतिहासकारों ने इन्हें पश्चिम के वैचारिक सम्पर्क का परिणाम बताया है किन्तु यह भी सच है कि इन आन्दोलनों के प्रवर्त्तकों में देश में नवजागरण लाने की अदम्य लालसा तथा उसके लिए प्रबल पुरुषार्थ करने की भावना थी, जिसके कारण ये आन्दोलन सफलता के शिखर तक पहुँचे तथा आसेतु–हिमाचल तक देश में नवजागरण की लहर फैल गई। राजा राम मोहन राय इस नवचेतना के ध्वजवाहक थे। उन्होंने बहुदेवोपासना के अभिशाप से ग्रस्त हिन्दु समाज को विशुद्ध वैदिक तथा उपनिषद् प्रतिपादित एकेश्वरवाद का पाठ पढ़ाया। धर्म के नाम पर प्रचलित जड़पूजा, अवतारवाद, जलाशयों में स्नान को मुक्ति का साधन मानना आदि रूढ़ियों से मुक्त कराया। सती प्रथा जैसी बर्बर और जंगली प्रथा को बन्द कराने में उनका उत्साह दर्शनीय था, जिसके परिणामस्वरूप राजकीय कानून से मृत पति की चिता पर जीवित पत्नी को जला देने की इस अमानुषिक प्रथा पर रोक लगाई गई।

उधर गुजरात में उत्पन्न दयानन्द सरस्वती की क्रान्तिकारी शिक्षाओं ने उत्तर भारत के हिन्दी भाषी प्रान्तों में राष्ट्रीय भावनाओं का संचार किया जिसके वशवर्ती होकर जनमानस में स्वधर्म, स्व–संस्कृति, स्वभाषा तथा स्वराष्ट्र के प्रति गौरव का भाव उत्पन्न हुआ। आर्य समाज का आन्दोलन विशुद्ध भारतीय आन्दोलन था, क्योंकि इसके संस्थापक के विचारों में पश्चिम का वैचारिक प्रभाव लेशमात्र भी दिखाई नहीं देता है। उनके प्रेरणास्रोत प्राचीन भारतीय शास्त्र हैं। इस देश के मूल निवासी आर्यों का गौरवमय इतिहास तथा उनके पराक्रमपूर्ण कार्यों ने भी उनके वैचारिक धरातल को मजबूती दी थी। उधर थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों के रूप में कुछ उन विदेशियों ने भी भारत के नवजागरण में अपनी भूमिका अदा की जिन्हें ईसाइयत के धार्मिक सिद्धान्तों तथा पादरी वर्ग के प्रचारात्मक क्रियाकलाप से तनिक भी सन्तुष्टि नहीं मिली थी और जो भारत के वेद, उपनिषद् तथा गीता जैसे शास्त्रों के वैचारिक वैभव तथा उसमें निहित शाश्वत आध्यात्मिक भावों से मानव की उन्नति की कल्पना करते थे।

यों तो बंगाल में उत्पन्न बंकिमचन्द्र, रामकृष्ण परमहंस, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि ने भी अपने कृतित्व के द्वारा आलस्य, प्रमाद तथा जड़ता से ग्रस्त समाज में चैतन्य लाने का प्रयास

किया किन्तु भारतीय अध्यात्म तथा संस्कृति का प्रखर गौरवगान करने वालों में स्वामी विवेकानन्द अग्रगण्य रहे। उन्होंने एकाधिक बार पश्चिमी देशों की यात्रा की तथा अपने उपदेशों और प्रवचनों के द्वारा भौतिकता की उपलब्धियों से उन्मत्त जड़वाद के प्रबल पोषक पश्चिमी समाज को चेतावनी देते हुए कहा कि आध्यात्मिक उपलब्धियों से भरपूर भारत को आज मिश्नरियों के धर्मप्रचार की आवश्यकता नहीं है। हम तो आपकी भांति विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा वाणिज्य व्यवसाय में आप से कुछ सीख कर अपने देश को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाना चाहते हैं। इन महापुरुषों तथा महान् आन्दोलनों का व्यापक प्रभाव इस शताब्दी के आरम्भिक दशकों में स्पष्ट दिखाई दिया। महात्मा गाँधी, योगी अरविन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, कवि गुरु रवीन्द्रनाथ तथा दार्शनिक डा. राधाकृष्णन के वैचारिक धरातल का निर्माण गत शताब्दी के इन आन्दोलनों में निहित तत्त्वों ने ही किया था।

आर्यसमाज ने मध्यकालीन धार्मिक अंधविश्वासों को दूर करने, जाति प्रथा, अस्पृश्यता, नारी के अधिकारों के हनन जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने तथा अपने देश में अपने राज्य की धारणा को बलपूर्वक प्रतिपादित कर इस शती में सच्चे राष्ट्रवाद का प्रबल प्रचार किया। थियोसोफी की नेत्री श्रीमती ऐनी बेसेण्ट के गीता के अनुवाद ने पश्चिम के पाठकों को कृष्ण के ओजस्वी उपदेशों से तो परिचित कराया ही, उनके द्वारा स्थापित सैण्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना तथा शिक्षा में हिन्दुत्व के मौलिक उपदेशों को समाविष्ट करने जैसे कार्यों ने नवयुवकों को अपने पुरातन गौरव तथा सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आकर्षित किया। इससे पहले १९०२ में स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) की स्थापना कर शिक्षा में राष्ट्रीयता को लाने का श्लाघनीय कार्य कर चुके थे।

थियोसोफी तथा स्वामी विवेकानन्द ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अधिकांशतः शासकों की भाषा अंग्रेजी का सहारा लिया। इसलिए ये भारत की जनता के निम्नतम स्तर के लोगों से अपना संवाद नहीं बना सके। आभिजात्य तथा सुसंस्कृत एवं सुशिक्षित वर्ग के लोगों ने ही इनकी शिक्षाओं से प्रभाव ग्रहण किया। तथापि इन आन्दोलनों (थियोसोफी तथा रामकृष्ण मिशन) ने शासक जाति के गौरांग समाज को यह अनुभव करा दिया कि कतिपय कारणों से भारतवासी आज चाहे अधोगति को प्राप्त हो गए हैं, पर अध्यात्म, धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा साहित्य के क्षेत्रों में उनका विगत अवदान ऐतिहासिक तथा स्मरणीय रहा है।

इसके पश्चात् आई बीसवीं सदी। ब्रह्मसमाज ने सम्पूर्ण देश को प्रभावित तथा आन्दोलित नहीं किया था। उसका विशेष प्रभाव उसकी जन्मभूमि बंगाल तथा कुछ—कुछ महाराष्ट्र तथा पंजाब में दिखाई दिया। महाराष्ट्र में सन् १८६७ में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। उसमें ब्रह्म समाज का स्पष्ट प्रभाव दिखाई दिया।

जब ब्रह्म नेता केशवचन्द्र ने मुम्बई प्रदेश की यात्रा की थी तो महाराष्ट्र के गोपाल राव हरिदेशमुख, रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर, विष्णुशास्त्री चिपलूणकर तथा महादेव गोविन्द रानडे आदि जागरूक नेताओं ने ब्रह्म सिद्धान्तों में रूचि दिखाई थी, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने प्रार्थना समाज की स्थापना की। आज महाराष्ट्र के लोगों पर ब्रह्म समाज के उदार तथा सुधारवादी सिद्धान्तों का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वहाँ तिलक के राष्ट्रवाद तथा सावरकर के हिन्दुत्व का प्रभाव ही दिखाई देता है जो शिवसेना के कट्टरवाद में परिणत हो चुका है।

पंजाब के हिन्दुओं को इस्लामी कट्टरता से जूंझना पड़ रहा था। वहां अल्पसंख्यक होने के कारण मुसलमानी धर्म, सभ्यता तथा भाषा–संस्कृति ने उन्हें आक्रान्त कर रखा था। उनकी समस्या अपने 'स्व' को बचाने की थी और यह तभी सम्भव था जब कोई उदार विचारों वाला सुधार–आन्दोलन उसकी अस्मिता की रक्षा करने के लिए आगे आता। यह क्षमता ब्रह्मसमाज में ही थी क्योंकि इस्लामी एकेश्वरवाद के समक्ष उपनिषदों का एक ब्रह्मवाद कथमपि अवर कोटि का नहीं था। खान–पान, आचार–व्यवहार तथा सामाजिक समानता का उपदेश देने वाले ब्रह्मसमाज के लिए पंजाब के द्वार खुले थे। ब्रह्मनेता नवीनचन्द्र राय ने लाहौर को अपने कार्य का मुख्य स्थल बना लिया था। दयानन्द सरस्वती की एकेश्वरवाद में अनन्य निष्ठा, मूर्तिपूजा से उनकी विरक्ति तथा सामाजिक सुधारों में उनकी प्रगाढ़ अभिरूचि ने पंजाब के ब्रह्मसमाजियों को प्रभावित किया और उन्हें पाँच नदियों की इस भूमि में आमन्त्रित करने वाले यही लोग थे। गत शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में आर्यसमाज ने पंजाब में अपनी जड़े मजबूती से जमा ली थी और इस शताब्दी के आरम्भिक चार दशकों तक पंजाब का सार्वजनिक नेतृत्व आर्यसमाजियों के पास ही रहा। लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज तथा स्वामी श्रद्धानन्द की त्रिपुटी ने पंजाब की काया पलट कर दी थी। पंजाब के आर्यसमाज को जबरदस्त धक्का तो १९४७ में देश विभाजन के कारण ही लगा। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ तक ब्रह्मसमाज का प्रभावक्षेत्र अत्यन्त सीमित हो गया। बंगाल की राजधानी कलकत्ता तथा उसके कुछ नगरों तक ही राममोहन राय के मन्तव्यों के प्रति लोगों की आस्थाएं सीमित हो गईं। महाकवि रवीन्द्रनाथ यद्यपि जन्मना ब्रह्मसमाजी थे, उनकी मृत्युशय्या पर भी ब्रह्मपद्धति से प्रार्थना की गई थी किन्तु वैचारिक दृष्टि से गुरुदेव मानवतावादी थे। उनका यह विराट् चिन्तन किसी संस्था या आन्दोलन की सीमा रेखा में समाविष्ट होने वाला नहीं था। १९३३ में जब राम मोहन राय की निधन शताब्दी मनाई गई, उस समय कलकत्ता में एक महत् आयोजन हुआ तथा इस उपलक्ष्य में एक स्मृति–ग्रन्थ भी छपा, किन्तु इसके पश्चात् बंगाल में भी ब्रह्म आन्दोलन लुप्त हो गया। विपिनचन्द्र पाल तथा चितरंजनदास जैसे ब्रह्म लोग भी राजनीति में अपनी शक्ति लगाने लगे। परिणामत: बंगाल की भूमि पुन: तांत्रिक वामाचारी साधना तथा काली पूजा के बहाने मूक पशुओं के बलिदान से रक्तरंजित हो गई। इसका

गिला स्वामी विवेकानन्द ने भी किया है।

जैसा कि देख चुके हैं उत्तर भारत के हिन्दी भाषाभाषी जनजीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला, जनमानस में गहरी पैठ बनाने वाला तथा समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करने वाला आन्दोलन आर्यसमाज का ही था। गुजरात में जन्म लेने वाले तथा महाराष्ट्र में आर्यसमाज की स्थापना करने वाले दयानन्द सरस्वती के युगानुरूप विचारों का सर्वाधिक स्वागत पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में हुआ। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की केनसास यूनीवर्सिटी के इतिहास के भूतपूर्व प्रोफेसर (अब दिवंगत) प्रो.के.डब्लू.जोन्स ने अपने शोधग्रन्थ आर्यधर्म में १८७७ से १९०० तक के पंजाब में आर्यसमाज की गतिविधियों की विस्तृत समीक्षा की है। उन्होंने इस अवधि में पंजाब के सामाजिक जीवन में आये परिवर्तन में आर्यसमाज की महती भूमिका को प्रमाणपूर्वक रेखांकित किया है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में चार दशकों तक पंजाब का जनजीवन आर्यसमाज की लोकहितकारिणी शिक्षाओं एवं मान्यताओं से स्फूर्ति ग्रहण करता रहा, किन्तु देश विभाजन के साथ पंजाब की सदानीरा धरती भी जब बंट गई तो आर्यसमाज का ओज, तेज, बल और पराक्रम भी क्षीण हो गया और उसके क्रियाकलाप कुछ शिक्षण संस्थाओं के चलाने तक ही सीमित हो गये।

थियोसोफी का आन्दोलन, जैसा कि हम देख चुके हैं भारत के उच्च पठित, संभ्रान्त लोगों के एक वर्ग तक ही सीमित रहा। यद्यपि इस शती में श्रीमती बेसेण्ट, डा. भगवानदास, जिनराजा दास, श्रीमती रूक्मिणी अरुण्डेल आदि अनेक विभूतियां इसमें रूचि लेती रहीं, किन्तु सामान्य जनता ने इसमें कभी आत्मीयता अनुभव नहीं की और न इस संस्था के बौद्धिक भीमों ने कभी देश की मूलभूत समस्याओं में कोई रूचि ली। तथापि थियोसोफी का अकादमिक अवदान कम नहीं रहा जो अड्यार स्थित उनके पुस्तकालय, ग्रन्थ प्रकाशन, प्राचीन शास्त्रों के वृहत् संग्रह का भण्डारण के रूप में प्रत्यक्ष है। अड्यार (मद्रास) का यह पुस्तक संग्रह संस्कृत तथा प्राच्य विद्या ग्रन्थों का समृद्धतम पुस्तकालय है।

आर्यसमाज का आन्दोलन निश्चय ही वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक अत्यन्त प्रभावशाली, गतिशील तथा युग की धड़कन को पहचानने में सफल रहा, किन्तु अब इस शताब्दी के समाप्त होने पर यदि हम इसकी विगत उपलब्धियों तथा कार्यों की समीक्षा करें तो लगता है कि उसने अब तक जो कुछ सफलता प्राप्त की थी, उस पर भी पानी फेर रहा है। पहले धर्म के क्षेत्र को लें। आर्य समाज ने वेदों के एकेश्वरवाद तथा उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्मवाद एवं उच्च अध्यात्मवाद का उपदेश दिया था, जिसमें कर्मकाण्ड की बहुलता, बाह्य आडम्बर तथा तर्कहीन क्रियाकलापों के लिए कोई स्थान नहीं था। पठित तथा विचारशील लोगों ने आर्यसमाज के इन धार्मिक मन्तव्यों को उन्मुक्त भाव से स्वीकार किया, किन्तु वर्तमान में मूर्तिपूजा की पुन: स्थापना, मन्दिरों और देवस्थानों के निर्माण में राष्ट्रधन का अपरिमित अपव्यय, गुरुडम की वापसी,

सच्चिदानन्द परमात्मा के स्थान पर ढोंगी साधुओं, चमत्कारी बाबाओं तथा स्वयं भू भगवानों के प्रति जनता की आसक्ति यह बता रही है कि स्वामी दयानन्द और राममोहन राय की वैदिक उपासना पद्धतियां अपना प्रभाव खो चुकी हैं तथा प्रचार–तन्त्र की आधुनिक शैलियों ने धर्म के नाम पर प्रवंचना, धोखाधड़ी तथा लूटखसोट को ही बढ़ावा दिया है।

सुधार आन्दोलनों की सामाजिक उपलब्धियां भी आज निष्प्रभ तथा प्रभावहीन हो रही है। विवाहों में सादगी के स्थान पर फिजूलखर्ची बढ़ी, दहेज आदि प्रथाओं ने अमानुषी रूप धारण कर लिया तथा नववधुओं को जीते–जी ही जलाने के वीभत्स अनर्थकाण्ड घटित होने लगे। गृहस्थों के संस्कार कार्यों में आडम्बर तथा दिखावा बढ़ने लगा। जहां समाज में सार्वत्रिक समता तथा जातिप्रथा के उन्मूलन का विचार सुधार आन्दोलनों ने प्रस्तुत किया था, वहां राजनीतिक दलों ने जाति, वर्ग तथा लिंग के आधार पर द्वेष तथा विरोध की भावना बढ़ाई। कहने को दलितोद्धार तथा अछूतों के उत्थान में सफलता मिली तो उधर नौकरियों में लगातार आरक्षण की सुविधा ने जातियों में परस्पर विग्रह के भाव पैदा किए। तथाकथित निम्न जातियों के प्रति घृणा का भाव भी पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ। जलाशयों पर दुर्बल वर्ग के लोगों को पानी नहीं भरने देने, दूल्हों को घोड़ों पर नहीं चढ़ने देने तथा अन्त्यजों को मन्दिरों में प्रविष्ट न करने देने की घटनाएँ यदा–कदा होती हैं। वल्लभ–सम्प्रदाय के पूजास्थलों के बाहर लगे सूचनापट्ट पर यह लिखा रहता है–इस हवेली में सर्वसामान्य को प्रवेश का अधिकार नहीं है। इन स्थितियों में यह मानना पड़ता है कि समाज सुधार के कार्यक्रमों में जो सफलता मिली थी वह आज अपना तेज तथा ओज खो चुकी है। युवा पीढ़ी में स्वेच्छाचार, फैशनप्रियता तथा दिखावा बढ़ा है। नारी जागरण तो हुआ किन्तु पश्चिमी संस्कृति के विषाक्त प्रभाव ने स्त्री–सहज गरिमा, शील तथा मर्यादा को क्षति पहुँचाई है।

रामकृष्ण–विवेकानन्द के उपदेशों के प्रति पठित वर्ग का आकर्षण तो बढ़ा किन्तु सामान्य जनता की मूलभूत समस्याओं का समाधान करने में वेदान्त का यह नूतन भाष्य भी सफल नहीं हो सका। निष्कर्षत: स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के भारत के जनजीवन पर सुधारवादी नवजागरण के आन्दोलनों का प्रभाव क्षीणतर होता गया। लोगों की नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था समाप्त हो गई। समाज सेवा और जनहित के लिए स्वयं को समर्पित करने का जो जज्बा इन सुधारकों ने उत्पन्न किया था, उसका स्थान स्वार्थपरता, भौतिक विलास वस्तुओं की प्राप्ति को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य ठहराना, राजनीति और प्रशासन में भ्रष्टाचार का प्रसार तथा समाज हित से स्वयं के हित को प्रधानता देने जैसे अपमूल्यों ने ले लिया है। आज का युग अर्थ को प्रधानता देता है, बाह्य चाकचिक्य तथा आडम्बरपूर्ण जीवन जीना ही लोगों की नियति बन चुका है। राजनीतिक कदाचारों ने देश के सार्वजनिक जीवन को विषाक्त बना दिया है। इन परिस्थितियों में निरपेक्ष विचारक को इसी धारणा पर पहुंचना पड़ता है कि गत शताब्दी में उत्पन्न भारत के सुधारवादी

नवजागरण के आन्दोलन अपना कार्य पूरा कर अतीत के हाशिए में जा चुके हैं। इसी बात की प्रतीक्षा है कि नई शताब्दी में कोई नया मसीहा आएगा तो हमारी समस्याओं को समाधान शायद कर सकेगा।

भारत के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का नवजागरण आन्दोलन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण रहा है। यों तो उस समय तक इस देश में विदेशी शासन दृढ़तापूर्वक अपनी नींव जमा चुका था, किन्तु पश्चिम के सम्पर्क से भारतवासियों में भी स्वतन्त्र चिन्तन तथा नवीन विचारों के प्रति आकर्षण दिखाई पड़ने लगा। फ्रांस की राज्य–क्रान्ति को जन्म देने वाले एकता, स्वतन्त्रता या भ्रातृभाव के नारों से देश का पठित वर्ग परिचित होने लगा था। यह वह समय था जब देशवासी मध्यकालीन धार्मिक अन्धविश्वासों, सामाजिक विषमताओं तथा अन्य प्रकार की दुर्बलताओं के प्रति विद्रोह करने की स्थिति में धीरे–धीरे आ रहे थे। यूरोप में विकसित होने वाले विज्ञान के नवीन आविष्कारों तथा उद्योग–धन्धों में कल–कारखानों की स्थापना के कारण आई क्रान्ति का प्रभाव भी भारतीय जनसमाज पर दिखाई पड़ने लगा था। इसी समय गुजरात में उत्पन्न स्वामी दयानन्द ने राष्ट्रीय स्वाभिमान को जागृत करने हेतु देशवासियों में स्वदेश, स्वभाषा, स्वसंस्कृति तथा स्वधर्म के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में एक वैचारिक क्रान्ति को जन्म दिया जिससे स्वदेशी अस्मिता को अधिमान मिला।

दयानन्द सरस्वती मूलत: एक धार्मिक पुरुष थे। परन्तु उन्होंने धर्म की जो व्याख्या की है वह किसी मनुष्य द्वारा स्थापित मत या सम्प्रदाय का पर्याय न होकर मानव के सर्वांगीण उत्थान में सहायक उन गुणों की समष्टि का नाम है जिनके कारण मनुष्य में सच्ची मानवता का विकास होता है। उनकी दृष्टि में मनुष्य वही है जो अपने तुल्य अन्यों को भी समझे तथा सब के प्रति सत्य, न्याय तथा धर्म का व्यवहार करे। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर सर मोनियर विलियम्स द्वारा मुम्बई में यह पूछे जाने पर कि उनकी दृष्टि में धर्म की क्या परिभाषा हो सकती है, दयानन्द ने कहा कि मेरे विचार से धर्म वह है जो सत्य से युक्त है, न्याय की भावना से समाविष्ट है, जिसमें पक्षपात का लेशमात्र भी नहीं है तथा जो सृष्टि–क्रम के नितान्त अनुकूल है। दयानन्द जिसे सृष्टि–क्रम के अनुकूल होना चाहते थे उसे ही पं. नेहरू वैज्ञानिक सोच कहते हैं। अन्तर इतना ही है कि दयानन्द ईश्वरवादी है जबकि पं. नेहरू का किसी अगोचर, अतीन्द्रिय सत्ता के प्रति वैसा आग्रह नहीं है। सामाजिक दृष्टि से दयानन्द यद्यपि वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन करते हैं, किन्तु वे प्रचलित जाति प्रथा के विरोधी तो हैं ही, वर्णव्यवस्था को भी गुण, कर्म तथा स्वभाव पर आधारित स्वीकार करते हैं। उनके विचार से समाज में व्याप्त अज्ञान को दूर करने का दायित्व ब्राह्मण का है जबकि क्षत्रिय समाज के विभिन्न दलित, शोषित एवं पीड़ित वर्ग पर किए जाने वाले अन्याय का प्रतिकार करता है। उनकी दृष्टि में वैश्य वह है जो राष्ट्र के भौतिक अभावों

और आर्थिक विषमताओं को दूर करता है।

पीड़ित, शोषित और दलित वर्ग के अधिकारों की रक्षा में वे सदा आगे रहे। शताब्दियों से अत्याचार और दमन का शिकार बनी नारी तथा कथित शूद्र वर्ग के सभी सामाजिक अधिकारों के वे प्रबल समर्थक थे। इन वर्गों के अधिकारों की रक्षा का मुद्दा उन्होंने वेद के पठन–पाठन के अधिकार को एक प्रतीक के रूप में चुनकर उठाया। स्वयं संन्यासी होने पर भी उन्होंने संन्यासियों के बारे में प्रचलित इस धारणा को स्वीकार नहीं किया कि समाज के प्रति उनका कोई दायित्व नहीं होता और मात्र वैराग्य धारण अथवा अध्यात्म चिन्तन ही उनके आश्रम का एकमेव लक्ष्य है। इसके विपरीत उन्होंने स्पष्ट किया कि जिस मातृभूमि के अन्न एवं जल से उनका जीवन पोषित हुआ है, उसके प्रति कर्त्तव्य भावना का वहन करना ही संन्यासी का लक्ष्य होना चाहिए। दयानन्द की दृष्टि में धर्म किन्हीं बाह्य कर्मकाण्डों या आचरणों का पुंज नहीं है अपितु धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय संयम चोरी का त्याग, विवेक, सत्य, क्रोध त्याग आदि मानवीय गुण ही हमें सच्चा धार्मिक बनाते हैं। दयानन्द ने मानव में विद्यमान विवेक, बुद्धि, तथा तर्कयुक्त चिन्तन को जगाने पर बल दिया है। इसका कारण यह रहा कि वे जिन वेदों की शिक्षाओं को लेकर चले थे, उनमें मेधा बुद्धि को धारण करने की प्रेरणा दी गई थी। प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में सविता परमात्मा के उस तेज को धारण करने की बात कही गई है जो हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करता है। दयानन्द द्वारा प्रतिपादित आध्यात्मिक विचार वेदों में आये एकेश्वरवाद तथा पश्चात्वर्ती उपनिषदों में विवेचित ब्रह्मवाद के पूर्ण अनुकूल है।

नवजागरण का युग समाजसुधार का युग था। व्यक्ति, परिवार तथा समाज में व्याप्त बुराइयों के उन्मूलन में ये सुधारकगण सदा तत्पर रहे। राजा राममोहनराय ने लार्ड विलियम बैंटिक को प्रेरणा देकर सती दाह को रुकवाया तो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए १८५६ में कानून बनवाया। महाराष्ट्र में यह सुधार कार्य महादेव गोविन्द रानडे, ज्योतिराव फुले तथा रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर आदि सुधारकों के द्वारा हो रहा था। १८७२–७७ की अवधि में दयानन्द ने भी पहले कलकत्ता जाकर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन तथा रामकृष्ण परमहंस आदि धार्मिक नेताओं से आवश्यक परामर्श किया। तत्पश्चात् १८७४–७५ में वे महाराष्ट्र जाकर तत्कालीन प्रार्थना समाज के मुखियाओं से परामर्श करते हैं तथा १९७७–७९ की अवधि में पंजाब प्रान्त का सघन भ्रमण कर वहां सुधार कार्य का बीजारोपण करते हैं। राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार तथा मध्यप्रदेश जैसे हिन्दी भाषी प्रान्तों में तो वे आरम्भ से ही सुधार तथा जागरण का शंखनाद कर रहे थे।

दयानन्द की यह धार्मिक प्रगतिशील दृष्टि विशुद्ध भारतीय चिन्तन की उपज है। उनके उदार तथा विराट् मानवता के व्यापक सोच के पीछे विदेशी प्रभाव लेशमात्र भी दिखाई नहीं पड़ता।

यदि वे अंग्रेजी जानते होते अथवा उन्हें कुछ अधिक आयु मिली होती तो वे भी भारतीय धर्म तथा संस्कृति के ध्वजवाहक स्वामी विवेकानन्द की भांति पश्चिमी देशों में जाकर उस धर्म की विजय वैजयन्ती फहराते जो मानव जाति जितना ही शाश्वत तथा सनातन है तथा संसार के बहुलांश द्वारा अपनाये गये बौद्ध धर्म को उसका एक विद्रोही बालक कहा जा सकता है। साथ ही ईसा द्वारा दिये गये नैतिक उपदेश तो मानो गीता तथा योगदर्शन में उपदिष्ट आचार मूलक धर्म की दूर सुनाई पड़ने वाली अनुगूंज मात्र ही हैं।

तथापि दयानन्द की सर्वोपरि विशेषता उसका राष्ट्रवादी स्वर है। वे भारत की पराधीनता, परवशता तथा दयनीय स्थिति से अत्यन्त व्याकुल थे। जब १८५७ की हलचल की समाप्ति पर महारानी विक्टोरिया ने अपना घोषणा–पत्र जारी कर भारत की प्रजा को यह आश्वासन दिया कि अब से भारत का शासन सीधे ब्रिटिश ताज के अधीन आ गया है और महारानी अपनी प्रिय भारतीय प्रजा को आश्वस्त करना चाहती है कि भविष्य में उसके प्रति मत–मतान्तर का आग्रह किये बिना, पूर्ण न्याय के साथ तथा मातृतुल्य वात्सल्य रखते हुए शासन किया जाएगा तो सुशासन की अपेक्षा स्वशासन को वरीयता देने वाले दयानन्द सरस्वती ने स्पष्ट कहा कि जो स्वदेशी शासन है वही सर्वोपरि उत्तम है। किन्तु अन्यों का शासन चाहे वह धार्मिक मतान्धता से रहित, पूर्ण न्याययुक्त तथा माता–पिता के स्नेह तथा कृपा युक्त भी क्यों न हों, कदापि वरणीय नहीं होता। आज भारत की स्वतन्त्रता की ५५ वीं जयन्ती के अवसर पर दयानन्द की यह ओजस्वी वाणी हमें राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का निर्धारण करने के लिए पुनः प्रेरणा देती है।

डॉ. भवानीलाल भारतीय
८/४२३, नन्दनवन, जोधपुर

गुरुकुल शिक्षाप्रणाली की प्रासङ्गिकता

महामनीषी स्वामी श्रद्धानन्द ने अपनी दूरदृष्टि से जिस शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया था, आज वह शतायु हो रही है। परिपक्वता के लिए इतनी आयु पर्याप्त है। गुरुकुल के शताब्दी समारोह के अवसर पर यह विचार करना समीचीन ही होगा कि यह पद्धति अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कितनी सफल रही है तथा वर्तमान समय में इसमें परिवर्तन या संशोधन की अपेक्षा है या नहीं?

उक्त बिन्दु पर विचार करने से पहले हमें गुरुकुल शिक्षाप्रणाली के लक्ष्य को देखना होगा। जैसा कि वर्तमान समय में एक धारणा है कि गुरुकुल में जाने का अर्थ है—संस्कृत तथा वेदादि शास्त्रों का विद्वान् बनना। गुरुकुल शिक्षा पद्धति का लक्ष्य केवल इतना ही नहीं है। यह मूल्यों पर आधारित पद्धति है तथा इसके जन्मदाता ने सोच समझ कर उन मूल्यों को इसका आधार बनाया था जो कि प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा पद्धति में चले आ रहे थे। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में कुछ ऐसे तत्त्व थे जो उसे तात्कालिक शिक्षा पद्धति, जो कि स्कूल तथा कालेजों के रूप में सर्वत्र फैली हुयी थी, उससे पृथक् करते थे। वे सिद्धान्त ही उसकी आत्मा थे, उसकी आधार शिला थे। यदि यह पद्धति उन तत्त्वों को छोड़ देगी तो यह प्राणहीन हो जायेगी, इसकी विशेषता समाप्त हो जायेगी। संक्षेप में यहां उन आदर्शों पर विचार किया जाता है कि जो इस पद्धति के मूल में रहे हैं।

लार्ड मैकाले ने एक ऐसी शिक्षा पद्धति का श्रीगणेश यहां पर किया था, जो छात्रों को उनकी मातृभाषा, भारत की धरोहर प्राच्य विद्या तथा भारतीय संस्कृति से पृथक् करके अंग्रेजी भाषा तथा संस्कृति में दीक्षित कर रही थी। उसका यह प्रयास सोद्देश्य था। अंग्रेजों का प्रतिनिधि होने के नाते भारतीयों को भारत की प्राचीन संस्कृति एवं धर्म से विमुख करके पाश्चात्य भाषा एवं संस्कृति में दीक्षित करना उसका घोषित उद्देश्य था। इसके साथ ही प्राचीन भारतीय इतिहास को विकृत रूप में उपस्थित करके, कपोल कल्पित नयी मान्यताओं के आधार पर भारतीयों के मन में प्राचीन भारत के प्रति घृणा उत्पन्न करना भी उसका उद्देश्य था। यह दुर्भाग्य ही है कि उन मिथ्या मान्यताओं को आज भी स्कूलों तथा कालेजों में उसी रूप में पढ़ाया जा रहा है, जैसा कि पराधीन भारत में पढ़ाया जाता था। यथा—आर्य इस देश के निवासी नहीं है। वे आक्रान्ता के रूप में यहां आये। उन्होंने यहां के आदिवासियों को पददलित किया। वे गोमांस खाते थे, शराब पीते थे, बहुपत्नी प्रथा उनमें प्रचलित थी। उन्होंने द्रविड़ों से युद्ध किया , इत्यादि मान्यताएं मैकाले की शिक्षा पद्धति की ही देन हैं। ये सभी मान्यताएं वेदों का नाम लेकर, वेदमन्त्रों के गलत अर्थ करके

प्रचारित की गयी। मैकाले की शिक्षा पद्धति को अपनाने वाला भारतीय शिक्षा तन्त्र तो इन मिथ्या मान्यताओं का समर्थक था ही, खेदजनक यह है कि अपने आपको महर्षि दयानन्द का अनुगामी कहने वाला डी.ए.वी. शिक्षा तन्त्र भी इन्ही भ्रमित विचारों का पोषक है। प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु के अनुसार डी.ए.वी. कालेज चण्डीगढ़ एवं आर्य कालेज लुधियाना के प्रोफेसरों द्वारा लिखित इतिहास की पुस्तकों में इन्ही मिथ्या मान्यताओं का समर्थन किया गया है। डी.ए.वी. कालेज लाहौर के प्रि. बहादुरमल ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि ऋषि दयानन्द का यह मत कि –"आर्य भारत के मूल निवासी थे", हमारे लिए मानना अनिवार्य नहीं है।

उक्त मिथ्या मान्यताएं वैदिक संस्कृति एवं पूरे भारत एवं उसके इतिहास के लिए एक चुनौती थी। ऋषि दयानन्द ने इनका प्रतिवाद किया, किन्तु उनके पश्चात् भी ये मान्यताएं शिक्षित जगत् में ज्यों की त्यों प्रचलित रही। स्वामी श्रद्धानन्द ने वैचारिक आंधी को रोकने का सशक्त एवं सार्थक प्रयास गुरुकुलों के माध्यम से किया। इस प्रसङ्ग में हमें उस घटना पर भी ध्यान देना होगा जब स्वामी जी की पुत्री वेदकुमारी ईसाईयों के स्कूल से "ईसा-ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल। ईसा मेरा राम रमैया", इस गाने को गाती हुयी घर आयी थी। मुंशीराम जी का माथा ठनका, तथा उन्होंने भांप लिया कि ईसाई स्कूल शिक्षा के साथ–साथ ईसाई धर्म की दीक्षा भी देते हैं। इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप मुंशीराम जी ने कन्या गुरुकुलों की स्थापना की।

गुरुकुलों के स्नातक एवं स्नातिकाओं ने मैकाले तथा उसके अनुयायी भारतीयों की मिथ्या मान्यताओं के प्रतिवाद का लिखित रूप में स्थायी प्रयास किया, जो सर्वत्र समादृत हुआ। मौखिक प्रचार की अपेक्षा लिखित साहित्य ही स्थायी होता है।। इस दिशा में पं. बुद्धदेव विद्यालंकार, पं. धर्मदेव विद्या मार्तण्ड, पं. जयदेव विद्यालंकार, पं. चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, पं. प्रियव्रत वेदवाचस्पति आदि अनेक नाम हैं, जिन्होंने उत्कृष्ट कोटि का साहित्य प्रस्तुत करके, वेदों का भाष्य करके सभी मिथ्या मान्यताओं का सप्रमाण खण्डन किया। पं. धर्मदेव जी का "वेदों का यथार्थ स्वरूप" ग्रन्थ इस दिशा में अनुपम ग्रन्थ है। अभी भी गुरुकुलों के स्नातक वेदों के शुद्ध स्वरूप एवं वैदिक मान्यताओं के प्रचार–प्रसार में संलग्न हैं, जो स्वामी श्रद्धानन्द का प्रमुख लक्ष्य था।

वैदिक संस्कृति के साथ-साथ भारतीय भाषाओं को पददलित करके उनके स्थान पर अंग्रेजी का साम्राज्य स्थापित करना भी मैकाले का उद्देश्य था। स्वामी जी इस दिशा में भी सचेष्ट थे। विदेशी संस्कृति के प्रवाह को रोकने के साथ ही छात्रों को प्राचीन भारतीय संस्कृति, प्राच्यविद्या एवं इतिहास से जोड़ना तथा मातृभाषा के माध्यम से ही विज्ञान आदि सभी विषयों की उच्चशिक्षा प्रदान करना स्वामी श्रद्धानन्द का उद्देश्य था, जिसके लिए उन्होंने गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को

माध्यम बनाया। स्वामी जी का यह प्रयोग सफल रहा। वे उच्छिष्ट भोजी नहीं थे। उनका प्रयास था कि गुरुकुल के छात्र विज्ञान आदि को भी मूल रूप में अपनी मातृभाषा में ही सोंचे, उसमें ही पढें तथा उसमें ही लिखें, न कि अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद के माध्यम से । गुरुकुल के स्नातकों ने ऐसा किया भी । यही कारण था कि उन दिनों स्नातकों के द्वारा विज्ञान विषय पर हिन्दी में लिखी गयी मूल पुस्तकों (अनुवाद नहीं) की विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पू. अध्यक्ष डॉ. डी. एस. कोठारी ने भरपूर प्रशंसा की थी। वैसा ही प्रयास यदि आगे भी चलता रहता तो विज्ञान चिकित्सा आदि सभी विषयों में गुरुकुल से छपे मौलिक ग्रन्थ शिक्षा जगत् के लिए आदर्श एवं मानक ग्रन्थ सिद्ध होते।

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सूत्रपात का दूसरा कारण यह था कि पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली में उक्त दोषों के अतिरिक्त भी कितने दोष हैं, यह हम सभी जानते हैं। यह शिक्षा पद्धति पूर्वत: पदोन्मुखी, रोजगारोन्मुखी है। शिक्षा प्राप्त करके ऊंची नौकरियां, प्रचुर धन एवं सुविधाएं प्राप्त करके विलासितापूर्ण जीवन बिताना इसका एक मात्र लक्ष्य है। इसमें त्याग, तप, संयम, साधना, ब्रह्मचर्य, नैतिकता, धर्म तथा अध्यात्म के लिए कोई स्थान नहीं है, जबकि विद्यार्थी के लिए ये तत्त्व आवश्यक हैं। स्वयं विद्यादेवी ही तो कह रही है—यमेव विद्यात् शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम्। तस्मै मा ब्रूहि.....वीर्यवती यथा स्याम्। प्राचीन शिक्षा इसी प्रकार की थी। यह छात्रों के सर्वाङ्गीण विकास की पद्धति थी। पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके छात्र का बौद्धिक विकास तो हो जायेगा, किन्तु नैतिकता एवं अध्यात्म का समावेश उसमें न हो पायेगा। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए ये गुण भी आवश्यक हैं। बौद्धिक विकास के साथ आत्मिक विकास भी उतना ही अपरिहार्य है। तभी तो प्राचीन शिक्षा पद्धति का उपासक आचार्य समावर्तन काल में भी अपने शिष्यों को उपदेश देता है—धर्मान्न प्रमदितव्यम्। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। क्या वर्तमान शिक्षाप्रणाली में इन तत्त्वों का कोई स्थान है? तथा क्या राष्ट्रिय, सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन में इन तत्त्वों की आवश्यकता नहीं? महर्षि दयानन्द लिखते हैं—"विद्वान् तो सब नही हो सकते किन्तु धार्मिक तो सब हो सकते है।" एक अधार्मिक विद्वान् की अपेक्षा धार्मिक अविद्वान् अधिक अच्छा है।

दोषपूर्ण पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के स्थान पर उसी प्राचीन शिक्षा पद्धति को गुरुकुलों के ाध्यम से स्वामी जी ने प्रतिष्ठित करने का उद्योग किया, जिसमें छात्र का सर्वाङ्गीण विकास होता था। वर्तमान में हमें यह भी देखना होगा कि इस पद्धति ने वस्तुत: ऐसे स्नातक तैयार किये हैं या नहीं, यदि नहीं तो कहीं न कहीं इसके क्रियान्वयन में हमसे चूक हुयी है, जिसमें सुधार अपेक्षित है। गुरुकुल की शताब्दी के अवसर पर हमें यह सोचना चाहिए।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की सर्वप्रमुख विशेषता थी इसकी आश्रम व्यवस्था। इसमें छात्रों तथा गुरुजनों का केवल निकटता का ही नहीं, अपितु पारिवारिक सम्बन्ध बनता था, जो वर्तमान पद्धति में असम्भव है। आज भी महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में इसकी नकल पर छात्रावास होते हैं, किन्तु वे केवल छात्रावास नही, अपितु होस्टल=हो+स्थल, हो-हल्ला करने के स्थल हैं। विद्या के अर्थ तो वहां घुट कर रहते हैं। इन उदीयमान छात्रों में सिगरेट, गांजा, शराब, मांस, व्याभिचार, चोरी, बेईमानी, हिंसा आदि सभी दोष होते हैं। ये ही कल को देश के कर्णधार बनते हैं तो देश उन्नति करेगा या अध:पतन में जायेगा। प्राचीन आश्रम पद्धति इन सभी दोषों से मुक्त थी। वहां पर आचार्य शिष्यों को केवल पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं, अपितु आचार की शिक्षा भी देता था। तभी तो यास्क ने कहा है—आचार्य आचारं ग्राहयति, आचिनोति बुद्धिम्। स्वामी जी का यही प्रयास था।

आज गुरुकुल कांगड़ी, विश्वविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित है। संस्कृत, विज्ञान, चिकित्सा, वर्तमान टैक्नोलॉजी ये सभी विषय वहां पढ़ाये जा रहे हैं। इन छात्रों को प्राचीन गुरुकुल शिक्षा पद्धति के मूल्यों को आत्मसात् कराने का यत्न भी हो रहा है या नहीं, यह विचारणीय विषय है। यदि नहीं, तो ऐसी शिक्षा तो अन्य विश्वविद्यालय भी दे रहे हैं, फिर गुरुकुल विश्वविद्यालय की विशेषता ही क्या रह जाती है? यदि हम चाहें तो इन पाठ्यक्रमों में भी वैदिक सिद्धान्त, नैतिकता आदि का समावेश किया जा सकता है, जो कि अनिवार्य है।

आधुनिक विषयों की शिक्षा देना समय की मांग है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, किन्तु गुरुकुल विश्वविद्यालय की सार्थकता तभी है जबकि इन विषयों की शिक्षा के साथ-साथ गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के मूल्यों, उसकी अच्छाईयों को भी आधुनिक छात्रों को आत्मसात् करा दिया जाए। ऐसा दो ही प्रकार से सम्भव है। इन आधुनिक पाठ्यक्रमों में वैदिक सिद्धान्त, प्राच्य विद्या एवं इतिहास से सम्बन्धित पाठ्यक्रम का स्वल्पांश में समावेश करके तथा आश्रम पद्धति को पुनर्जीवित करके। होस्टलों के स्थान पर ऐसे छात्रावासों का विकास किया जाए, जहां छात्र की दिनचर्या एक ब्रह्मचारी की हो। जिसका जीवन त्याग, तपस्या, सत्य, श्रम से ओतप्रोत हो तथा जो प्राचीन इतिहास एवं वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान भी रखता हो। ऐसे प्रयोग हो भी रहे हैं। प्रसिद्ध उद्योगपति एवं आर्यसमाजी लुधियाना निवासी मुंजाल जी ने कन्याओं का ऐसा ही गुरुकुल खोला हुआ है, जहां शिक्षा तो आधुनिक विषयों की दी जाती है तथा छात्राओं की दिनचर्या गुरुकुलीय ब्रह्मचारिणियों जैसी है। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय तथा इससे सम्बन्धित अन्य गुरुकुलों अथवा महाविद्यालयों में भी ऐसे प्रयोग किये जा सकते हैं। अन्यथा भय है कि वर्तमान समय में केवल संस्कृत के ज्ञान केन्द्र ये गुरुकुल अपना अस्तित्व अथवा सार्थकता ही न खो

दें। जैसा कि गुरुकुल भैंसवाल (हरियाणा) ने अपने गुरुकुलीयत्व को पूर्णतः समाप्त करके आधुनिक चोगा पहन लिया।

एक अन्य आवश्यक बात यह भी है कि आधुनिक विषयों की शिक्षा देने की स्पर्धा में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय अपने उस महान् लक्ष्य को न भूल जाए, जिसके लिए स्वामी जी ने इसकी स्थापना की थी। वह लक्ष्य है—प्राच्य विद्या की रक्षा एवं उसका संवर्धन। गुरुकुल की ख्याति एक ऐसे केन्द्र के रूप में होनी चाहिए जहां प्राच्य विद्या अर्थात् वेदादि सभी शास्त्रों के सुविख्यात विद्वान् हों तथा प्राच्य विद्या की सभी शाखाओं में शोध कार्य हो रहे हों। पूना का भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट तथा होशियारपुर का वि.वै. शोध संस्थान इसी प्रकार के संस्थान है। गुरुकुल में भी स्वामी श्रद्धानन्द शोध संस्थान है। गुरुकुल के सुयोग्य स्नातकों ने अपनी योग्यता से बाह्य जगत् को प्रभाावित किया है तथा अच्छा साहित्य समाज को दिया है। अभी भी वहां कार्य हो ही रहा है, किन्तु यह और भी अधिक प्रगति की ओर अग्रसर हो सके, ऐसी योजना ऐसे अवसरों पर बनायी जा सकती हैं। गुरुकुल में अभी योग्य विद्वान् कार्य कर रहे हैं तथा अच्छा साहित्य समाज को दे रहे है। इनमें से अधिकांश वेद—संस्कृत तथा दर्शन आदि विषयों से सम्बन्धित ही हैं। सभी विषयों में गुरुकुल प्रणाली के पोषक वैदिक संस्कृति के ज्ञाता विद्वान् प्राध्यापक हो, यह गुरुकुल विश्वविद्यालय के लिए अपरिहार्य तत्त्व होना चाहिए।

डॉ. रघुवीर वेदालंकार
बी. २६६ सरस्वती विहार
दिल्ली—३४

कुल कथा

हे तपः पूत, हे वीतराग
तुमने जग को दी नयी दृष्टि।
हे पुण्य लोक, हे पुण्य श्लोक
तुमने गुरुकुल की करी सृष्टि।।

***

तुम देशरत्न, तुम राष्ट्र रत्न,
जीवन सचमुच, अद्भुत ललाम।
भारत के स्वर्णिम पृष्ठों पर
अंकित 'श्रद्धा' का अमर नाम।।

***

'गुजरां वाला' पञ्जाब–प्रान्त, गुरुकुल का वहाँ श्री गणेश हुआ।
भारत के भाग्य दिवाकर का, मानो उस दिन अभिषेक हुआ।।
पर 'मुंशीराम' के मन में जो, चिन्तन की धारा चलती थी।
दिन रात उन्हे उस ओर सदा, मन ही मन व्याकुल करती थी।।
ऋषियों की वह पावन–वाणी, 'गिरीणां गह्वरे गूंज रही।
वन उपवन में गुरुकुल हो बस, यह तड़प उन्हे थी साल रही।।
अन्तस् में उठते जो विचार, प्रभु पूर्ण सदा कर देते हैं।
वे बना किसी को कर्ता फिर, सब काम पूर्ण कर देते है।।
'भारामल लाला' के वंशज, कनखल वासी भी धन्य हुए।
श्री वेणी प्रसाद व किशन चन्द, ईश्वर नें सहायक बना दिए।।
स्वामी जी की इच्छा को वें, 'श्री अमन सिंह' से कहते हैं।
इस तरह काल के पृष्ठो पर, निज नाम अमर का देते है।।
बिजनौर निवासी 'अमन सिंह' युग–युग तक यश के भागी है।
तन–मन व धन अर्पित करते, ऐसे कहाँ मिलते त्यागी है।।
वे धन्य हुए, हम धन्य हुए, भारत–माता भी धन्य हुई।
'कांगडी ग्राम' की भूमि भी, उस पुण्य–दान से धन्य हुई।।
'तेरह सौ बीघा' वन्यभूमि, वे गुरुकुल हित दे देते है।
'श्रद्धानन्द स्वामी' धन्यभाग, गुण मुंशी जी के गाते हैं।।

गुरुकुल में अब भी अमन चौक, उनकी ही याद दिलाता है।
यह 'कुल' तो सबका ऋणि सखे! जो पुण्य दान के दाता है।।
वे कर्मवीर, वे दानवीर, क्या कभी भुंलाए जाएंगे।
जब तक सूरज चन्दा जग में, सब उनके यश को गाएंगे।।

***

'चण्डी' के बीहड जंगल में, फिर कुटियों का निर्माण हुआ।
एक सच्चे निर्भय साधु का, वह स्वप्न यहाँ साकार हुआ।।
उस 'नील गिरि' के जंगल में, झरबेरी, बिल्ब व खैर खड़े।
हिंस्रक–पशुओं की गर्जन से, तन–मन में भय–संताप बढ़े।।
गंगा का तट निर्मल–पावन, 'चण्डी' की रम्य 'उपत्यका' में।
'गुरुकुल' का शुभ श्री गणेश हुआ १९०२' की पावन वेला में।।
आचार्य महात्मा मुंशीराम, निज पौधे का रक्षण करते।
इस तरह अनेकों वर्षों तक, एक लक्ष्य साधना थे करते।।
अंग्रेजी शासन सत्ता का, भास्कर तब अस्ताचल पर था।
स्वाधीन बनाने भारत को, वीरों का रक्त उदयाचल पर था।।
ऐसे युग में स्वामी जी ने, यह अद्‌भूत ज्योति जलाई थी।
जिससे उद्दीप्त चिरागों ने, एक अनुपम क्रान्ति मचाई थी।।
'आर्य भाषा के माध्यम से, शिक्षा सब गुरुकुल देता था।
'पाश्चात्य–पूर्व' के मिश्रण से, एक 'पूर्ण' स्नातक बनता था।।
जहाँ–जहाँ पर पहुँचे 'अलंकार, इस 'कुल माँ' का यशगान किया।
वेदो की पुण्य पताका ले, निज लक्ष्य सदा संधान किया।।
निर्भय व त्यागी बनने की, शिक्षा गुरुकुल में मिलती थी।
निज–मातृभूमि पर मिटने की, एक क्रान्ति–ज्वाल भी जलती थी।।
नैतिकता और वीरता के भावों का कुल में नर्तन था।
वेदों की शिक्षा से शिक्षित, गुरुकुल माता का कण–कण था।।
उस बीहड़ जंगल में सचमुच, हिंसक पशुओं का डेरा था।
जंगली शूकर व चितों का, दिनरात वहाँ पर फेरा था।।
वह 'सिद्ध–स्रोत' वह 'धर्म–कुण्ड', जंगल चीला का बांस झुण्ड।
गज–यूथों की वह जल क्रीड़ा, अजगर, हिरणों के मस्त झुण्ड।।
वे मात–पिता बनकर सबके, इस कुल को पोषित करते थे।
आचार्य मुंशीराम सदा, इस कुल को पोषित करते थे।।
गंगा तट पर एक 'खंदूआ था, वहाँ पर कुटिया बनवाई थी।
जीवन की समस्त भावनायें, गुरुकुल में सदा समाई थी।।

वह भव्य रूप स्वामी जी का, सबको आकर्षित करता था।
'आजान बाहु' ऊँचा मस्तक, कद वीर पुरुष सा लगता था।।
वह शुभ्र–श्वेत दाढ़ी उनकी, आंखों में प्रेम भरी ज्योती।
होठों से मधु रस टपक रहा, दिल में श्रद्धा का था मोती।।
आचार्य रूप में मुंशीराम, सन्मार्ग सदा बतलाते थे।
तुम धीर बनो, तुम वीर बनो, शिष्यों को उच्च बनाते थे।।
दृढ़ता की भव्य मूर्ति थे, साहस की अमर कहानी थे।
अपने युग के वे सिंह पुरुष, श्रद्धानन्द जग में नामी थे।।

***

गुरुकुल का नाम सुना जिसने, आकर्षित वह हो जाता था।
गुरुकुल में आने को उसका, मन सदा तड़पता रहता था।।
अंग्रेजी शासन सत्ता भी, चिन्तित थी गुरुकुल शिक्षा से।
'अनुदान' नहीं लेता फिर भी चल रहा 'दान' की भिक्षा से।।
'चेम्स फोर्ड' आये गुरुकुल, अभिनन्दन उनका होता है।
अपनत्व भावना देख–देख, दिल उनका गद–गद होता है।।
गुरुकुल के आन्तरिक शासन में 'परिवार–भावना' पलती थी।
सुख–दुःख तो सबका साझा था, नहीं द्वेष भावना पलती थी।।
जातिगत बन्धन से ऊपर, गुरुकुल के वासी रहते थे।
कुल के हित में ही चिन्तन था, चिन्ता से मुक्त सब रहते थे।।
त्यौहार मनाने के ढंग भी, कुछ अपनी तरह निराले थे।
सब कुल वासी से 'कुलवासी' निष्काम कामना वाले थे।।
सब जीवन यापन की वस्तु, गुरुकुल उपलब्ध कराता था।
गुरुकुल का पैसा गुरुकुल में, अपना ही 'चक्र' चलाता था।।

***

देकर गुरुकुल का भार, सभी,
निज 'धर्मपुत्र' के हाथों में।
'बर्मा' की यात्रा करते हैं
धनहेतु गुरुकुल कार्यों में।।

***

फिर रामदेव जी गुरुकुल का, सब भार ग्रहण कर लेते है।
आचार्य बनकर गुरुकुल के, संरक्षण इसका करते है।।
गंगा के पार बसा गुरुकुल, क्या अपनी गुरुता रखता था।
था चमन बना बीहड जंगल, जन–जन को सुरमित करता था।।

अच्छा ही अच्छा था गुरुकुल, नहीं लेश बुराई दिखती थी।
उत्सव पर भारत की जनता, दर्शन हित सदा उमड़ती थी।।
दुनिया दारी से दूर बसे, ब्रह्मचारी अजब–अनोखे थे।
ब्रह्म–बल में बढ़–चढ़ कर वे तो, तन–बल में अजब अनोखे थे।।
कोई धनुष–बाण के खेलों में, कोई योग–साधना में बढ़कर।
कोई भाषण में, कोई विद्या में, थे एक, एक से ही बढ़कर।।
कोई कार रोककर भुजबल से 'ब्रह्म–बल' का रूप दिखाते थे।
वे 'सत्यपाल','महेन्द्र' निडर, चितों से भी भिड़ जाते थे।।
जंजीर तोड़कर छाती पर, भारी पत्थर कुटवाते थे।
लाठी, भाले, तलवार चला, तन–बल के खेल दिखाते थे।।
भरी हुई गाड़ी को भी, दाँतों से खींच डालते थे।
लोहे के मोटें सरियों को, छाती से मोड़ डालते थे।।
उनकी बातों को देख–देख, दर्शक खुशियों में भरते थे।
वे नाम कमाकर गुरुकुल का, यश इसका द्विगुणित करते थे।।
संस्कृत, अंग्रेजी–हिन्दी की, त्रिवेणी कुल में बहती थी।
अद्भूत–अद्भूत वह गुरुकुल था, यहाँ दिव्य भावना रमती थी।।
कहाँ तक हम बात करें इसकी, इस कुल की कथा निराली है।
श्रद्धानन्द स्वामी का गुरुकुल, बस पुण्य रसों की प्याली है।।

***

एक रोज विकट संकट आया, गंगा में भीषण तरंग उठी।
सन् २४ का वह दुर्दिन था, कुल भूमि जल से पूर हुई।।
कच्चे झोंपड़ बह गए सभी, कुछ भवन दीवारें टूट गयी।
'आचार्य–राम' के माथे पर, चिन्ता–चिन्तन की रेख पड़ी।।
उस भव्य भारती मन्दिर के अवशेष आज भी बोल रहे।
थे कभी हमारे दिन स्वर्णिम, कुछ खंडहर अब भी सोच रहे।।
उस विकट समय में गुरुकुल ने, 'मायापुर' में डेरा डाला।
कष्टों को सहकर ही जग में, जीवन बनता है यश वाला।।
फिर वर्तमान इस गुरुकुल का 'शाहपुराधीश'[२] ने न्यास किया।
श्री रामदेव ने दान मांग, इसका फिर से उद्धार किया।।
यों उजडे गुरुकुल में फिर से, एक नूतन जीवन आया था।
ईश्वर की महिमा अद्भूत है, फिर से यह पुष्प खिलाया था।।
थे धर्मवीर, थे अमरवीर, थे कर्मवीर, थे धीर–वीर।
श्रद्धानन्द स्वामी सचमुच ही, थे निर्मल गंगा सम पवित्र नीर।।

नया दौर

उस वीर अमर बलिदानी के,
गुरुकुल का यों उत्थान हुआ।
'सौ वर्षों का इतिहास अमर
जग में इसका सम्मान हुआ।।

***

स्वामी जी ने यह पौधा, अन्तर्भावों से रौपा था।
झंझावातों से बचा इसे, श्री रामदेव ने सींचा था।।
वे नया रूप देकर इसको, स्वर्गिक आनन्द में चले गए।
अपने जीवन के अमूल्य वर्ष, इस कुल को देकर चले गए।।
'आंग्लभाषा' के विश्वप्रसिद्ध, विद्वान् यहाँ जो आते थे।
'आचार्य राम' के आगे वे, फिर नत मस्तक हो जाते थे।।
इतिहास वेत्ता रामदेव', सीधे–सादे भावुक मन के।
तप–त्याग–कर्म के मूर्तरूप, थे धर्मपुत्र श्रद्धानन्द के।।
ऐसे अलबेले रामदेव, 'कन्या गुरुकुल' भी खोल गए।
'द्रोण–स्थली' के धन्य भाग, वे अपनी यादे छोड़ गए।।
उनकी पुत्री 'दमयन्ती' जी वहाँ का संचालन करती है।
वे कुल भावों से ओत–प्रोत, बस मन में व्याकुल रहती है।।
स्वामी जी की इच्छा को वे, इस तरह पूर्ण कर गए वहाँ।
'कन्या गुरुकुल' में कन्यायें, गुरुकुल में बालक पढ़े यहाँ।।

***

श्री 'इन्द्र', विश्वम्भर नाथ' इसे, अपना संरक्षण देते है।
कभी 'नन्दलाल' जी सहायक बन, प्रबन्ध कुशलता लाते है।।
गुरुकुल नगरी में जल की भी, समुचित प्रबन्ध व्यवस्था हो।
'रतनी देवी' जी धन्य–धन्य, देवी हो तो तुम जैसी हो।।
श्री पन्नालाल जी रस्तोगी, अनुपम यज्ञशाला बना गए।
सप्रेम दान देकर कितने, गुरुकुल की आयु बढ़ा गए।।
'बिरला जी' जैसे दानवीर, यहाँ 'मन्दिर–वेद' बनाते हैं।
श्री दीवान चन्द व लब्भूराम, गुरुकुल हित दान जुटाते हैं।।
कुछ लोग यहाँ ऐसे होते, चुप–चाप काम कर जाते हैं।
अम्बाला शहर के गुप्त दानी, सडसठ हजार' दे जाते हैं।।
'हल्दौर' निवासी भवानी प्रसाद, बिन वेतन यहाँ पढ़ाते है।
अपना भवानी प्रसाद संग्रह, गुरुकुल को ही दे जाते है।।

'झण्डामल जी' का झण्डा तो, अब भी दफ्तर पर गड़ा हुआ।
'टेकचन्द नागिया' आश्रम का, जीवन स्मृतियों में गुंथा हुआ।।
कनखल वासी श्री मुसद्दीलाल व जानकी दास भी अमर हुए।
'चौधरी परिवार' के वंशज सब, गुरुकुल के हित में लगे हुए।।
श्री अभयदेव जी, सत्यव्रत जी, सेवा वर्षों तक करते हैं।
श्री धर्मपाल[3] जी निज मन से, इसका संरक्षण करते है।।
श्री देशबन्धु, श्री धर्मदत्त, दिन रात व्यस्त यहाँ रहते हैं।
श्री इन्द्र जेटली गुरुकुल में, वनस्पति उद्यान बनाते हैं।।
श्री ठाकुर दत्त 'अमृतधारा', यहाँ शल्य–भवन बनवाते हैं।
श्री चन्द्रकांत व चमूपति, गुरुकुल का गौरव गाते है।।
श्री बुद्धदेव व धर्मदेव, विद्या के प्रखर पुरोधा थे।
वे अलंकार थे इस कुल के, वक्तृत्य कला के योद्धा थे।।
किस–किस के नाम गिनाये हम, किन शब्दों से सत्कार करें।
श्री जगन्नाथ जी पिता तुल्य, छात्रों से यों व्यवहार करे।।
'श्री रामेशवेदी' मुद्रक बनकर, उद्धार प्रेस का करते हैं।
फिर वनस्पतियों पर नयी–नयी, ग्रन्थमाला भी रचते है।।
फोटो–ग्राफी, जंगल भ्रमण, उनके कुछ शौक निराले थे।
आयुर्वेद में म्यूजियम की वे नीव डालने वाले थे।।
श्री चम्पतस्वरूप, श्री फकीर चन्द, थे ज्ञान–विज्ञान के भण्डारे।
श्री बेलीराम व सुन्दर लाल, डाक्टर गुरुकुल के थे न्यारे।।
श्री निरञ्जनदेव 'प्रियहंस' बनकर, गुरुकुल का यश फैलाते है।
वे 'कुल की पुण्य पताका पर, एक गीत अमर लिख जाते है।।
खेलों में भी गुरुकुल ने यों, स्वर्णिम इतिहास रचाया था।
हॉकी की स्पर्द्धा में गुरुकुल, नहीं कभी हारकर आया था।।
'रामपुर नरेश' तो खुश होकर, हॉकी–ग्राउण्ड बनवाते हैं।
वे दिव्यभाव कहाँ लुप्त हुए, अब मन भरमाये जाते है।।
श्री अनन्तानन्द व पुरुषोत्तम, खेलों का भार उठाते थे।
'श्रद्धानन्द हॉकी टूर्नामेंट' यहाँ, गुरुकुल की शान बढ़ाते थे।।
श्री मुकन्दलाल व मोखासिंह, चन्द्रकेतु, अर्जुनदेव यहाँ।
श्री अजब सिंह अधिष्ठाता भी, सब छोड़ गए निज याद यहाँ।।
श्री वासुदेव व विष्णुदत्त, अब ढूंढे ना मिल पायेंगे।
ऐसे सच्चे त्यागी गुरुवर, बस यादों में रह जायेंगे।।

कुल के ब्रह्मचारी निडर बने, ये भाव सभी के होते थे।
'तैराकी' के भी खेल यहाँ, मोती घाट पर होते थे।।
इस तरह अनेकों लोगों ने, गुरुकुल हित जीवन दान दिया।
कोई माने या ना माने, इस 'कुल' पर जीवन वार दिया।।
'प्रियव्रत' पालित यह गुरुकुल तो, स्वर्णिम आभा प्रकटाता था।
था स्वर्ग-तुल्य गुरुकुल जीवन, आने वाला सुख पाता था।।
'दीक्षान्त' हमारे गुरुकुल की, गरिमा के द्योतक होते थे।
सुनकर उपदेश आचार्य का, स्नातक मन ही मन रोते थे।।
श्री अमर नाथ सपूजी तो, मन-धन दोनों ही देते हैं।
इस तरह अनेकों लोग यहाँ, निज जीवन अर्पित करते है।।
श्री दीनदयालु, हरिप्रकाश, नहीं कभी भुलाये जायेंगे।
इस गुरुकुल की माटी चन्दन, क्या इसे भुला हम पायेंगे।।
श्री विश्वनाथ, सत्यपाल यहाँ, इसका वर्चस्व बढ़ाते है।
श्री वागीश्वर, श्री रामनाथ, 'सुखदेव' देव-सम भाते है।।
श्री गोवर्द्धन बलभद्र पुनः, वेदों की ध्वनि गुंजाते हैं।
देवत्व-भावना जागृत हो, सब में विश्वास जगाते है।।
'रघूवीर शास्त्री' शिक्षाविद, एक नयी प्रेरणा लाते है।
'इन्दिरा गांधी'को गुरुकुल के, दर्शन भी वे करवाते है।।
उस उथल-पुथल के युग में भी, गुरुकुल नहीं डावांडोल हुआ।
कभी 'महेन्द्र प्रताप' श्री गंगाराम, 'अग्नि' व 'इन्द्र' का जोर हुआ।।
फिर सत्यकाम, सत्यकेतु, सुभाष, इसका संरक्षण करते हैं।
श्री 'सूर्यदेव' श्री महावीर सिंह, कुलाधिपति विजिटर बनते है।।
श्री शेर सिंह परिद्रष्टा भी, सचमुच द्रष्टा थे इस कुल के।
उत्थान-पतन सब देखे है, उनकी आँखों ने इस कुल के।।
वे राजनीति में रहे कभी, शिक्षा मन्त्री भी कहलाये।
'आर्य-सिख' का मंच बना, एक नयी भावना ले आये।।
दुर्दिन भी आते है जग में, सुख दिन भी धूम मचा जाते है।
संस्था के जीवन में भी तो, उत्थान-पतन आते-जाते।।
इतिहास बनाते हम खुद थे, अपनी धारा पर चलते थे।
बड़े-बड़े नेता भी यहाँ, 'कुल' के नियमों पर चलते थे।।
अब वर्तमान इस गुरुकुल में, सब नया-नया सा दिखता है।
इसके संचालन के हेतु, अनुदान 'करोडो' मिलता है।।

है समय—समय की बातें सब, यह समय बड़ा कातिल होता।
कभी हँसता है मानव मन तो, कभी किसी बात से है रोता।।
अब नूतन युग के साथ—साथ, परिवर्द्धन कुल में आया था।
श्री धर्मपाल कुलपति बने, एक नूतन मौसम आया था।।
आर्य—भावना रग—रग में, उनके अनुप्राणित होती थी।
माधुर्य—ओज से भरी वाक्, सबका ही मन मोह लेती थी।।
संकाय खोलकर नये—नये, वे इसका रूप निखार गए।
निज सेवाकाल की अवधि में, अन्तिम दायित्व हार गए।।
बस एक काम ने उनके सब, कार्यों पर पानी फेर दिया।
'भूमि—विक्रय' का घोटाला, उनको लेकर के डूब गया।।
करने वालों को इस जग में, सुनना सहना भी पड़ता है।
जो कर जाता है नेक कर्म, वह जीवन ऊँचा करता है।।
अपने—अपने मतलब सबके, अपने मतलब में जीते है।
कुछ भरे हुए 'कुल भावों' से, कुछ भावहीन व रीते है।।
श्री हरवंश लाल शर्मा देखो, अब नये कुलाधिपति बनते हैं।
आशा और विश्वास लिए, कुलवासी बन्दन करते है।।
जीवन उनका सीधा—सादा, वे भामाशाह कहलाते हैं।
पञ्जाब सभा के बन प्रधान, उसका वर्चस्व बढ़ाते है।।
'श्री वेदप्रकाश' कुलपति बनकर, संस्था की नैय्या खेते हैं।
संस्कृत—भाषण के देने में, अधिकार गज़ब का रखते हैं।।
श्री महावीर कुलसचिव बने, संचालन संस्था का करते।
सीधे—सादे, मृदुभाषी है, कुल—भावों से प्रेरित रहते।।

***

यह विश्व प्रसिद्ध संस्था देखो,
अनुदान—दान से चलती है।
यह तपस्त्याग की कर्मस्थली
अब भी आकर्षित करती है।।

***

वन्य झाड—झखाड़ संकुलम्, गुरुकुल के मैदान यहाँ।
आम्र—जम्बू फल के वृक्षो से, टपक रहा रसराज यहाँ।।
यह हरा—भरा सा कुल आंगन, पादप पुञ्जों से शोभित है।
यहाँ के कण—कण की शोभा पर, मानों स्रष्टा भी मोहित है।।
यहाँ ब्रह्म—यज्ञ की स्वर लहरी, यों गूंज रही कुल आंगन में।
और यज्ञ—धूम की पवित्र गंध, भी फैल रही गगनांगन में।।

नन्हे बटुकों की दिनचर्या, अद्भुत आकर्षण खींच रही।
गुरुजन की पावन शिक्षा भी, ऊचे चित्र ही खींच रही।।
हरी—भरी हर लता बल्लरी, झूम—झूम वन्दन करती।
शिशिर, हेमन्त ऋतु बसन्त सब कुल—माँ का बन्दन करती।।
ग्रीष्म—ऋतु में अमल तास के, पीत—पुष्प सिंगार कर रहे।
मंद—मंद मीठी सुगंध से, जीवन का सञ्चार कर रहे।।
नन्हे—नन्हे बालक कुल में, जीवन का निर्माण कर रहे।
गुरुजन सेवित शिक्षा से वें, निज—जीवन का उत्थान कर रहे।।

***

नित्य सुबह और शाम देख लो,
पक्षी भी बन्दन करते।
'अमन—चौक' पर चहक—चहक कर
'कुल—माँ' का वन्दन करते।।
'श्रद्धा के अमर पुजारी' के
जीवन की यह झाँकी पढ़ लें।
यह गुरुकुल उनका स्मृति चिह्न।
'सौ वर्षों' को वन्दन कर लें।।
हम उनके पथ को भूले तो,
फिर लक्ष्य नहीं मिल पायेगा।
गुरुकुल की मूल भावना को
यह कुटिल काल डस जायेगा।।
वें देश रत्न, वे राष्ट्र रत्न,
उनका जीवन अद्भुत ललाम्।
भारत के स्वर्णिम पृष्ठों पर
अंकित 'श्रद्धा' का अमर नाम।।

महावीर 'नीर' विद्यालंकार
कार्य. मुख्याध्यापक
विद्यालय-विभाग
गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार

संकेत –

१. ४ मार्च १९०२ को कांगड़ी में गुरुकुल की स्थापना हुई।

२. शहापुराधीश राव राजा नाहर सिंह जी वर्मा (२७ चैत्र १९८४ वि.)

३. श्री धर्मपाल विद्यालंकार, भू.पू.सहा. मुख्याधिष्ठाता

पुण्यभूमि की दो रोमांचकारी सत्य घटनाएं

यह घटना आज से लगभग ६०—६५ वर्ष पुरानी है। मैं गुरुकुल छोड़कर अपने घर क्वेटा (बिलोचिस्तान) जा चुका था। वाराणसी में विद्याध्ययन करने के लिए यात्रा प्रारम्भ की। विचार किया कि मार्ग में गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में अपने ज्येष्ठ भ्राता सत्यपाल जो कॉलेज के तृतीय वर्ष में पढ़ रहे थे, मिलता चलूँ। पैदल ही कुलभूमि में गंगापार पहुँचा। उस समय गुरुकुल परिसर में एक विचित्र हलचल मची हुई थी।

इससे पूर्व कि उस हलचल का वर्णन करूँ जिसका कि मैं चश्मदीद गवाह हूँ। एक दूसरी रोमांचकारी घटना का वर्णन करना चाहूँगा। यद्यपि यह घटना मेरे सम्मुख नहीं हुई थी परन्तु जिन सज्जनों ने आँखों से देखी उनके मुख से तथा भुक्तभोगी निर्भीक और महासाहसी ब्र. महेन्द्र प्रताप तथा अपने ज्येष्ठ भ्राता सत्यपाल से सुनी थी। वही लिख रहा हूँ।

सर्दियों के दिन थे। सायंकाल चार बजे हॉकी का खेल प्रारम्भ हुआ। लगभग ४०—४५ ब्र० दो मैदानों में पृथक्—पृथक् हाकी का खेल खेल रहे थे। इस समय प्रोत्साहन के लिए अधिकारी वर्ग तथा समस्त उपाध्याय वृन्द, अधिष्ठाता और अध्यापक मैदान में उपस्थित रहते थे। क्योंकि उस समय गुरुकुल सच्चे अर्थों में गुरु का कुल ही था। हाँ, तो खेल चरम सीमा पर था। स्वनाम धन्य स्वामी श्रद्धानन्द जी व आचार्य रामदेव जी भी उपस्थित थे। सूर्यास्त होना ही चाहता था—भगवान् भास्कर अपनी किरणों को भी समेट चुके थे। एक लाल सोने के थाल के समान अब विलीन होना ही चाह रहे थे। ५ बजे से कुछ ऊपर का समय हो चला था। पास ही गेहूँ का एक विशाल खेत था। उसमें गेहूँ के पौधे लगभग १ फुट ऊँचे खड़े थे। पास ही एक छोटे से टीले के किनारे गेहूँ के खेत में ही एक बड़ी नस्ल का नर चीता मीठी धूप का आनन्द लेता हुआ आँखें बन्द कर लेटा हुआ था। एक टीम की गेंद खेत के अन्दर चली गयी। चीते की उपस्थिति का किसी भी व्यक्ति को आभास मात्र भी न था। आऊट की सीटी बजी फारवर्ड लाइन के राईट आऊट साईड खिलाड़ी ब्र० महेन्द्र प्रताप गेंद लेने खेत की ओर लपके और ज्यों ही गेंद उठाने को एक कदम आगे बढ़ाया कि लेटे हुए शेर के मुँह पर दाया पैर जा पड़ा। अर्ध सुप्त अवस्था में पड़े शेर ने विश्राम में खलल डालने वाले पाँव को मुख में ही दबोच लिया। बलपूर्वक दाँत भी गड़ा दिए। चाहा कि जबड़ो से उसे चबाकर विघ्न डालने वाले अपराधी को फाड खाऊँ और रक्तपान करूँ। बार—बार उछलने की कोशिश की, पर प्रत्युत्पन्नमति और सूझ—बूझ के

धनी बलिष्ठ तथा हृष्ट–पुष्ट शरीर वाले ब्र. महेन्द्र प्रताप ने उसी समय अपने पाँव को ऐसा गाड़ दिया और उठने का प्रयत्न करते हुए, शेर के पञ्जों पर हॉकी के प्रहार निरन्तर करते हुए शेर! शेर! का शोर मचा दिया। शोर सुनते ही चारों हॉकी–दल के ब्रह्मचारी घटना–स्थल की ओर लपके। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सैकडों वानर–यूथ लंका पर धावा बोलने जा रहे है। "महेन्द्र घबराना नहीं हम पहुँच रहे हैं" का घोष करते हुए बढ़े जा रहे थे। इधर महेन्द्र प्रताप भी पैर को अंगद के समान पृथ्वी पर जमाये हुए स्थिर चित्त से शेर के पञ्जों तथा शरीर पर हॉकी के प्रहार करता रहा। जब तक ब्रह्मचारी वहाँ पहुँचे तब तक अकेले ही महेन्द्र ने शेर को एक इञ्च भी हिलने–डूलने नहीं दिया। उसे भूमि पर ही लिटाए रखा। पाठक वृन्द ! विचारिये? ऐसे भयंकर बड़े साईज के खूंखार चीते पर अकेला महेन्द्र प्रताप धैर्यपूर्वक हावी रहा, क्या कम साहस की बात है? आते ही लगभग ४०–४५ हॉकियों के प्रहार से शेर के शरीर के छिछड़े–छिछड़े हो गये बोटी–बोटी कटकर छिन्न–भिन्न हो गयी। एक भी अंग साबुत न बचा। शेर के मुख से पैर बाहर निकाल कर महेन्द्र सहित जब विजयी दल कुलपति का आशीर्वाद लेने मैदान के किनारे पर पहुँचा और आचार्य जी के सबने चरण स्पर्श किए उस समय स्वामी श्रद्धानन्द आचार्य की आंखों में प्रेमाश्रु थे। रूंधे हुए गले से महेन्द्र को गले लगाकर शत–शत आशीर्वादों की वर्षा करते हुए बोले ब्रह्मचारियों की इस निर्भीकता को देखकर मेरा हृदय गद्–गद् और प्रसन्न हुआ। तुम सबकी निर्भीकता और बहादुरी की आज परीक्षा हो गयी, शाबाश! इसी प्रकार अपने भविष्य जीवन में भी सदा साहसी, निर्भीक तथा आत्मविश्वास से युक्त, संसार के कार्य क्षेत्र में उतरना प्रत्येक काम में सफलता तुम्हारे हाथ लगेगी। मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेंगे। अनेक प्रकार के उपचारों के बाद भी ब्र. महेन्द्र का पैर सूज गया। अन्य कोई उपाय न देखकर डा. सुखदेवजी ने सहारनपुर के डी.एम. से दो रेलवे पास मंगाकर शिमला के निकट कसौली दवाखाने में भेजा क्योंकि पागल कुत्ते के काटे के इलाज के इंजेक्शन भारत भर में उस समय केवल सोलन दवाखाने में ही होते थे। समस्त भारत, लंका तथा बर्मा से ऐसे रोगी सरकारी व्यय से वहीं भेजे जाते थे। इस प्रकार कई मास में ब्र. महेन्द्र जब गुरुकुल लौटा तो उसका भव्य समारोह के साथ स्वागत किया गया। और उसे **"अंगद कुमार"** की उपाधि से विभूषित किया गया।

पुण्य–भूमि की द्वितीय घटना– बात यह थी कि इधर विजय दशमी पर्व में ३–४ दिन ही शेष थे। इधर एक शेर दम्पति (बड़ी नस्ल के पैंथर चीते के जोड़े) ने आस–पास के दूर–दराज तक बसे बीसियों गांवों में उपद्रव मचा रखा था। रात्रि में अचानक आक्रमण कर किसानों के पालतू पशु–गाय–बैल–भैंस–बकरी जो हाथ लगे मारकर खा जाते थे। इधर गुरुकुल परिसर में भी रात्रि में कई चक्कर लगा चुके थे। ग्रामीण जनता तो अत्यन्त भयभीत थी परन्तु गुरुकुल के बड़े ब्रह्मचारी उत्साह में भरे २४ घंटे हाकियाँ बगल में दबाए फिरा करते थे। यहाँ तक कि विद्यालय

के समय में भी डेक्सों के आगे हाकियाँ साथ ही रखते। खेल के समय तो हाकियाँ हाथों में रहती ही थी। रात्रि के समय निकटस्थ घने जंगलों में पेड़ों पर मचान बांधकर, घने झाड़–झंकारों में छिपकर बैठें–बैठे शेर दम्पति की प्रतीक्षा करते रहते। इस प्रकार कई रातें व दिन व्यतीत हो गये। इतने में 'विजय–दशमी' का पर्व आ पहुँचा। उसे बड़े उल्लास और उत्साह के साथ मनाया गया। यह पर्व तो वीर रस पूर्ण क्षत्रियों का पर्व होता है। इसमें राम–रावण युद्ध, सीता–खोज, प्रीतिभोज व सभा के साथ सम्पन्न हुआ। मैं (चन्द्रकेतु) भी यात्रा स्थगित कर १०–१५ दिन के लिए शेर के शिकार का परिणाम देखने के लिए रूक गया और कॉलेज विभाग के आश्रमाध्यक्ष प्रो० सत्यव्रत जी की आज्ञा प्राप्त कर आश्रम में ही ठहर गया।

विजय–दशमी पर्व के समाप्त होते ही दीपमालापर्व की तैय्यारियां जोश–खरोश के साथ प्रारम्भ हो गयी। तैय्यारियों में स्वयं अपने हाथों से सब प्रकार के बारूद बनाकर आतिशबाजी, अनार, फुल्झड़ी, पटाखे, छोटी साईज के गोले तथा बड़े बमगोले बनाने प्रारम्भ हो गए।

अनेक दिनों की प्रतीक्षा के बाद शेर के सान्मुख्य का दिन भी आ पहुँचा। बात यह हुई कि एक रात्रि के अन्तिम प्रहर में शेर दम्पति गंगा के खादिर जंगलों से निकल कर गुरुकुल परिसर से गुजर रहा था। मादा तो गंगा की धार को पार कर कांगड़ी ग्राम होती हुई पर्वतीय घने जंगलों में अपने निवास की ओर चली गयी। परन्तु नर किसी शिकार की तलाश में गुरुकुल के बाग में ही घूमता रहा। इतने में कार्यालय के चौकीदार ने प्रात:काल के समय ४ बजे का घंटा बजाया। समस्त कुलवासी जागकर अपने–अपने दैनिक नित्यकर्मों में प्रवृत्त हो गए।

हलचल व शोर शराबे से शेर घबरा गया और किंकर्तव्यविमूढ़ सा हो गया। तत्काल संतरे व नींबू के बाग की बाड़ में जा दुबका। सोचता था दिन व्यतीत होगा, सूर्यास्त के बाद रात होगी तो आगे की यात्रा करूँगा। परन्तु गुरुकुल वासी इससे सर्वथा बेखबर थे। सब दिनों के समान सब ब्रह्मचारी शौच, स्नान, व्यायाम, संध्यावंदन, प्रातराशादि से निवृत्त होकर विद्यालय जा पहुँचे। इसी प्रकार मध्याह्न में २ बजे पुन: विद्यालय जा पहुँचे। तब ९म कक्षा का एक छात्र ब्र.धर्मेन्द्र कुमार लघुशंका के बहाने बाग में जा घुसा और बहुत ऊँचे घास में बैठकर शनै:–शनै: सरकता हुआ बाड़ के पास एक नींबू तोड़ने लगा। घुणाक्षर न्याय से यह वही स्थान था जहाँ प्रात:काल शेर जा दुबका था और निद्रा में मग्न था। उसका हाथ शेर के शरीर से छू गया। ऊँघते हुए शेर ने भी साधारण घटना समझकर लेटे–लेटे ही ब्रह्मचारी के हाथ पर पंजा मारा। खरोच से पीड़ित ब्र. धर्मेन्द्र ने घास से बाहर छलांग लगायी और ऊँची आवाज में शोर मचा दिया शेर! शेर!! शेर!!! फिर क्या था समस्त कुलवासी हरकत में आ गए। तुरन्त ही योजना के अनुसार कार्यालय, विद्यालय, आश्रम तथा भण्डार के घन्टे बजने लगे। विद्यालय समाप्त हो गया। सब बड़े–छोटे

ब्रह्मचारी हाकियाँ, लाठियाँ या जो कुछ भी हाथ लगा लेकर घटना–स्थल की ओर दौड़ पड़े। घटना–स्थल पर पहुँचने में कुलवासियों को ४–५ मिनट लग ही गए क्योंकि बाग बहुत घनी मोटी बाड़ से घिरा था। मुख्य द्वार से होकर घटना–स्थल पर तुरन्त पहुँचना असम्भव था।

पर, इसके आगे की अत्यन्त रोमांचकारी घटना हो ही गयी–यह कि ब्र. ईश्वर दत्त ३य वर्ष का विद्यार्थी बाग के अन्दर खुली सड़क पर छ:माही परीक्षा की तैयारी कर रहा था, शोर सुनते ही पुस्तक को जमीन पर पटक कर बगल में दबी हाकी को सम्भाल कर घटना–स्थल की ओर दौड़ पड़ा जो उससे लगभग १०० गज दूर थी घास को चीरता–फाड़ता मार्ग बनाता हुआ घटना स्थल पर पहुँचकर अंधाधुंद ही हाकी से प्रहार करने लगा विक्षुब्ध शेर ने विवश होकर एक ही छलांग गरज के मारी। शेर के धक्के से ईश्वर दत्त जमीन पर चारों खाने चित्त जा गिरा और हाथ की हॉकी भी छूट गयी। पाठक वृन्द! जरा उस क्षण के दृश्य पर विचार कीजिए। छाती पर चढ़ा शेर चाहता था कि अपने शिकार का गला दबोचकर फाड दूँ और रक्तपान करूँ। परन्तु यह क्या तत्क्षण ही शेर की पीठ पर दाएं किनारे से एक भयंकर वेगवान् हाकी का प्रहार हुआ–घटना इस प्रकार हुई कि दूर बाग की पगडण्डी पर टहलते हुए दूसरे ब्रह्मचारी सत्यपाल ने शोर सुनकर पुस्तक फेंककर और हाकी सम्भाल कर–दौड़कर–घटना–स्थल पर पहुँचकर धर्मेन्द्र का गला शेर दबोचे इससे पूर्व ही एक भरपूर वेगवान प्रहार किया। शेर भी इस अप्रत्याशित हमले से तिल मिला उठा। अपने शिकार को ज्यों का त्यों छोड़कर गरज के साथ उछला और सत्यपाल पर झपटा। पिछले दोनों पैरों पर खड़ा हो अगले दोनों पंजे सत्यपाल के सिर पर गाड़ दिये। सत्यपाल ने भी होश न खोकर बड़ी बहादुरी से हॉकी का भरपूर प्रहार शेर के सिर पर किया, हॉकी उछलकर दूर जा गिरी। अब विचित्र तथा रोमांचकारी दृश्य था। देखिए, दो पहलवानों की कुश्ती हो गयी। सत्यपाल निहत्था था। शेर के तेज पंजों की खरोंच ने सिर से लेकर पैरों तक के मांस को नोच दिया, रक्त की धार बह चली। उस पर भी सत्यपाल ने होश न खोए और अपना सिर शेर की ठोड़ी से सटा दिया, क्योंकि सत्यपाल ठिगने कद के गठीले शरीर वाले थे। अत: लाचार शेर सत्यपाल की गर्दन न दबोच सका। सत्यपाल ने शेर की कमर में दोनों हाथ डालकर उसकी छाती से अपनी छाती सटा दी। साथ ही अपनी दाई टाँग से शेर को ऐसी अडंगी लगाई कि दोनों जमीन पर जा गिरे और आपस में सटे–हुए ही लोट–पोट हो गए। पर शेर की कमर की पकड न छोड़ी और भी दृढ़ता से पकड़ को मजबूती से कसे रखा। अब शेर लाचार था, क्योंकि दोनों वीरों की छातिया इतनी चिपकी हुई थी कि शेर पंजे तथा दांतों से वार करने में असमर्थ सा हो गया। परन्तु दोनों ही पहलवान एक दूसरे पर हावी होने के लिए सतत् प्रयत्नशील थे। दोनों ने जोर लगाया, चार–पाँच गुलाटें ऊपर–नीचे खाई। पर सत्यपाल ने होश–हवाश न खोते हुए शेर की कमर की पकड़ और मजबूती से जकड़े रखी। यह समझिए कि दो पहलवान परस्पर आलिंगन किए हुए जमीन पर ही लोट–पोट होते

हुए गुलाटें खा रहे थे।

इस शोर को सुनकर, बाड़ के परले पार कॉलेज के आश्रम में बैठे सिद्ध हस्त पहलवान महेन्द्र प्रताप जो बारूद से दिवाली के लिए आतिशबाजी बना रहा था और मैं उसके पास बैठा पटाखे बनाने की क्रिया को ध्यान पूर्वक देख रहा था। महेन्द्र प्रताप ने अपना काम छोड़कर खिड़की के चार सूत वाले दो सरियों को आसानी से खींचकर मोड़ दिया और उसी मार्ग से बाहर निकलकर हाथ में एक मजबूत लाठी लेकर क्योंकि २४ घंटे वह हाथ मे लाठी ही रखता था, लाठी के सहारे ही हाई जम्प लगाकर छः फुट ऊँची ४ फुट चौडी बाड़ को आसानी से कूदकर सबसे प्रथम घटना—स्थल पर जा पहुँचा। और अंधाधुंध लाठियों का प्रहार शेर पर कर दिया। अब सत्यपाल की पकड़ ढीली हो चुकी थी। शेर महेन्द्र पर उछले इतने में गुरुकुल कार्यालय के मुख्यद्वार से होते हुए राम जी की वानर सेना के समान बड़े ब्रह्मचारियों का दल आ पहुँचा। शेर सत्यपाल की पकड से छूटकर महेन्द्र पर झपटे इससे पहले ही पचासों हाकियों के प्रहार से घबराकर शेर पुनः घनी बाड के अन्दर घुस गया और अदृश्य हो गया। जख्मी और बेहाल सत्यपाल जिसके धोती कुर्ते के चीथड़े—चीथड़े हो चुके थे, ईश्वर दत्त तथा धर्मेन्द्र के साथ एक सहायता दल ने चिकित्सालय में पहुँचाया। नयी धोती कुर्ता पहनाया गया। मरहम पट्टी भी की गयी। डाक्टर सुखदेव जी ने आदेश दिया कि आप सब यहाँ विश्राम करें। हिले—डूले नहीं। आदेश देकर सम्पूर्ण सहायता दल भी घटना—स्थल की ओर चल पड़ा पर यह क्या? डाक्टर सुखदेव जी घटना स्थल पर पहुँचते ही दंग रह गए। उन्होने देखा कि तीनों ही जख्मी हम से भी पहले घटना—स्थल पर खड़े हैं। हाथ में पूर्ववत हाकियाँ लिए शिकार की तलाश में तत्पर हैं और चिल्ला—चिल्ला कर कह रहे थे कि शेर कहाँ है? सबसे अधिक जख्मी सत्यपाल से बार—बार आग्रह किया गया कि जाकर बिस्तरे पर आराम करे कहीं जख्म में सेफ्टिक न हो जाए। परन्तु वह निर्भीक बहादुर यही उत्तर देता रहा कि जब तक शेर को मार नहीं लूँगा तब तक बिस्तरे पर कैसे विश्राम कर सकता हूँ। किसी के चेहरे पर भय का आभास मात्र भी न था। इस दृश्य को देखकर पास ही खड़े प्रो० लालचन्द जी व प्रो० नन्दलाल जी चिल्ला उठे—शाबाश सत्यपाल तूने आज स्वामी श्रद्धानन्द जी के निर्भीकता के पढ़ाए पाठ को क्रियात्मक कर दिखाया। तू श्रद्धानन्द जी का प्यारा शिष्य है। पाठक वृन्द! अब आप स्थिति का जायजा कीजिए—मैं भी (चन्द्रकेतु) दूरस्थ कुएं के पास बाग के मुख्य द्वार से होता हुआ दर्शकों में घटना को स्तब्ध सा खड़ा आश्चर्य चकित देख रहा था। सत्यपाल व ईश्वर दत्त में यत् किश्चिद मात्र भी भय का संचार न था, गौर वर्ण, चमकता हुआ लाल चेहरा वीर रस से भरपूर दमक रहा था।

एक तरफ घनी झाड़ियों वाली बाड़ थी। अतः तीन तरफ से घेरा डालकर बड़े ब्रह्मचारी तथा स्नातक महानन्द जी इत्यादि समस्त अधिकारी अगले कार्यक्रम की रूपरेखा पर विचार

विमर्श कर ही रहे थे कि अगला कदम क्या और किस प्रकार उठाना चाहिए कि कोई दुर्घटना भी न हो और शेर भी सरलता से मारा जाए। इधर दिन भी ढल चला था। अगला दृश्य मैंने अपनी आखों से देखा और विश्वास न कर सका। पुन: गौर से देखा कि नन्हे नन्हे शिशु बालक वे सब प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय कक्षा के बच्चे थे—पचासों बालक जिनकी आयु ६ वर्ष से ८ वर्ष के अन्दर की थी, आश्रम में सुरक्षा की दृष्टि से रोक रखे थे, भागते चले आ रहे है। हाथों में पतली—पतली छड़ियां लिए भीड़ में घुसकर सबसे आगे आ खड़े हुए। चिल्ला—चिलाकर कह रहे थे—भाई जी को जिस शेर ने घायल किया है वह कहाँ छिपा है। हम उसे इन छड़ियों से मार गिराएंगे। अब अधिकारी वर्ग के सम्मुख एक और समस्या आ खड़ी हुई। एक ओर शेर पर काबू पाना तो दूसरी तरफ ६०—७० छोटे बच्चों की सुरक्षा, कुछ बड़े ब्रह्मचारियों ने प्यार पुचकार कर डरा धमकाकर तथा डाँट डपट कर और भय दिखाकर बालगोपालों की भीड़ को खदेड़ने का प्रयास किया पर सब निष्फल। वे बड़े भाइयों से भी अधिक जोश—खरोश से दाएं—बाएं होकर भीड़ की टांगों में से निकल कर सबसे प्रथम पंक्ति में जा खड़े होते थे। और चिल्लाकर कहते कि — कहाँ छिपा है शेर! हम अभी मारकर बाड़ में से निकाल ले जाएंगे। मैं समीप ही खड़ा—खड़ा यह दृश्य देख रहा था। उन निष्पाप अबोध बालकों की चेष्टा देखकर मैं नत—मस्तक हो परम तपस्वी श्रद्धानन्द को प्रणाम करने लगा। मन ही मन कह रहा था, वाह रे महात्मा! इतने निर्भीक ब्रह्मचारी बटु—बालक, इस निर्जन घने जंगल में रखना तेरा ही काम था। यह कठिन काम दूसरा कौन कर पाता। बालकों को वहां से किसी प्रकार भी हटाया न जा सका।

वहां विद्यालय के बड़े ब्रह्मचारियों को बच्चों की रक्षा के लिए सतर्क कर यह निश्चय हुआ कि— क्योंकि सूर्यास्त में थोड़ा ही समय रहता है अत: सूर्यास्त से पूर्व ही शेर पर काबू पा लेना चाहिए। तथा गुरुकुल के व्यायाम शिक्षक सरदार जी— जो उत्तम शिकारी व मिलट्री से रिटायर सूबेदार—मेजर भी थे, उनको बुलाया गया। समस्त वातावरण को देखकर आपने कहा— आप सब निश्चिन्त और सतर्क होकर खड़े रहें। यह हिंसक जन्तु हम सब से डर रहा है और हम सब इससे भयभीत हैं। शेर का तो ध्येय एक मात्र यह है कि मैं इस घेरे से किस प्रकार पार होकर घने जंगल में समा जाऊँ और अपनी जान बचाऊँ। परन्तु सूर्यास्त होते ही अंधकार का लाभ उठाकर यह हम पर हावी भी हो सकता है। दो लम्बे बांस बांधकर एक लम्बा बांस बनाया गया। सरदार जी अपनी बन्दूक में गोलियाँ भरकर आकाश की ओर निशाना साधकर बैठ गए। लम्बे बांस से शेर को छेड़ा गया। सरदार जी का विचार था कि जब शेर छलांग लगाकर उछलेगा तो निशाना साधकर उसे ढेर कर दिया जाएगा। लम्बे बांस से बाड़ में शेर को छेड़ा गया। लाचार शेर गरजता हुआ बाड़ से बाहर निकला और दो चार कदम पीछे हटकर लगभग १८—२० फुट ऊँचा कूदा और भीड़ पार करने का यत्न किया, त्यों ही सरदार जी की गोली आसमान में ही उसकी छाती

पर लगी आहत और भीड़ के घेरे में ही गिर गया और लड़खडाता हुआ पूँछ लटकाए हुए पुन: घनी झाड़ी में बाड़ के अन्दर समा गया। छोटे—छोटे बच्चे मैं पहले, मैं पहलें कहते हुए उस ओर लपके जहाँ शेर जा छुपा था। परन्तु सरदार जी के आदेश से सब बच्चों को वहीं रोक दिया गया। उस समय सरदार जी ने सबको सम्बोधित करते हुए ऊँचे स्वर से बताया यह सिंह नहीं है। चीता (चित्रक) है। यह अत्यन्त वेगवान्, साहसी तथा चालाक और धोखेबाज, अत्यन्त खतरनाक जानवर होता है। इसकी झड़प व दौड़ बाघ से कहीं अधिक होती है। यद्यपि मुझें पूरी उम्मीद है कि मेरी गोली इसके हृदय को बेध गयी है और निश्चित मृत्यु हो गयी है। फिर भी यदि वह जख्मी होकर जीवित होगा तो अत्यन्त खतरनाक होगा। क्योंकि उस अवस्था में अपने को मृतवत् दिखाकर शिकारी की प्रतीक्षा में रहता है। शिकारी के समीप आते ही घातक आक्रमण कर बैठता है। अत: मुझे परीक्षा कर लेने दो कि यह वास्तव में मृत है कि जीवित। प्रथम बांस से बाड़ में छेड़खानी की गयी कोई हरकत न हुई तब सरदार जी बन्दूक लेकर घास हटाते हुए छिपे स्थान तक शनै:—शनै: निस्तब्ध अवस्था में शेर के पास जा पहुँचे। दूसरी गोली मारी पर फिर भी वह निश्चेष्ट पड़ा रहा तब सरदार जी ने बाहर आकर शेर को मृत घोषित किया।

बस फिर क्या था हमारी बाल गोपालों की टोली सुरक्षा घेरे को तोड़कर बाड़ में जा घुसी। देखते ही देखते शेर के भारी भरकम शरीर को टाँगों व पूँछ से पकड़े—घसीटते हुए बाहर ले आए। उस समय वह स्वामी श्रद्धानन्द आचार्य की जय के नारे गुंजा रही थी। तीनों ब्रह्मचारियों तथा सरदार जी का चित्र शेर सहित खींचा गया और रात में उस मृत शेर को एक कोठरी में रखा गया। जिसकी मिट्टी से बनी मोटी—मोटी दीवारे थी। वह रात महाभयंकर तथा भयावह थी। क्योंकि अब शेरनी अपने जोड़े की तलाश में वहाँ आने वाली थी। कड़ा पहरा बिठाकर आदेश हुआ कि आज रात में कोई भी कुलवासी अपने घरों से बाहर न निकले। रात के १० बजते ही घटना—स्थल पर शेरनी आ धमकी। गुर्रा रही थी, बार—बार गरज के साथ दहाड़ती थी। गंध लेकर उस कोठरी के पास पहुँची और दोनों पंजो से दीवार को खुरच—खुरच कर कुरेदने लगी। लाचार होकर कोठरी की परिक्रमा कर अन्दर जाने का मार्ग तलाश करती रही, पर अपने प्रयास में वह सर्वथा असफल रही। इस प्रकार प्रात: ४ बजे ब्रह्ममूहर्त्त में समस्त कुलवासियों ने उठकर सम्मिलित शोर शराबा मचाकर मादा शेरनी को जंगल में भाग जाने को बाधित किया। २४ घंटे की देर हो जाने के कारण शेर की खाल में भूसा भी न भरा जा सका। हाँ चर्म अतारकर बरसों संग्रहालय मे सुरक्षित रहा और सिर को साफ करके आयुर्वेद के अस्थि विज्ञान कक्ष में सुरक्षित रखा गया। जो आज भी आयुर्वेद कॉलेज के संग्रहालय में सुरक्षित है। लेखक उपरोक्त घटना का साक्षी है।

स्व. पं. चन्द्रकेतुजी
पूर्व अध्यापक एवं अधिष्ठाता
विद्यालय—गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार

एक पुराना पृष्ठ

(वियोग)

संयोग तथा वियोग भी इस परिवर्तनशील संसार में दिन—रात की तरह सदा अनुक्रम से चलते रहते हैं। गुरुकुल परिवार परमात्मा की कृपा से निरन्तर वृद्धि कर रहा है। इसके सब विभागों, सब पार्श्वों, सब अंग—प्रत्यंगों ने इन वर्षों में आश्चर्य—जनक उन्नति की है। किन्तु जो नियम समस्त संसार पर लागू हो रहे हैं गुरुकुल ही उनका अपवाद कैसे हो सकता है?

स्वर्गीय पं० चमूपति जी आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न थे। संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू भाषाओं पर उन्हें अधिकार प्राप्त था। वैदिक साहित्य में उनकी अच्छी गति थी। ईसाई धर्म, इस्लाम तथा आर्य सिद्धान्तों का उन्हें गम्भीर ज्ञान था। उनकी लेखनी में जादू तथा उनके भाषण में रस था। इन योग्यताओं के साथ—साथ वैदिक धर्म तथा आर्य समाज की सेवा के लिए हृदय में एक आग थी जो उन्हें चैन न लेने देती थी। आर्य समाज के किसी सिद्धान्त पर कही भी कोई आक्रमण हुआ नहीं कि पंडित जी व्याकुल हो उठते थे। आक्रमण का उत्तर, शंका का समाधान, आरोप का निराकरण किए बिना उन्हें शान्ति न होती थी। आर्य समाज ही उनके दिन की चिन्ता तथा रात्रि का स्वप्न था। उन्होंने अपने जीवन को आर्य समाज की बलिवेदी पर ऋषि दयानन्द के चरणों में समर्पित कर रखा था। वे सच्चे अर्थों में आर्य सेवक थे। यद्यपि उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी और उस पर भी एक बड़े परिवार का बोझ। परन्तु पंडित जी समझते थे कि वे अपनी योग्यता, अपनी शक्ति, अपना समय अर्थात् अपना सर्वस्व आर्य समाज पर न्यौछावर कर चुके हैं। अब उन्हें अपने निज आर्थिक लाभ के लिए प्रयुक्त करना उचित नहीं। उन्होंने एक के पश्चात् एक उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे परन्तु सब ज्यों के त्यों आर्य प्रतिनिधि सभा को अर्पित कर दियें। वे चाहते तो उनसे अपनी निर्बल आर्थिक दशा को सुधार सकते थे परन्तु उन्होने ऐसा करने का कभी विचार भी नहीं किया।

पण्डित जी अत्यन्त कर्तव्यपरायण थे। स्वामिनी सभा ने जो कार्य उनके सुपुर्द कर दिया उन्होंने बिना ननुहोनच किए यथाशक्ति अपने आपको उसमें खपा दिया। पंडित जी सफल लेखक प्रभावशाली वक्ता तथा अच्छे प्रबन्धकर्त्ता थे। कई वर्ष तक उन्होंने गुरुकुल में उपाध्याय, आचार्य तथा मुख्याधिष्ठाता के पदों पर रहकर बड़ी योग्यता से कार्य किया। इसके साथ—साथ जहां वे आर्य समाजों के वार्षिकोत्सव पर भी जाते रहे वहां उच्च कोटि का आर्य—साहित्य भी तैयार करते रहे। कई अनिवार्य कारणों से पंडित जी को गुरुकुल छोड़ना पडा। लाहौर जाकर पंडित जी ने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का इतिहास लिखने में घोर परिश्रम किया। स्वास्थ्य पहले ही अच्छा न था। दर्द—गुर्दे की शिकायत पुरानी थी। उसके लिए शल्य क्रिया करवानी पड़ी जिससे दुर्बलता और भी बढ़ गई। इसी बीच में टाइफाइड का उग्र आक्रमण हुआ। अनेक यत्न

किए गए, किन्तु यह रोग अन्त में घातक सिद्ध हुआ। पंडित जी हमसे छिन गए। आर्य–समाज की आशाओं पर तुषारापात हो गया। परन्तु परमात्मा की इच्छा के आगे किसी का वश नहीं, यह सोचकर सन्तोष करना ही पड़ता है।

हमारा हृदय इस आघात से स्वस्थ न हो सका था कि गुरुकुल के पुराने प्रेमी हित–चिन्तक, दीनबन्धु श्री एन्ड्रूज भी हमें सदा के लिए छोड गए। भारत के राजनीतिक जीवन में प्रवेश करने से पूर्व श्री एन्ड्रूज महोदय सेन्ट स्टीफन कालेज, देहली में अध्यापक थे। इन्हीं दिनों आपका सम्बन्ध गुरुकुल के साथ स्थापित हुआ था। आपको गुरुकुल का प्राकृतिक दृश्य तथा रहन–सहन बहुत प्रिय था। आप प्राय: यहां आकर रहा करते थे। गुरुकुल के संस्थापक स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के आप घनिष्ठ मित्र तथा प्रशंसक थे। आपके यत्न से भारत के उच्चतम सरकारी अधिकारी गुरुकुल की ओर आकृष्ट हुए और इनके सम्बन्ध में बनी उनकी भ्रान्त धारणाएं दूर हुयीं। संयुक्त–प्रान्त के तात्कालिक गवर्नर तथा भारत के तात्कालिक वायसराय गुरुकुल पधारे। एन्ड्रूज महोदय आदर्श ईसाई थे। प्रवासी भारतीयों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आपने घोर आन्दोलन किया था। आपने इसी को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। वृद्धावस्था और दुर्बलता तो थी ही, साथ ही आपको हार्दिक रोग का कष्ट हुआ। समाचार पत्रों में सहसा यह संवाद पढ़कर कि एन्ड्रूज महोदय हम में नहीं रहे समस्त देश में शोक छा गया।

गुरुकुल महायज्ञ में जिन महानुभावों ने अपने जीवन की पवित्र आहुति प्रदान की है उनमें प्रात: स्मरणीय श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के बाद दूसरा स्थान श्री आचार्य रामदेव जी का है। श्री आचार्य जी के जीवन का प्रत्येक क्षण गुरुकुल या आर्य–समाज की सेवा में ही व्यतीत हुआ। ऋषि दयानन्द, आर्य समाज तथा गुरुकुल के प्रति आपका प्रेम असीम था। परमात्मा ने जहां आपको अध्ययन, लेखन, भाषण में असाधारण योग्यता दी थी वहां साथ ही आपमें लगन तथा कार्य–शक्ति भी अदभुत थी। आपके भाषण तथा ग्रंथ आपके विस्तृत तथा गम्भीर अध्ययन के परिचायक हैं। आपके व्याख्यानों को सुनते समय श्रोता आश्चर्य से दांतों तले उंगली दबाते थे एक छोटे से मस्तिष्क में इतनी बड़ी–बड़ी बातें कैसे भरी जा सकती हैं। आप एक के बाद एक युक्ति और प्रमाणों की झड़ी लगा देते थे। यूरोप, अमेरिका, एशिया के किस विद्वान् ने किस विषय मे क्या लिखा है – यह आपको कण्ठाग्र रहता था। आर्य–समाज लाहौर के तथा गुरुकुल के वार्षिकोत्सव के अवसरो पर आर्य–जनता आपके व्याख्यानों की प्रतीक्षा विशेष उत्सुकता से किया करती थी। वह समझती थी कि आचार्य जी अपने भाषण में कोई न कोई नई तथा आश्चर्यमयी खोज वैदिक संस्कृति के सम्बन्ध में अवश्य सुनाएंगे। होता भी ऐसा ही था। आपके भाषण असाधारण विद्वत्तापूर्ण होने के साथ–साथ मनोरंजक भी होते थे। जिन्होंने उन भाषणों को सुना है वे जीवन पर्यन्त उन्हें भूल नहीं सकते। यह लिखते हुए कलम कांपती है कि वह विभूति वह ज्वाला, वह विद्युत भी आज हम में नहीं रहा। वैदिक धर्म की ज्योति का पतंग, आर्यसमाज

की डगमगाती नौका का कुशल कर्णधार, कांगड़ी गुरुकुल का सुदृढ़ स्तम्भ, कन्या गुरुकुल का हृदय, आचार्य रामदेव आज इस लोक में नहीं—यह विश्वास नहीं होता। वह मूर्तिमान् आशावाद, वह वैदिक संस्कृति का विश्वकोष, वह कर्मण्यता का अवतार वृद्ध नवयुवक आर्यसमाज की पताका को बीच में ही छोड़कर क्या सचमुच चला गया ? यह कैसे हुआ ? आचार्य रामदेव जी धुन के पक्के थे। आर्य समाज की सेवा के सामने उन्होंने अपने शरीर, अपने स्वास्थ्य की कभी चिन्ता ही न की। निरन्तर यात्राओं, निरन्तर भाषणों, निरन्तर अध्ययनों ने उनके स्वास्थ्य को जर्जरित कर डाला था। आशावाद के कारण वे इस तथ्य को कभी स्वीकार नहीं करते थे किन्तु प्रकृति के नियम किसी के साथ रियायत नहीं करते। जाड़े के दिन थे, आचार्य जी ने आर्य समाज के शिथिल शरीर में नवजीवन संचार करने के लिए एक स्कीम बनवाई जिसके अनुसार उन्होंने पंजाब भर में भ्रमण का निश्चय किया। इसी निमित्त वे पहले—पहल गुरुकुल कांगड़ी पधारे। एक दिन सायंकाल उन्हें सहसा ही अनुभव हुआ कि उनकी जिह्वा उनके वश में नहीं — वे ठीक तरह से बोल नहीं सकते। एकदम चिकित्सा प्रारम्भ कर दी गयी। कभी—कभी रोग कुछ शान्त होता भी प्रतीत होता था परन्तु फिर कभी बढ़ जाता था। धीरे—धीरे रोग का प्रभाव शरीर के अन्य भागों पर भी पड़ने लगा। कमजोरी बढ़ने लगी किन्तु उत्साह तथा लगन में कोई कमी न हुई, काम करने की इच्छा प्रत्युत बलवती ही होती गई। शरीर तथा मन में एक संघर्ष चलने लगा। आचार्य जी सदा यही अनुभव करते थे कि वे अच्छे हो रहे हैं, लगभग अच्छे हो गये हैं। वे भविष्य के लिए कार्यक्रम बनाने लगते किन्तु शरीर उन्हें रोकता। इसी संघर्ष में प्राय: दो वर्ष व्यतीत हो गए। सन् १९३९ के जाड़ों में उनका रोग असाधारण रूप से बढ़ गया सब प्रकार के उपचार किये गये किन्तु होनी होकर रही। एक दिन समाचार मिला कि आचार्य जी कि अवस्था चिन्ता जनक है। हम लोग अगले दिन प्रात: काल की पहली ट्रेन से देहरादून के लिए रवाना हुये। वहाँ पहुंचने पर मालूम हुआ कि प्रात: काल ५ बजे के लगभग, इस जीवन पर्यन्त जगने वाले सेनापति ने सदा के लिए नेत्र—निमीलन कर लिया।

आचार्य जी ने गुरुकुल के लिए लाखों रुपया एकत्र किया किन्तु उनकी सेवा का हिसाब रुपये पैसे में नहीं लगाया जा सकता। इस से कहीं अधिक बहुमूल्य वस्तु अपना जीवन उन्होंने इसकी सेवा में लगा दिया। यह गुरुकुल जब अपने पैरों पर खड़ा होता दिखाई दिया तो वे कन्या गुरुकुल की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने में लग गये। जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्हें गुरुकुल तथा आर्यसमाज की ही चिन्ता रही। यह हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसे अभिभावक का हाथ गुरुकुल से सदा के लिए उठ गया।

(३८ वें वार्षिक विवरण से सभार)

श्रद्धानन्द जी का हिन्दी साहित्य को योगदान

"श्रद्धा से प्रेरित होकर ही आज के इस जीवन को मैंने पूरा किया है। श्रद्धा मेरे जीवन की आराध्या देवी है, अब भी श्रद्धा से प्रेरित होकर ही संन्यास–आश्रम में प्रवेश कर रहा हूँ। इसीलिए यज्ञ–कुण्ड की अग्नि को साक्षी कर अपना नाम 'श्रद्धानन्द' रखता हूँ। जिससे अगला सब जीवन भी श्रद्धामय बनाने में सफल हो सकूँ" (कल्याण मार्ग का पथिक– स्वामी श्रद्धानन्द, पृ. ८१)

ये भावभरित उद्गार हैं– महात्मा मुंशीराम जी के। मुंशीराम भारत के महापुरुषों में से एक हैं, जिनका देश के इतिहास में शाश्वत स्थान है। निश्चित रूप से शुभ संकल्प व सुविचार जीवन में आमूल–चूल परिवर्तन लाकर एक अद्भुत और पावन चरित्र का गठन कर सकते हैं। मुंशीराम जी के समस्त जीवन पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह धारणा और भी दृढ़ीभूत हो उठती है। जीवन के प्रारम्भिक काल में विलासी और स्वच्छन्द प्रकृति के ये संयमी, देशभक्त, कर्त्तव्यनिष्ठ, परोपकारी, त्यागी, हिन्दू–जाति के महान् उन्नायक और समाज–सेवक के रूप में परिणत हो गये। निःसन्देह शिक्षा, समाज–सुधार, धार्मिक पुनरुत्थान और वेद–धर्म की सेवा के क्षेत्र में उनका योगदान अतुलनीय है।

स्वामी जी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति और तदनुकूल चलने वाले विश्वविद्यालयों को चुनौती देने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा–पद्धति की नींव डाली। उन्होंने देश–प्रेमी और चारित्रिक दृष्टि से समुन्नत नवयुवकों के निर्माण हेतु गुरुकुल कांगड़ी की नींव रखी थी। जहाँ ऋषि दयानन्द हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा का रूप देने के लिये प्रयत्नशील थे, वहीं श्रद्धानन्द गुरुकुल कांगड़ी के माध्यम से समूची आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा भी प्राच्य विद्याओं के साथ हिन्दी में ही दिये जाने के प्रबल समर्थक थे। जहाँ उन्होंने वेद, संस्कृत, पुरातत्त्व व दर्शन के अध्ययन का प्रमुख विषय बनाकर प्राचीन की रक्षा की, वहीं विज्ञान शिक्षा की व्यवस्था कर एक नये युग का सूत्रपात किया। डा० सच्चिदानन्द शास्त्री जी ने तो आधुनिक संस्कृति का निर्माता मानकर उन्हें प्राच्य विद्याओं का उन्नायक, आधुनिक ज्ञान–विज्ञान का पोषक एवं वैज्ञानिक शब्दावली के हिन्दी अनुवादक के रूप में स्मरण किया है। गुरुकुल ही भारतीय विश्वविद्यालयों में पहला विश्वविद्यालय है जहां विज्ञान का अध्ययन हिन्दी माध्यम से प्रारम्भ हुआ।

वस्तुतः सन् १९०८ के आस–पास विज्ञान का अध्ययन हिन्दी–भाषा के माध्यम से होना

अकल्पनीय सा ही था। वैज्ञानिक शब्दावली का हिन्दी गठन असंभव सा ही प्रतीत होता था। स्वामी जी ने प्रबल इच्छा शक्ति के बल पर असंभव कार्य को संभव कर दिखाया।

हिन्दी साहित्य को जितने साहित्यकार और पत्रकार श्रद्धानन्द जी ने दिये उतने किसी अन्य ने नहीं। मुंशी प्रेमचन्द, श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय आदि सभी के स्वामी श्रद्धानन्द प्रेरणा स्रोत थे। विख्यात कहानीकार सुदर्शन तो स्वयं के हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करने का कारण भी मुंशीराम जी द्वारा प्रदत्त प्रेरणा को ही मानते हैं। अहिन्दी भाषी दक्षिण भारत के क्षेत्रों में हिन्दी के प्रचार–प्रसार हेतु अपना जीवन न्यौछावर करने वाले वंशीधर विद्यालंकार, पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति आदि स्वामी श्रद्धानन्द जी के ही शिष्य थे। आचार्य पं० चमूपति प्रभृति विद्वान् हिन्दी साहित्यकार के रूप में इन्हीं की प्रेरणा से प्रतिष्ठित हुये। पं० भीमसेन विद्यालंकार, पं० हरिशरण, पं० सत्यदेव विद्यालंकार, पं० रामगोपाल, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति सदृश हिन्दी के उद्‌भट विद्वान् भी इन्हीं की देन है। श्रद्धानन्द जी के प्रेरणास्पद उपदेशों से प्रभावित होकर श्री विष्णुप्रभाकर भी हिन्दी साहित्य के प्रति समर्पित हुए।

पत्रकारिता ज्ञान व सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम है। किसी भी भाषा को सतत् विकासोन्मुख बनाये रखने मे पत्र–पत्रिकायें सशक्त भूमिका अदा करती है। प्रत्येक प्रबुद्ध साहित्यकार स्व विचारों के अधिकाधिक सम्प्रेषण हेतु किसी समय पत्रिका को माध्यम बनाता है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्वामी जी पूर्णत: हिन्दी–भाषा के प्रति समर्पित थे, इसीलिए तो इन्होंने अपने सिद्धान्तों और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम न केवल हिन्दी बनाया अपितु अपने सतत् कर्मशील जीवन में देश को अनेक सशक्त हिन्दी पत्र–पत्रिकाएं भी प्रदान की।

'सद्धर्म प्रचारक' एक ऐसा ही पत्र है, जो सन् १९८९ से १ मार्च १९०७ तक साप्ताहिक पत्र के रूप में पंजाब से निकलता था। इसका प्रथम हिन्दी संस्करण (१, २, ३, ४) ६ मई १९०८ ई० को गुरुकुल से प्रकाशित हुआ। इस प्रेस के व्यवस्थापक पं० अनन्तराम शर्मा थे। कालान्तर में पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने भी इस पत्र के सम्पादक पद को सुशोभित किया। उन्हीं के अनथक प्रयत्नों के फलस्वरूप यह कुछ काल तक दैनिक–पत्र के रूप में भी निकला। सत्यकाम विद्यालंकार जी ने इन्द्र जी की इस पत्र से जुड़ी कुछ स्मृतियों को इस प्रकार लिपिबद्ध किया है "मैं अभी विद्यार्थी ही था, स्नातक नहीं बना था। दैनिक के सम्पादन का कार्य मैंने अपने जिम्मे लिया। गुरुकुल का प्रेस तो काफी बड़ा था। गंगा के पार उस वनस्थली में दैनिक–पत्र के लिये सामग्री कहां से मिलती। फिर भी बहुत प्रयत्न करके कुछ दिनों तक–शायद–दस दिन तक 'सद्धर्म प्रचारक' का दैनिक संस्करण निकाला गया। आर्थिक दृष्टि से तो वह पूरी तरह से घाटे का सौदा था– न स्थानीय बिक्री थी और न ऐजेन्सियों का

प्रबन्ध। बस इतनी सन्तोष की बात समझो कि दैनिक संस्करण निकालने के **कारण 'सद्धर्म प्रचारक' की ख्याति हो गयी और मैं यह अनुभव करने लगा कि दैनिक पत्र निकाल सकता हूँ''** (इन्द्र विद्यावाचस्पति पृ० १७)

वास्तव में 'सद्धर्म प्रचारक' श्रद्धानन्द जी के विचारों का स्वच्छ प्रतिबिम्ब था। यह जिज्ञासुओं की अनेक शंकाओं का समाधान कर सकने में पूर्णत: समर्थ था। इस पत्र की साज—सज्जा भी अनूठी थी, सर्वोपरि 'ओ३म्' तथा कुछ नीचे 'सद्धर्म प्रचारक' शब्द देवनागरी व रोमन लिपि में प्रकाशित होता था। तदुपरान्त यह मंत्र— **यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। X X X मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे**— अंकित रहता था। इस मंत्र के बायीं ओर विक्रमी संवत, मध्य में दयानन्दाब्द व अन्त में ईस्वी सन् तथा बायीं ओर प्रवर्तक व दायीं ओर सम्पादक का नाम लिखा रहता था। कुछ समय पश्चात् इस पत्र के ऊपरी हिस्से में एक बड़ी पताका भी बनने लगी।

'श्रद्धा' पत्रिका के सम्पादक स्वयं श्रद्धानन्द जी थे। इसमें हिन्दी विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए। इसमें भी सर्वोपरि ओ३म् तदुपरान्त बड़े—बड़े अक्षरों में 'श्रद्धा' तथा बांयी ओर **'श्रद्धा प्रातर्हवामहे, श्रद्धां मध्यन्दिनं परि'** तथा दांयी ओर **'श्रद्धां सूर्यस्य विम्रच्छ्रिद्धे श्रद्धापयेह्न:'** प्रकाशित रहता था। इस पत्र के सहायक संपादक पं० दीनानाथ विद्यालंकार थे। यद्यपि प्रति शुक्रवार को प्रकाशित होने वाला यह पत्र दो वर्ष की अल्पावधि में ही बन्द हो गया तथापि इसने हिन्दी सहित्य को अनूठी और विचोरोत्तेजक सामग्री प्रदान की।

श्रद्धानन्द जी ने **'सत्यवादी'** नामक एक अन्य साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन भी किया। इसके प्रथम संपादक हिन्दी के यशस्वी विद्वान् पद्म सिंह शर्मा और पं० रुद्रदत्त शर्मा भी रहे। इसके अतिरिक्त १९२३ ई० में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने **'अर्जुन'** दैनिक का प्रकाशन भी किया था। यह राष्ट्रीय विचारधारा और आर्य समाजी विचारधारा का संवाहक पत्र था। स्वामी जी के कनिष्ठ पुत्र पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के सम्पादकत्व में इस पत्र का सूत्र—वाक्य था— **'अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्'**। कालान्तर में यही पत्र 'वीर अर्जुन' के नाम से प्रकाशित हुआ और इसके सर्वप्रथम सम्पादक थे— पं० कृष्णचन्द विद्यालंकार/कुछ वर्षों बाद जयन्त वाचस्पति, पं० लेखराम, पं० रामगोपाल विद्यालंकार व वेदालंकार भी इसके सम्पादक बने। सम्प्रति नरेन्द्र जी इसका कुशलता से सम्पादन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय ऐसी अन्य पत्र—पत्रिकाएं भी हे जो स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा संस्थापित गुरुकुल से आज भी प्रकाशित हो रही है। गुरुकुल शोध पत्रिका (मासिक), प्रह्लाद, शतपथ, आर्यभट्ट, प्रभृति, पत्रिकाएं आज भी हिन्दी, संस्कृत, पत्रकारिता ज्ञान--विज्ञान इत्यादि अनेक विषयों की शोधपरक रचनाओं को उजागर करती है।

स्वामी जी की कृतियां हिन्दी साहित्य की अमूल्य एवं अनुपम निधि हैं। मातृभाषा का उद्धार, पारसीयत और वैदिक धर्म, वेद और आर्य समाज, पंच महायज्ञ विधि, उत्तराखण्ड की महिमा, मानव धर्म तथा शासन–पद्धति, आदिम सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त, बन्दीघर के विचित्र अनुभव, कल्याण मार्ग का पथिक, आर्य पथिक लेखराम, मुक्ति सोपान, धर्मोपदेश आदि उनकी अनेक कृतियां चिरस्मरणीय रहेंगी। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने तो स्वामी श्रद्धानन्द जी को हिन्दी साहित्य में 'आत्मकथा लेखन' का प्रवर्तक माना है। उनकी सेवाओं को चिरस्मरणीय मानते हुए वे लिखते हैं– ''स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तो उर्दू भाषा से प्रारम्भ की थी, किन्तु कालान्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेश–प्रवचन आदि सुनकर उनका ध्यान हिन्दी भाषा की ओर गया। स्वामी दयानन्द हिन्दी भाषा को आर्यभाषा कहते थे। श्रद्धानन्द जी ने भी इसी आर्यभाषा को स्वीकार कर गुरुकुल कांगड़ी में अपने प्रयास से 'सद्धर्म प्रचारक' नाम से एक पत्र निकालना शुरु किया। इस पत्र की भाषा हिन्दी ही थी। इसके बाद गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली का माध्यम उन्होंने हिन्दी भाषा को ही बनाया। यह ठीक है कि स्वामी जी की कारयित्री प्रतिभा के व्यक्ति नहीं थे। किसी साहित्यक विधा में उन्होंने काव्य, उपन्यास, नाटक आदि की रचना नहीं की, किन्तु आत्मकथा के रूप में जो आत्मवृत्त लिखा है वह हिन्दी में है और हिन्दी साहित्य के इतिहास में उसे आत्मकथा विधा का सूत्रपात करने वाला कहा जाता है। हिन्दी के लिए इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान आदि की पुस्तकों के निर्माण का कार्य उन्हीं की देखरेख में ८० वर्ष पहले हुआ था। इसलिए उनकी हिन्दी भाषा–सेवा को विस्मृत नहीं किया जा सकता।''

डॉ० मृदुल जोशी
प्रवक्ता (हिन्दी)
कन्या गुरुकुल महाविद्यालय,
हरिद्वार (उत्तरांचल)

स्वामी दयानन्द का शिक्षादर्शन (गुरुकुल शिक्षा)

शिक्षा का महत्व

महर्षि दयानन्द भलीभांति इस तथ्य का दर्शन किये हुए थे कि–"शिक्षा मानव एवं समाज की नींव है।" शिक्षा के इसी महत्त्व को स्वीकारते हुए उन्होंने "सत्यार्थप्रकाश" के तृतीय समुल्लास में लिखा है– "संतानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण कर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता–पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।'' स्वामी जी अशिक्षा एवं अविद्या को परतन्त्रता का कारण मानते थे। इसलिए उन्होंने कहा था – 'परमात्मा की सृष्टि में अविद्वान् लोगो का राज्य बहुत दिनों नहीं चलता।'[1]

शिक्षा की अनिवार्यता (राजनियम, जातिनियम)

शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग मानकर स्वामी दयानन्द ने इसके लिए राज्य को उत्तरदायी ठहराया है। वे लिखते हैं – ''इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवें और आठवें वर्ष से आगे अपने लड़को और लड़कियों को कोई घर में न रख सके, पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।''[2] अनिवार्य शिक्षा के लिए इतनी कठोर व्यवस्था कोई अन्य शिक्षा शास्त्री अथवा समाज सुधारक नहीं दे पाया है। यह स्वामी दयानन्द की अपनी मौलिक देन है। आज भी इस प्रगतिशील युग में सम्भवत: कोई राष्ट्र अपने यहाँ अनिवार्य शिक्षा के लिए बच्चे को स्कूल न भेजने पर दण्ड व्यवस्था लागू नहीं कर पाया है।

शिक्षा का आरम्भ

सामान्यत: यह समझा जाता है कि बच्चे की शिक्षा तब प्रारम्भ होती है जब पिता उसे पाठशाला अथवा स्कूल में प्रविष्ट कराता है और अध्यापक उसे अक्षर ज्ञान सिखाने लगता है। परन्तु स्वामी दयानन्द पाठशाला जाने से भी पहले – बच्चे की शिक्षा के लिए उसके माता–पिता को उत्तरदायी मानते हैं। ''सत्यार्थप्रकाश'' का द्वितीय समुल्लास आरम्भ करते हुए – ''अथ शिक्षा प्रवक्ष्याम:'' कहकर स्वामी जी ने ''शतपथ ब्राह्मण'' के इस वचन को उद्धृत किया है :–

''मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद''

इसके साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है – ''वस्तुत: जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।''

प्रथम पाठशाला माँ

सबसे पहली शिक्षा बच्चे की माँ से मिलती है। प्रसिद्ध पादरी H.W. Beecher (बीचर) का कथन नितान्त सत्य है – "माता का हृदय बच्चे की पाठशाला है"[३] माता स्तन्यपान के समय अपनी लोरियों में ही बच्चे के कोमल एवं साफ –सुथरे मन में जो संस्कार जमा देती है उनकी छाप आजीवन अमिट रहती है और जैसे संस्कार होते हैं वैसा ही जीवन बन जाता है। इस दृष्टि से माता जैसा चाहे बच्चे को वैसा ही बना सकती है। अमेरिकन दार्शनिक "एमरसन" (Emerson) के शब्दों में **"Men are what their mothers made them"**[४] मनुष्य वही होते हैं जो उनकी मातायें उन्हें बनाती हैं। नेपोलियन के शब्दों में तो "बच्चे का भाग्य सदैव उसकी मां की कृति है" – **The future destiny of child is always the work of the mother.**[५] स्वामी दयानन्द इस तथ्य को भलीभांति जानते थे इसीलिए उन्होंने कहा – "जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम करके उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता।"[६]

माता के बाद दूसरा उत्तरदायित्व पिता का है और इस परम्परा में इन दोनों के बाद आचार्य का स्थान है। इसलिए मनु ने आचार्य की अपेक्षा सौ गुना अधिक महत्व पिता का और पिता की भी अपेक्षा हजार गुना महत्व माता का बताया है। –

उपाध्यायाब्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।[७]
सहस्त्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।

माता पिता की पाठशाला में जो बच्चा फेल हो जाता है वह आचार्य की पाठशाला में कदापि पास नहीं हो सकता।

आज शिक्षा शास्त्रियों की गोष्ठियों में शिक्षा पर विचार किया जाता है। इस पर अनेक आयोग भी बैठाए जाते हैं। किन्तु ये सब अपने विचार बच्चे के मूल (माता – पिता) से प्रारम्भ न करके स्कूल से प्रारम्भ करते हैं। अत: इनकी प्रणालियां सफल नहीं हो पा रही हैं। इस दिशा में सफलता के लिए आज के शिक्षा शास्त्रियों को स्वामी दयानन्द की उक्त विचारधारा की ओर लौटना ही पडेगा।

बीजाधान से ही शिक्षा

स्वामी जी की विचारधारा शिक्षा के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक है। जिस प्रकार वृक्ष की उत्पत्ति बीज से होती है और इसके लिए उचित भूमि में उचित रीति से बीज का वपन तथा उचित वातावरण एवं आरम्भ से ही उसकी देखभाल नितान्त अपेक्षित है उसी प्रकार योग्य सन्तान के निर्माण की योजना भी जन्म से पहले गर्भाधान के समय ही की जानी चाहिए

क्योकि गर्भाधान ही नहीं अपितु उससे भी पहले के माता–पिता के आचार विचार, शील सभ्यता तथा उनके शारीरिक एवं मानसिक गुणों का सूक्ष्म प्रभाव बच्चे पर किसी न किसी रूप में अवश्य ही होता है। आज के शरीरविज्ञानविद् तथा मनोवैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार कर चुके है। स्वामी दयानन्द इसका साक्षात्कार शताब्दी पहले कर चुके थे। उनका यह कथन कितना वैज्ञानिक है – ''माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादकद्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्न, पान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुण युक्त हो।'' वास्तव में स्वामी जी मानव जाति के बीज में ही सुधार करके एक अत्यन्त सभ्य, सुसंस्कृत तथा सशक्त समाज का निर्माण करना चाहते थे। माता के दूध का सर्वाधिक प्रभाव बच्चे के जीवन पर होता है। इसी तथ्य के प्रकाश में वे लिखते हैं – ''ऐसा पदार्थ बच्चे की माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों'' (स०प्र०समु० २) बच्चे के हृदय पर सर्वप्रथम सर्वाधिक प्रभाव माता की शिक्षा का ही होता है। इसीलिए स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में ही पुनः कहते हैं – '' बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो।''

उत्तम संस्कार

जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। विशेष रूप से बाल्यावस्था में जो संस्कार हृदय में बद्धमूल हो जाते हैं वे जीवन पर्यन्त साथ नहीं छोड़ते। जैसे कुम्हार द्वारा मिट्टी के बर्तन में खींची गई रेखायें फिर कभी नहीं छुटतीं, उसी प्रकार माता–पिता द्वारा डाले गये संस्कार बच्चों के मन से कभी नहीं छूटते। इस वास्तविकता को जानकर ही स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने यह उपदेश किया ''जैसे संतान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रूचि करें वैसा प्रयत्न माता – पिता करते रहें जिससे उत्तम संस्कार उत्पन्न हों। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो करावें।'' स्वामी जी का विचार है कि जब बच्चा बोलने लगे तब माता उनको शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चारण सिखाये। साथ ही उसे बड़ों का सत्कार करने एवं उत्तम व्यवहार की भी शिक्षा दे।

वस्तुतः स्वामी जी की उक्त प्रणाली से बच्चा आरम्भ से ही सभ्य और सुशिक्षित होता चला जायेगा और फिर विद्यालय में जाने पर आचार्य को भी उसके विद्वान् एवं सदाचारी बनाने में निश्चित ही सफलता मिलेगी।

आचार्यकुल में प्रवेश

माता पिता द्वारा बच्चे के पालन पोषण, अक्षरज्ञान तथा उसे प्रारम्भिक शिष्टाचार की शिक्षा

के बाद पांच से आठ वर्ष की अवस्था में स्वामी दयानन्द ने उनके पाठशाला भेजने का विधान किया है। इसके लिए स्वामी जी ने आचार्यकुल एवं गुरुकुल शब्दों का भी प्रयोग किया है। वे लिखते हैं – द्विज अपने घर में लड़कों को यज्ञोपवीत और कन्याओं का यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्यकुल अर्थात् अपनी–अपनी पाठशाला में भेज दें। (स०प्र०समु० ३)

शिक्षा का स्थान एवं वातावरण

आज के शिक्षाविद् इस बात को एक स्वर से स्वीकार करने लगे हैं कि शिक्षा के लिए शान्त एवं भद्र वातावरण अनिवार्य हैं। शिक्षा का स्थान नगर के कोलाहल एवं उसकी अभद्रताओं से दूर होना चाहिए। इस तथ्य का साक्षात्कार स्वामी जी के दिव्य मानस में शताब्दी पूर्व हो चुका था जिसका उल्लेख उन्होंने इन शब्दों में किया। –

"विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहे।"

माता पिता से दूर

गृहस्थ में माता पिता के साथ रहकर घर की चिन्ताओं से प्रभावित होना स्वाभाविक है, और इस स्थिति में शिक्षा में व्यवधान भी स्वाभाविक है। इसलिए स्वामी दयानन्द ने शिक्षा काल में सन्तान के माता पिता से सम्पकै का निषेध किया है। वे लिखते हैं – " उनके माता पिता अपने संतानों से वा संतान अपने माता पिताओं से न मिल सके, और न किसी प्रकार का पत्र व्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रखें।" स्वाती जी के इस सिद्धान्त की साक्षात् अनुभूति इन पंक्तियों के लेखक को अपने जीवन में हो चुकी है। लेखक जब गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में पढ़ता था तो गुरुकुल के नियमानुसार वर्ष में केवल एक बार ग्रीष्मावकाश में घर जाने दिया जाता था। एक बार ग्रीष्मावकाश में घर जाने पर लेखक को पता चला कि उसका एक सहोदर भाई उत्पन्न हुआ था और सात महीने का होकर वर्ष के बीच में ही वह मर भी गया। जब लेखक ने अपने पिताजी से यह कहा कि आपने हमें अपने भाई के उत्पन्न एवं मृत होने की सूचना तक नहीं दी तब पिता जी ने "सत्यार्थप्रकाश" में से स्वामी जी की उक्त पंक्तियाँ पढ़कर सुना दी।

महाविद्यालय ज्वालापुर के तत्कालीन कुलपति तप:पूत आत्मा 'प्रात:–स्मरणीय आचार्य नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ के जीवन की घटना तो स्वामी दयानन्द के उक्त सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण है। आचार्य जी अपने शिक्षण काल में अपने गुरु जी के कथनानुसार घर से आने वाले सभी पत्रों को एक घड़े में बन्द करते रहे। जब शिक्षा पूरी हुयी तो उधर घड़ा भी भर गया था। जब घड़े से पत्र निकाल कर पढ़े तो किसी में भाई, किसी में चाचा और किसी पत्र में माता पिता

की मृत्यु के विषय में लिखा था। पत्रों को पढ़कर पता चला कि आचार्य जी के परिवार में अब कोई रह ही नहीं गया है। अत: अब उन्होंने घर जाने का ही विचार छोड़ दिया। वे तेलंगाना के थे। उसके बाद उधर कभी नहीं गये। अपना सारा जीवन गुरुकुल को समर्पित कर दिया। उनके आचार्यत्व एवं कुलपतित्व में लेखक जैसे न जाने कितनों के जीवन बने जिन्होंने स्वदेश, स्वसंस्कृति तथा समाज के लिए बहुत योगदान किया। किन्तु इस सबका श्रेय मूल रूप से महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा बताई गई गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को ही है।

चरित्रवान् अध्यापक

विद्यार्थियों को सुशिक्षित एवं चरित्रवान् बनाने के लिए योग्य एवं सच्चरित्र अध्यापकों की आवश्यकता है क्योंकि छात्र के जीवन पर पुस्तकों का उतना प्रभाव नहीं होता जितना अपने अध्यापक एवं आचार्य का। यास्क ने आचार्य शब्द की निरूक्ति करते हुए लिखा है –

आचारं ग्राहयति, आचिनोति अर्थान् आचिनोति बुद्धिमिति वा"[८]

इस निर्वचन के अनुसार आचार्य वहीं है जो कि अपने शिष्यों में सदाचार का आधान काराए और शिष्यों को सदाचारी वही बना सकता है जो स्वयं सदाचारी हो। दुराचारी अध्यापक का निषेध करते हुए स्वामी जी ने लिखा है – " जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हो उनसे शिक्षा न दिलावें, किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ने और शिक्षा देने योग्य हैं।" (स०प्र०समु० ३)

छात्र एवं अध्यापक का निकट सम्पर्क

आज की शिक्षा प्रणली में छात्र ४ या ५ घन्टे तक ही विद्यालय में शिक्षक की देख रेख में रह पाता है। वह शेष समय अपने घर या गलीकूचों में बिताता है। फलस्वरूप उस पर अपने शिक्षक की शिक्षाओं एवं उसके चरित्र का प्रभाव बहुत कम और समाज के गन्दे वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसी कारण आज छात्र एवं लगभग समस्त युवा पीढ़ी के अनुशासनहीन तथा पथभ्रष्ट होने की समस्या सामने आकर खड़ी हो गई है जिसका समाधान आज के शिक्षाविद् एवं जननेता नहीं खोज पा रहे है। लेखक की यह दृढ़ धारणा है कि इस समस्या का समाधान उपर्युक्त गुरुकुल शिक्षा पद्धति में ढूंढा जा सकता है जिसमें २४ घन्टे छात्र विद्वान् एवं आचारवान् शिक्षकों के सानिध्य में रहकर अपनी शैक्षिक एवं चारित्रिक उन्नति द्वारा देश का सभ्य नागरिक बन सकता है।

अथर्ववेद में आलंकारिक ढंग से कहा गया है कि – "आचार्य उपनयन संस्कार करके ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में रखता है" –

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्त:" – अथर्ववेद ११/५/३

इस पर टिप्पणी करते हुए "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" के वर्णाश्रम विषय" प्रकरण में स्वामी जी ने लिखा है –

"अर्थात् जो गर्भ में बस के माता और पिता के सम्बन्ध से मनुष्य का जन्म होता है वह प्रथम जन्म कहलाता है और दूसरा यह है कि जिसमें आचार्य पिता और विद्या माता होती है। इस दूसरे जन्म के न होने से मनुष्य को मनुष्यपन नहीं प्राप्त होता। इसलिए मनुष्यों को उसको अवश्य प्राप्त करना चाहिए। जब आठवें वर्ष में पाठशाला में जाकर आचार्य और विद्या पढ़ाने वाले के समीप रहते हैं तभी से उनका नाम ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी हो जाता है।"

ब्रह्मचर्य

आज के युग में ब्रह्मचर्य का अर्थ व महत्व न जानने वाले इसका नाम सुनकर प्रायः हँस देते हैं। किन्तु गम्भीरता से लेने की आवश्यकता है। ब्रह्म शब्द प्रमुख रूप से वेद, परमेश्वर, वीर्य तथा शक्ति आदि अर्थों में आता है और इन्हें प्राप्त करने की ओर निरन्तर गतिशील होना ही ब्रह्मचर्य है। यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो विद्यार्थी का लक्ष्य यही होता है। अतः ब्रह्मचारी ही सही अर्थों में विद्यार्थी कहलानें का अधिकारी है। शरीर में वीर्य संचय एवं धारण करने से ही बल एवं बुद्धि का विकास होता है जो कि शिक्षार्थी के लिए अनिवार्य है। इस विषय में यह कथन प्रमाण है। – "जो ब्रह्मचारी होता है, वही ज्ञान से प्रकाशित तप और दीक्षा को प्राप्त हो के विद्या को प्राप्त होता है।' (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका–वर्णाश्रम विषय)

सहशिक्षा नहीं

सहशिक्षा का निषेध स्वामी जी ने निम्न शब्दों में किया है :– 'लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिए। जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष व भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लडका और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लडकी भी न जाने पावे अर्थात् जब तक वे ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी रहें तब तक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीडा विषय का ध्यान और संग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहें और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर आत्मा के बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।' (स०प्र०समु० ३)

स्वामी दयानन्द शिक्षा द्वारा सामाजिक चरित्र को ऊँचा उठाना चाहते थे। वे केवल अक्षर ज्ञान तक ही शिक्षा सीमित नहीं मानते थे। अतः शिक्षणकाल में चरित्र की दृष्टि से युवा एवं युवतियों का एक साथ रहना उन्हें अभीष्ट नहीं था क्योंकि इन्द्रियों पर कितना ही नियन्त्रण क्यों न किया जाए फिर भी समीप रहने से मन में विकार उत्पन्न हो ही जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक

सत्य है। सहशिक्षा के पक्षपाती यदि विचार कर देखें तो आज के विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में छात्रों की अनुशासनहीनता एवं दुश्चरित्रता के अनेक कारणों में सहशिक्षा भी एक कारण है।

शिक्षा में समानता

धनी, निर्धन, राजा एवं सामान्य प्रजा के बालकों के लिए पृथक्–पृथक् शिक्षणालयों एवं उनमें खान–पान, वस्त्र तथा निवास आदि की असमानताओं से आरम्भ से ही बच्चों के हृदय में ऊँच–नीच की भावनाएं एवं हीनग्रन्थियां उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे सामाजिक विषमता जन्म लेती है और विषमता समाज का सबसे बड़ा अभिशाप है। समाज को इस आपत्ति से बचाने के लिए ही स्वामी ने यह विधान किया – 'सबको तुल्य वस्त्र खान, पान, आसन दिए जाएं, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र की सन्तान हो।' (स०प्र०समु० ३) स्वामी जी के इसी विधान के अनुसार गुरुकुलों में सभी को समानता का स्तर दिया जाता है।

सभी वर्गों की शिक्षा

समाज का सर्वाङ्गीण विकास तभी सम्भव है जब उसमें सभी वर्ग सुशिक्षित हों। समाज के इस सर्वाङ्गीण विकास को ध्यान में रखकर ही स्वामी जी ने यह आदेश दिया – इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करें और विशेषकर राजा, इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्रजनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें क्योंकि जो ब्राह्मण हैं यदि वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें, तो विद्या, धर्म राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती है। (स०प्र०समु) स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होने पाखण्डियों, अन्धविश्वासियों एवं स्वार्थी ब्राह्मणों की – **'स्त्रीशूद्रौ नापधीयताम्'**

इस मान्यता का खण्डन करके विद्या, ज्ञान एवं वेद के द्वार सबके लिए खोल दिए। सबको वेदाध्ययन के अधिकार का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं –

–जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित हैं (स०प्र० समु० ३)

स्त्री शिक्षा

स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखने से न केवल भारतीय समाज का अपितु विश्व के समाज का बड़ा अहित हुआ है। इसे जानते हुए स्वामी जी ने स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया। स्त्री शिक्षा का उल्लेख करते हुए स्वामी दयानन्द कहते हैं – ''स्त्रियों को भी व्याकरण धर्म, वैद्यक गणित व शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए। क्योकि इनके सीखे बिना सत्यासत्य का निर्णय पति आदि से अनुकूल व्यवहार, यथायोग्य सन्तानोत्पति उनका पालन, वर्धन और

सुशिक्षा करना आदि नहीं बन सकता।'' अशिक्षा व अन्धविश्वासों के गहन अन्धकार में सोए भारतीय समाज को जगाने वाले दयानन्द ही थे, जिन्होंने सर्वप्रथम सब वर्णों के लिए और विशेष रूप से स्त्रियों के लिए शिक्षा का आह्वान किया। इस दृष्टि से समूचा भारतीय समाज और विशेष रूप से स्त्री समाज स्वामी दयानन्द का ऋणी है। यदि अतिशयोक्ति न समझें तो ''आज स्त्रियों में जो भी जागृति है, आज जो वे हर क्षेत्र में सहभागिनी हैं और आज जो विश्व महिला वर्ष के आयोजन किए जा रहे हैं'' इस सबका श्रेय मूलत: किसी न किसी रूप में स्वामी दयानन्द को अवश्य जाता है।

देवनागरी व संस्कृत की शिक्षा

वैज्ञानिक दृष्टि से लिपिवेत्ता देवनागरी को स्वीकार कर चुके हैं किन्तु इसका अपना सांस्कृतिक महत्व है। विश्व के विद्वानों द्वारा यह स्थापित किया जा चुका है कि सबको सुख शान्ति एवं सन्मति प्रदान करने वाले ज्ञान की राशि वेद हैं और नागरी लिपि व संस्कृत भाषा में निबद्ध है। यद्यपि वैदिक भाषा प्रचलित लौकिक संस्कृत से कुछ भिन्न भी दिखाई देती है। स्वामी दयानन्द का विचार था कि – ''जब पांच–पांच वर्ष के लड़का–लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, फिर अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी (स०प्र०समु०)। संस्कृत के अध्ययन को प्राथमिकता स्वामीजी ने इसलिए दी कि उसमें संस्कृति निहित है, जो कि समाज का प्राण है। वस्तुत: वेदादि शास्त्रों के पढ़ने से ही मनुष्य सच्चे अर्थो में मनुष्य बन सकता है। इसके अतिरिक्त गणित, ज्योतिष, वैद्यक, शिल्प विद्या तथा शस्त्र विद्या आदि विभिन्न विषयों के अध्ययन का भी दयानन्द ने निर्देश किया है। स्वामी जी का विश्वास था कि सांगोपांग वेदाध्ययन करने से सभी विद्याओं का ज्ञान हो सकता है। आर्य समाज के दस नियमों में से तृतीय नियम में उन्होंने स्पष्ट लिखा है – ''वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढाना और सुनना–सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।''

अन्य देश की भाषाओं की भी शिक्षा

शिक्षा के मामले में स्वामी दयानन्द का दृष्टिकोण जरा भी संकुचित नहीं था, अपितु वह इतना विस्तृत था कि वे देवनागरी व संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं का भी सम्मान करते थे और यह अपेक्षित समझते थे कि अन्य भाषाओं का भी अध्ययन किया जाए जिससे कि भारत के बाहर की दुनिया से भी सम्पर्क बना रहे। इसके उदाहरण स्वरूप जोधपुर नरेश को लिखे गये स्वामी दयानन्द के पत्र का यह अंश पर्याप्त होगा – महाराज कुमार के संस्कार सब वेदान्त कराइएगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रखकर प्रथम देवनागरी भाषा, पुन: संस्कृत विद्या, जो सनातन आर्षग्रन्थ हैं जिनको पढ़ने में परिश्रम और समय कम हो और महालाभ प्राप्त हो – इन दोनों को

पढ़ने के पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेजी में भी जो ग्रामर और फिलोसफी के ग्रन्थ हैं, पढ़ना चाहिए।" अबसे शताब्दी पूर्व शिक्षा के विषय में स्वामी दयानन्द का यह दृष्टिकोण वस्तुतः चमत्कारपूर्ण है।

स्वामी दयानन्द के सर्वाङ्गीण एवं सार्वभौम शिक्षा दर्शन का इस छोटे से लेख में समग्र वर्णन नहीं किया जा सकता । किन्तु उक्त पंक्तियों में किए गए विवेचन से यह अवश्य सिद्ध किया जा सकता है कि "स्वामी जी एक ऐसी गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पक्षपाती थे जिसके अन्तर्गत शिक्षित समाज पूर्णरूप से सभ्य, सशक्त, सर्वथा सम्पन्न एवं आनन्दित हो सके।"

डॉ० गणेशदत्त शर्मा
पूर्व प्राचार्य
लाजपतराय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
साहिबाबाद (गाजियाबाद)
१०/९८, सेक्टर–३
राजेन्द्रनगर, साहिबाबाद।

सन्दर्भ संकेत :

१. स्वामी दयानन्द – सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास ११
२. वही, समुल्लास ३
३. सूक्तिसागर, रमाशंकर गुप्त, देखें – "माता"
४. वही
५. वहीं – माँ
६. दयानन्द – सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास २
७. मनुस्मृति, अध्याय २ श्लोक १४५
८. यास्क, निरुक्त – १–४–१२

गुरुकुल कांगड़ी के सौ वर्ष
'एक संघर्ष का इतिहास'

मैंने गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय का सौ वर्ष का इतिहास लिखा है, जो प्रकाशित होकर शीघ्र ही पाठकों तक पहुंच रहा है। इस सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों का आद्योपान्त अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर हमें आत्मालोचन करने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।

महात्मा मुंशीराम के मन में गुरुकुल शिक्षा पद्धति को प्रारम्भ करने का विचार यजुर्वेद मन्त्र का स्वाध्याय करते हुए अचानक मन में आया। उसी समय से गुरुकुल की स्थापना की कहानी प्रारम्भ हो गयी थी।

आर्य समाज का वह युग शास्त्रार्थ का युग था। प्रत्येक आर्य समाज का सदस्य स्वयं में एक मिश्नरी माना जाता था। लाला मुन्शीराम ने जब यह विचार आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सम्मुख प्रस्तुत किया कि गुरुकुल की शिक्षा पद्वति को इस युग में प्रारम्भ किया जाना चाहिए। उसी अन्तरंग सभा में इस विचार के पक्ष और विपक्ष के रुप में सदस्य विभाजित हो गये थे।

गुरुकुल कांगडी के इतिहास पर विचार करते हुए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है–

भारत में शिक्षा का संक्रमण काल

एक प्रसिद्ध कहावत है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इसी प्रकार एक दूसरी उक्ति है कि क्रिया पर प्रतिक्रिया अवश्य होती है। सन् १८०० ई० से शिक्षा के क्षेत्र में भारत में यह विवाद छिड़ा हुआ था कि भारतवर्ष में शिक्षा पद्धति भारतीय शिक्षा पद्वति के रूप में चालू रखी जाये। इन दोनों पक्षों के दावेदार अपने–अपने पक्ष में तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। पाश्चात्यवादी पक्ष के प्रबल पक्षधर मैकाले ने भारतीय शिक्षा के विरोध में एक नोट लिखते हुए लिखा कि इस समिति का अध्यक्ष होने के कारण उसने इस विषय में सक्रिय भाग नहीं लिया। यह नोट २ फरवरी १८३५ ई० को परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसने प्रसिद्ध तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा कि इस समय भारत में साहित्य शब्द का अभिप्राय भारत के प्राचीन साहित्य से न होकर अंग्रेजी साहित्य से है। इसी प्रकार विद्वान् व्यक्ति शब्द का प्रयोग संस्कृत या अरबी, फारसी का विद्वान् न होकर अपितु यह विशेषण उस व्यक्ति के लिए माना जाता है जो ब्रिटिश दार्शनिक "लॉक" के दर्शन या कवि मिल्टन के काव्य में निष्णात हो। इस प्रकार उन्होंने लिखा कि पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा भारत में आंग्ल भाषा के माध्यम से ही दी जा सकती है। मैकाले चार्टर के शब्दों में अपनी व्याख्या को वह वैसे ही मानता था। उसको मनवाने के लिए उसका दुराग्रह

भी था। उसका यह भी कहना था कि यदि मेरी इस व्याख्या को ठीक न समझा गया तो वह चार्टर के अनुभाग—४० को रद्द करने के लिए एक बिल प्रस्तुत करेगा। मैकाले की यह व्याख्या कानूनी दृष्टि से सही नहीं थी और चार्टर के संशोधन न करने वालों की इच्छा के विरूद्ध थी।

मैकाले का दूसरा तर्क यह भी था कि इन संस्थाओं को दी जाने वाली सहायता समाप्त कर देनी चाहिए। क्योंकि समाजोपयोगी शिक्षा न देने के कारण इन्हें बनाये रखने का कोई औचित्य नहीं था। जो शिक्षण संस्थायें जमीदारों की आमदनी के साथ बंधी हुई थी, उनके विषय में भी उसने कहा कि उस समय उनको उपयोगी समझकर यह व्यवस्था की गई थी। इसका अभिप्राय यह कभी नहीं था कि भविष्य में इन संस्थाओं को सदा सहायता राशि दी जाती रहेगी।

गुरुकुल की स्थापना के मूल कारण

संसार में जितने भी आविष्कार हुए हैं, उनमें अधिकतर आविष्कार प्रयोगशालाओं की एक विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा नहीं हुए हैं। कितने ही विज्ञान के मौलिक सिद्धान्तों की स्थापना भी किसी प्रक्रिया विशेष के द्वारा होकर के नहीं हुई है। इनमें हम उदाहरण रुप में प्रस्तुत कर सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण शक्ति के सिद्धान्त की स्थापना न्यूटन ने अपनी सहसा अन्तर्दृष्टि तथा अन्त: प्रज्ञा के अनुभव विशेष से उत्पन्न, यह अवधारणा बुद्धि भी अवतरित हुई कि यह सेब नीचे ही आकर क्यों गिरा, ऊपर क्यों नहीं गया ? उसे अचानक सूझा कि यह सेब नीचे इसलिए गिरता है कि भूमि में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है। जो वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है और उसी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से वस्तुओं में भार होता है। इसी प्रकार रेल के इंजन का अविष्कार भी श्री जेम्सवाट ने जब यह देखा कि बर्तन के ऊपर का ढक्कन भाप से हट गया है तो उसने ऊपर छोटी सी भार वाली वस्तु रखी, परन्तु उसने पुन: अवलोकित किया कि चाय के बर्तन का ढक्कन उस बर्तन के ऊपर से पुन: भाप ने फेंक दिया है। जेम्सवाट ने सहसा अपनी अन्तर्दृष्टि से निष्कर्ष रूप में यह पाया कि भाप में एक अद्‌भुत शक्ति है। उसको वैज्ञानिक विधि के द्वारा अत्यधिक उपयोगी बनाया जा सकता है, इसी से आगे चलकर रेल के इंजन का अविष्कार हो गया।

महात्मा मुन्शीराम स्वामी श्रद्धानन्द यजुर्वेद का स्वाध्याय कर रहे थे। स्वाध्याय करते हुए यह मन्त्र पढ़ा कि —

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्।
धिया विप्रोऽजायत।।

अर्थात् मेधावी प्रतिभा का विकास पर्वतों की उपत्यकाओं, नदियों के संगम के रमणीय स्थानों पर होता है। महात्मा मुशीराम ने जब इस मन्त्र का यह अर्थ पढ़ा तो सहसा उनकी अन्त:प्रज्ञा ने अन्तर्दृष्टि से यह सुझाया कि शिक्षा केन्द्र ऐसे शुद्ध वातावरण में होने चाहिए। उनके इस अन्त: प्रज्ञा से उत्पन्न विचार ने उनके हृदय में यह भाव उत्पन्न किए कि ऐसे शिक्षा केन्द्र की स्थापना करूंगा।

उनका यह अर्न्तदृष्टि से उत्पन्न गुरुकुल की स्थापना का विचार कैसे पूरा हो, इसके लिए वे रात दिन विचार करते रहते थे और यह संकल्प धारण करते रहते थे कि गुरुकुल खोलने का बीज कैसे बोया जाये, जिससे उत्पन्न होकर विकसित होता हुआ पूर्ण वृक्ष का रूप धारण कर सके।

जब आर्य समाज ने शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश किया तो आधुनिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा हेतु दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना की गयी। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज की स्थापना महात्मा हंसराज ने की थी। पंजाब के आर्य समाजियों का एक वर्ग डी.ए.वी. कालेज पद्धति से असंतुष्ट था, इस पक्ष का यह कहना था कि इन कालेजों में संस्कृत भाषा वेद शास्त्र और अन्य आर्य ग्रन्थों की समुचित व्यवस्था नहीं है। उनका यह भी मानना था कि इन कालेजों की स्थापना प्राच्य विषयों की शिक्षा के पठन–पाठन हेतु की गई थी, उन विषयों का यहाँ गौण स्थान कर दिया गया है। डी.ए.वी. कालेजों में भी अंग्रेजी साहित्य तथा आधुनिक विज्ञान की ही शिक्षा की प्रधानता है। इसका यह परिणाम हुआ कि डी.ए.वी. कालेज की मैनेजिंग कमेटी में मतभेद बढ़ता गया। जैसे कि इससे पूर्व अध्याय में यह लिखा जा चुका है कि अंग्रेजी शासकों ने प्राचीन विषयों की शिक्षा को तिलांजलि देकर केवल आधुनिक विषयों की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया था उससे भारतीय समाज के बुद्धिजीवी लोगों ने एक गहरा असन्तोष अनुभव किया। उसकी प्रतिक्रिया में महर्षि दयानन्द ने प्राचीन और आधुनिक विषयों को सम्मिलित करते हुए एक अद्‌भुत शिक्षा पाठ विधि अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में प्रतिपादित की। इसी से प्रभावित होकर आर्यसमाज के एक वर्ग ने डी.ए.वी. कालेजों की स्थापना की थी। डी.ए.वी. कालेजों की अवस्था भी अंग्रेजी सभ्यता की ओर उन्मुख होने लगी तो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में ऐसे बहुत से सदस्य थे जो डी.ए.वी. कालेजों की तीव्र आलोचना करने लगे। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उद्देश्यों में एक यह भी उद्देश्य था कि वेदों और अन्य प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करने के लिए आर्योपदेशक तैयार करने के लिए एक विद्यालय स्थापित करना। आर्योपदेशक विद्यालय की स्थापना की गयी, उसका अध्ययन काल तीन वर्ष तक रखा गया। इस उपदेशक विद्यालय में विशारद परीक्षा उत्तीर्ण छात्र लिए जाते थे। विद्यार्थियों के लिए यह आवश्यक था कि वे आश्रम में रहें और ब्रह्मचर्य का पालन करें।

२२ अक्टूबर १९०१ को सभा ने मुंशी अमन सिंह के दान को धन्यवाद सहित स्वीकार कर लिया और यह निश्चय किया कि इस भूमि में भवन निर्माण कर होली की छुट्टियों में २१ से २४ मार्च १९०२ में वहां गुरुकुल का उद्‌घाटन उत्सव किया जाए, क्योंकि गुरुकुल के लिए उपयुक्त भूमि प्राप्त हो चुकी है। इसलिए कांगडी गांव के दक्षिण में गंगा की उपधारा के मध्यवर्ती जंगल में जो खण्ड गुरुकुल भूमि के रूप में चुना गया था, वह कटींली झाड़ियों और ऊंचे–ऊंचे वृक्षों से परिपूर्ण था। महात्मा मुंशीराम उस स्थान पर भवन बनाने की दृष्टि से आ पहुंचे। यह जंगल

इतना घना था कि बहुत से हिंसक पशु भी वहां निवास करते थे, दिन में भी यहां आना जाना सुगम नहीं था। वहाँ कोई पगडंडी तक भी न थी, सड़क का तो प्रश्न ही न था, ऐसे दुर्गम जंगल के थोडे से भाग को साफ करके भवन के नाम पर कुछ झोपड़ियां बनवा ली गयी। यह भी निश्चय किया गया कि मार्च १९०२ से पहले ही गुजरांवाला से इस स्थान पर आया जाए। ताकि होली के दिनों में गुरुकुल का उद्घाटन उत्सव समारोह पूर्वक मनाया जा सके। यह भी अनुमान किया गया कि इस अवसर पर कम से कम एक हजार व्यक्ति इस उत्सव के अवलोकनार्थ अवश्य आयेंगे। इसलिए उनके आवास एवं भोजन आदि की व्यवस्था वहाँ जंगल में ही की जानी थी। उत्सव के व्यय के लिए दो हजार रुपयों की अपील भी की गयी। यहां आने के लिए जनता में इतना अद्भुत उत्साह था कि खर्च की व्यवस्था करना कोई विकट समस्या न थी। परन्तु इस अवसर पर एक अन्य विघ्न उपस्थित हो गया। हरिद्वार में प्लेग फैल गया, जिसके कारण हरिद्वार के समीपवर्ती क्षेत्र में उत्सव का आयोजन करना कठिन सा प्रतीत होने लगा। इसलिए इस अवस्था में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपनी अन्तरंग सभा में १९ जनवरी १९०२ के अधिवेशन में निश्चय किया कि गुरुकुल के उद्घाटन का उत्सव सार्वजनिक रूप से न करके निज रूप में किया जाय। साथ ही इसी अधिवेशन में यह भी निश्चय कर लिया गया कि गुरुकुल को यथाशीघ्र गुजरांवाला से कांगड़ी में लाया जाय।

कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल

गुजरांवाला से रेल के रिजर्व डिब्बे में सब ब्रह्मचारी महात्मा मुंशीराम के साथ २ मार्च १९०२ (फाल्गुन वदी १०, संवत् १९५८) को मध्याह्न के बाद हरिद्वार के स्टेशन पर पहुँचे। भण्डारी शालिग्राम, लाला मुंशीराम के परम सहायक एवं अभिन्न साथी थे। वह जालन्धर से इस मंडली के साथ हो गये थे। उस समय तक हरिद्वार में प्लेग का प्रकोप कम हो चुका था, गुरुकुल का दूसरा वार्षिकोत्सव सन् १९०४ में २८ फरवरी से २ मार्च तक मनाया गया। इसमें आर्य स्त्री–पुरुष बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए। इस अवसर पर दूर–दूर से गुरुकुल कांगड़ी में जो लोग आये, एक अनुमान के अनुसार उनकी संख्या लगभग ५०००० थी। २१ नये ब्रह्मचारियों का वेदारम्भ संस्कार किया गया। २१००० रुपये चन्दे में प्राप्त हुआ। ज्यों–ज्यों लोग गुरुकुल शिक्षा प्रणाली से परिचित होते चले गये त्यों–त्यों गुरुकुल कांगड़ी की लोकप्रियता में वृद्धि होती चली गयी। यही कारण था कि छठे वार्षिकोत्सव पर ५०००० की उपस्थिति थी और सातवें पर ६०००० की उपस्थिति थी। छठे वार्षिकोत्सव पर ५४५०० रुपयों की प्राप्ति हुई और सातवें पर ३ लाख २८ हजार रुपयों का चन्दा प्राप्त हुआ। देखते–देखते ही गुरुकुल कांगड़ी का वार्षिकोत्सव आर्य समाज के सबसे बड़े मेले के रूप में विख्यात हो गया।

गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सवों की व्यवस्था के सम्बन्ध में संक्षिप्त रुप में विवेचना करना



तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में स्वर्ण जयन्ती समारोह में दीक्षान्त भाषण दे रहे हैं।



गुरुकुल कांगड़ी में सन् १९५८ ई० के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर तत्कालीन केन्द्रीय शिक्षामन्त्री डॉ० के०एल० श्रीमाली, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति-मुख्याधिष्ठाता (उपकुलपति) एवं आचार्य प्रियव्रत जी के साथ।

आवश्यक प्रतीत होता है। उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आये स्त्री–पुरुषों के लिए छप्पर की झोंपड़ी की कतारें बनाई जाती थी। जिनका कोई किराया नहीं लिया जाता था। दर्शक सपरिवार उनमें निवास करते, गंगा में स्नान करते और भोजनालय में शुद्ध सात्विक भोजन करते। यह भी आवश्यक था कि भोजन बनाने के लिए शुद्ध घी का प्रयोग किया जाये। विदेशी चीनी का प्रयोग नहीं किया जा सकता था। भोजन की दरें गुरुकुल द्वारा निर्धारित कर दी जाती थीं। भोजनालयों पर कड़ा निरीक्षण रहता था। ५०००० के लगभग स्त्री–पुरुषों का प्रबन्ध न केवल निवास और भोजन का था, अपितु उनकी सुरक्षा और चिकित्सा की भी व्यवस्था आवश्यक थी। यह सब व्यवस्था सरकार तथा पुलिस की सहायता के बिना की जाती थी। गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव की व्यवस्था इतनी उत्तम होती थी कि कांग्रेस के वैलगांव (१९२४) अधिवेशन में महात्मा गांधी ने गुरुकुल के वार्षिक उत्सवों के प्रबन्ध की प्रशंसा करते हुए कहा था कि मेरी राय में (कांग्रेस के) प्रतिनिधियों के खाने और रहने के बारे में स्वामी श्रद्धानन्द जी से नसीहत लेनी चाहिए। क्योंकि मुझे याद है कि उन्होंने अपने गुरुकुल के सन् १९१६ के उत्सव पर आने वाले मेहमानों के लिए जिस तरह से फूंस के छप्पर लगवाये थे उनमें दो हजार से अधिक खर्च नहीं हुआ था, भोजन के लिए दुकानें थीं। रहने के लिए किसी से कोई खर्च नहीं लिया गया। इस तरह ४०००० लोग गुरुकुल के मैदान में बिना दिक्कत तथा प्राय: बिना खर्चे के रह सके थे। चाहे कांग्रेस उनकी हर्फ्वे–हरप नकल न करे किन्तु उसको ही सामने रखकर बेहतर सस्ता इन्तजाम करना निहायत जरूरी है।

वार्षिकोत्सव पर अनेक ऐसे स्त्री–पुरुष आते थे जो कई प्रकार से गुरुकुल की सहायता करते थे, इससे यह प्रतीत होता है कि गुरुकुल लोगों के हृदय में कितना लोकप्रिय था। बहुत से ऐसे सज्जन थे जो स्वेच्छापूर्वक अपने–अपने नगरों से धन एकत्रित करके भेजा करते थे। इनमें लुधियाना निवासी लाला लम्बूराम नय्यड का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

गुरुकुल कांगड़ी का विकास

महात्मा मुंशीराम जिस स्वप्न को लेकर इस आरण्यक वन में तपस्या कर रहे थे, वे इस संस्था को महान् एवं आदर्श संस्था के रुप में देखना चाहते थे। इसलिए वह यही विचार करते रहते थे कि यह संस्था किस प्रकार प्राचीन काल के भारद्वाज आश्रम, नैमिषारण्य के शौनक मुनि के आश्रम, नालन्दा और विक्रमशिला के महाविहारों तथा तक्षशिला के विद्यापीठों के सदृश हों। गुरुकुल वास्तव में एक ऐसी संस्था के रुप में विकसित हो जहाँ समस्त विषयों अथवा विद्याओं का अध्ययन–अध्यापन होता हो। जिस प्रकार का वर्णन नारद मुनि ने महर्षि सनत कुमार के समक्ष करते हुए अनेक विद्याओं का अर्थात् विश्व की समस्त विद्याएं जिनका अध्ययन करना अपेक्षित है, उन सबका अध्ययन गुरुकुल कांगड़ी में हो। वे सामान्य संस्कृत पाठशाला और उपदेशक

विद्यालय नहीं बनाना चाहते थे। यह सही है कि वेद–वेदाङ्ग के पठन–पाठन को प्रमुखता देने के प्रबल पक्षधर थे। उसके साथ वे यह भी मानते थे कि आधुनिक ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा देना आवश्यक प्रतीत होता है। ब्रिटिश सरकार द्वारा जो शिक्षा प्रणाली उस समय प्रचलित थी, महात्मा जी की स्मृति में उसमें बहुत से दोष थे। क्योंकि उसमें प्राचीन भारतीय विद्याओं का कोई स्थान नहीं था। उस प्रणाली में न केवल आंग्ल भाषा एवं उसके साहित्य पर अधिक बल दिया गया था अपितु समस्त विषयो की पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी ही रखा गया था इसलिए महात्मा मुंशीराम ऐसी शिक्षा पद्वति को विकसित करना चाहते थे जो वास्तविक रुप में राष्ट्रीय हो, जिसमें आर्य साहित्य, भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा को समुचित स्थान प्राप्त हो जिससे वहां पढने वाले छात्रों व स्नातकों पर भारतीय संस्कृति का पूर्ण रूपेण प्रभाव हो। देश के प्रति सच्चा अनुराग हो और कर्तव्य पालन की भावना का विकास हो। इस दिशा में जो उन्होंने तपस्या एवं अनथक परिश्रम किया उसके परिणाम स्वरूप गुरुकुल ने केवल १५ वर्ष में एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का स्वरूप प्राप्त कर लिया। सन् १९१७ में गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की कुल संख्या ३४० हो गयी थी। २७६ ब्रह्मचारी विद्यालय विभाग में थे और ६४ छात्र महाविद्यालय में थे। यद्यपि वर्तमान दृष्टि में यह संख्या कोई बहुत अधिक नहीं थी, परन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जितने छात्र गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त करते थे, उन सबको वहीं छात्रावास में रहना भी अनिवार्य था। उस समय विद्यार्थियों का प्रवेश ७ या ८ वर्ष की आयु तक ही हो सकता था। इस छोटी सी आयु में प्रथम अथवा द्वितीय श्रेणी में ही प्रवेश हो पाता था। महाविद्यालय में भी उन्हीं छात्रों का प्रवेश होता था जो विद्यालय विभाग (गुरुकुल) से विद्याधिकारी उत्तीर्ण करके ही आये हों, किसी हाईस्कूल उत्तीर्ण छात्र को महाविद्यालय में प्रवेश नहीं दिया जाता था। बीसवीं शती के प्रथम चरण में गुरुकुल के छात्रावास का अनुशासन बड़ा ही कठोर था। इसलिए बहुत ही कम माता–पिता अपनी सन्तान को गुरुकुल में भेजना पसन्द करते थे। गुरुकुल उस युग में किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं लेता था। इसलिए गुरुकुल के धन प्राप्ति के स्रोत केवल दान ही थे। अत: सदैव धन की कमी ही रहती थी। इसलिए इन परिस्थितियों में १५ वर्ष में जो गुरुकुल का विकास हुआ वह अत्यधिक सन्तोषजनक ही था।

अत: गुरुकुल कांगड़ी का विकास होकर जो उसने एक विशिष्ट स्वरुप प्राप्त कर लिया था उसमें प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकार के विषयों एवं ज्ञान–विज्ञान के अध्ययन की समुचित तथा सन्तुलित व्यवस्था हीं थी। गुरुकुल की विद्याधिकारी परीक्षा के लिए निम्नलिखित विषय निर्धारित थे – संस्कृत साहित्य, संस्कृत व्याकरण, धर्म शिक्षा, आर्य भाषा, गणित, अंग्रेजी, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र, विज्ञान (रसायन, भौतिक) और आलेख्य। धर्म शिक्षा में मनुस्मृति, सत्यार्थ प्रकाश तथा वेद शास्त्रों के कतिपय सन्दर्भ पढ़ाये जाते थे। संस्कृत व्याकरण में अष्टाध्यायी, सिद्धान्त कौमुदी या काशिका और महाभाष्य के नव भाग को रखा गया था। हिन्दी

का स्तर बहुत ऊंचा था। गणित सबके लिए अनिवार्य था। इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र और अर्थशास्त्र एवं विज्ञान भी सबको अनिवार्य रुप में पढ़ने पडते थे। विज्ञान को इतिहास आदि के विकल्प रूप में नहीं रखा गया था।

भारत सरकार और गुरुकुल

लगभग गुरुकुल की स्थापना के साथ–साथ ही राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अनेक आन्दोलन आरम्भ हो गये थे। इन आन्दोलनों में कई प्रकार के विचारधारा वाले आन्दोलन जोर पकड़ने लगे थे। अनेक क्रान्तिकारी भी देश को स्वतन्त्र कराने के लिए सक्रिय थे। बंग–भंग के पश्चात् इन आन्दोलनों ने उग्र रुप धारण कर लिया था। इण्डियन नेशनल कांग्रेस में गरम और नरम दो दल बन गये थे। १९०७ में सूरत कांग्रेस अधिवेशन में गरम दल कांग्रेस में पृथक् हो गया था। इन आन्दोलनों का प्रभाव पंजाब पर भी स्वाभाविक रूप से पड़ता था। इन की तेजी के कारण सरकार का रुख भी सख्त हो रहा था। पंजाब में आर्यसमाज का प्रचार अधिक था इसलिए स्वतन्त्रता आन्दोलन वहां पर अधिक जोर पकड़ने लगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्याभिविनय में अनेकों बार आर्यों का चक्रवर्ती राज्य हो इस भावना का उल्लेख किया है। इससे आर्य समाज विशेष रूप में स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़ चढ़कर भाग ले रहा था। महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि कोई कितना ही कहे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वही सर्वोत्तम होता है। प्राचीन भारतीय गौरव का चित्र खीचते हुए महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में वर्तमान दुर्दशा का भी करूण चित्र खींचा था। उन्होंने भारतीयों को स्वराज्य और देश के लिए प्रेरणा दी थी। डॉ० एच.डी. ग्रीस ओल्ड के शब्दों में महर्षि यह चाहते थे कि 'भारत में भारतीयों का अपना धर्म रहे और भारत की प्रभुसत्ता भारतीयों के ही हाथ में रहे'। जहां–जहां भी आर्य समाज का वार्षिक अधिवेशन तथा उत्सव होते थे उनमें आर्य समाज के भजनोपदेशक एवं प्रचारक आर्य समाज के सिद्धान्तों के साथ–साथ स्वदेशी राज्य और देश की उन्नति के लिए साधारण जनता को प्रेरणा देते थे। पंजाब में आर्य समाज ऐसी जीती जागती संस्था थी, क्योंकि उसके पास सैकड़ों शिक्षण संस्थाएं थीं, उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द ने कहा था कि विदेशी राज्य कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राजा चाहे कितना ही बुरा क्यों न हो वह विदेशी राजा से अच्छा होता है। इसलिए अपनी शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से आर्य समाज एक प्रकार से तत्कालीन सरकार का विरोध करते हुए उसके विरोध में साधारण जनता में जागृति पैदा कर रहा था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अंग्रेजी सरकार अपने विद्रोहियों के रूप में आर्य समाज को उत्तरदायी माने।

गुरुकुल में बाढ़

गुरुकुल में अचानक प्राकृतिक आपदा बाढ़ के रूप में आ गई थी। समस्त गुरुकुल बहकर

तबाह हो गया। वहां से गुरुकुल को नये स्थान पर लाया गया था।

नये स्थान पर गुरुकुल का पुन: निर्माण

जून १९२१ में स्वामी श्रद्धानन्द के गुरुकुल से चले जाने पर पं० विश्वम्भरनाथ को उनके स्थान पर मुख्याधिष्ठाता नियुक्त किया गया। पं० विश्वम्भरनाथ गुरुकुल की स्थापना के समय से ही पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तरंग सभा के सदस्य और कोषाध्यक्ष एवं उपप्रधान रह चुके थे। अत: वे एक पुराने अनुभवी व्यक्ति थे। स्वामी जी को उन पर विश्वास भी था कि 'उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो मेरे और तुम्हारे लिए इतना प्रिय रहा, तुम्हें साहसपूर्वक बाहर आ जाना चाहिए।' स्वामी जी की इस इच्छा को पूर्ण करने की दृष्टि से मुख्याधिष्ठाता बनकर पं० विश्वम्भर नाथ गुरुकुल आ गये। उस समय आचार्य पद पर स्वामी सत्यानन्द की नियुक्ति की गयी। इस प्रकार इन दो प्रतिष्ठित आर्य नेताओं द्वारा गुरुकुल का कार्यभार संभाल लिया गया। शिक्षा की व्यवस्था प्रो० रामदेव के हाथों में ही थी जो अब उपाचार्य के पद पर नियुक्त हो गये थे। सन् १९२४ में स्वामी सत्यानन्द के त्याग—पत्र देने पर श्री रामदेव जी आचार्य बन गये और उपाचार्य के पद पर विश्वनाथ विद्यालंकार की नियुक्ति की गयी। इस प्रकार नये पदाधि ाकारियों के हाथों में गुरुकुल के संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व आ गया।

पं० विश्वनाथ एक अच्छे प्रशासक और कार्य प्रबन्ध में निपुण व्यक्ति थे। गुरुकुल की आन्तरिक व्यवस्था के सन्दर्भ में उन्होंने महत्वपूर्ण परिवर्तन एवं सुधार किये। सर्वप्रथम उन्होंने गुरुकुल के बजट को नये ढ़ंग से व्यवस्थित किया। गुरुकुल में होने वाले व्यय को ब्रह्मचारियों के भरण—पोषण और शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर दिया। इसके साथ यह भी नियम बना दिया गया कि एक विभाग का धन दूसरे विभाग पर खर्च न किया जाये। भरण—पोषण में केवल वही धन खर्च किया जाये, जो संरक्षकों से फीस द्वारा और छात्रवृत्तियों की आमदनी से प्राप्त होता है। गुरुकुल में शिक्षा नि:शुल्क थी। इसलिए यह नियम बनाया गया कि शिक्षा पर वह धन व्यय किया जाये जो दान से प्राप्त हो। अनेक दानियों ने ३०००० रुपये तथा उसके लगभग राशिदान देकर गुरुकुल में अनेक पीठ (CHAIRS) स्थापित किये। उनसे ब्याज की आय से प्राप्त धन को शिक्षा में व्यय किया जाता था। उस समय ब्याज की दर ६ प्रतिशत थी। ३०००० रुपये का ब्याज एक हजार आठ सौ रुपये वार्षिक प्राप्त होता था जो प्राध्यापक के १५० रुपये मासिक वेतन के लिए पर्याप्त होता था। अनेक दानियों ने २ हजार से लगाकर ३० हजार ४३० रुपये तक की राशियां इस प्रयोजन से प्रदान की थी। कि उनके ब्याज से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को छात्रवृत्तियां दी जाती थी।

गुरुकुल कांगड़ी की अनेक विघ्न बाधाओं को पार करती हुई यह यात्रा १९५० ई० तक आ पहुंची थी। १९५० ई० गुरुकुल कांगड़ी को विश्वविद्यालय की मान्यता के प्रयास प्रारम्भ हो गये थे।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का आगमन

एक जून १९५८ को भारत सरकार द्वारा नियुक्त विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्ययन डॉ० चिन्तामणि द्वारिकानाथ देशमुख सात सदस्यों के साथ गुरुकुल कांगड़ी के निरीक्षणार्थ आये थे। वेद मन्दिर में उनका स्वागत किया गया। इस आयोग के अध्यक्ष ने उत्तर देते हुये कहा कि यह आयोग शीघ्र ही भारत सरकार को अपनी रिपोर्ट में विश्वविद्यालय बनाने की संस्तुति करेगा।

इस प्रकार १९६२ में गुरुकुल कांगड़ी को डीम्ड टु. बी. विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त हो गयी थी।

गुरुकुल के स्नातकों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में बढ़ चढ़कर भाग लिया था। स्वतन्त्रता आन्दोलन में अनेक स्नातक अनेक बार जेल में गये थे।

आर्य समाज के आन्दोलन में भी यहां के स्नातकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हैदराबाद आन्दोलन, हिन्दी आन्दोलन, गौरक्षा आन्दोलन और शुद्धि आन्दोलन आदि समस्त आन्दोलनों में यहां के स्नातकों ने कुशल नेतृत्व प्रदान किया था। गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का द्वितीय शताब्दी में प्रवेश ५ मार्च २००२ से प्रारम्भ हो गया है।

डॉ० जयदेव वेदालंकार
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
दर्शन विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

वैदिक सरस्वती
(विदुषी नारी के रूप में)

भारतीय संस्कृति में 'सरस्वती' विद्या की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रथित हैं यद्यपि वैदिक देवशास्त्र के अनुसार वैदिक देवताओं में इनका स्थान गौण[1] माना गया है, तथापि वैदिक देवियों में वे निस्सन्देह महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं। ऋग्वेद के तीन सूक्तों[2] तथा विभिन्न मंत्रों में (कुल मिलाकर लगभग साठ मन्त्र) विविध रूपों में देवी सरस्वती की स्तुति की गई है। इन मन्त्रों का पर्यालोचन करने पर प्रकट होता है कि वैदिक संहिताओं में 'सरस्वती' को भिन्न–भिन्न अर्थों की वाचिका माना जा सकता है, विभिन्न विद्वानों ने इस विषय में अपनी अपनी दृष्टि से विपुल विचार–विमर्श किया है। किन्तु शतपथ ब्राह्मण के वचन –**'योषा वै सरस्वती[3]** को आधार बनाकर सरस्वती की विदुषी नारीपरक अर्थ करते हुए तद्नुसार मन्त्रों की व्यावहारिक व्याख्या करने का जो एकमात्र प्रयास महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य में दृष्टिगत होता है, उसी का निदर्शन प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाद्य है।

'सरस्वती' पद सृ गतौ धातु से मतुप् एवं डीप् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है और स्रन्दन, गति अथवा सरणशीलता का सूचक है[4] अथवा रस शब्द से वतुप् प्रत्यय और डीप् प्रत्यय लगाकर 'सरस्वती' शब्द बनता है, वही वर्णवैपरीत्य और वर्णागम होने पर 'सरस्वती' बन जाता है।[5] इस व्युत्पत्ति के आधार पर अधिकांश विद्वानों[6] ने यही मत प्रतिपादित किया है कि सरस्वती एक ऋग्वैदिककालीन नदी थी जो अब गङ्गा–यमुना के सङ्गम–स्थल पर प्रयाग में लुप्त हो चुकी है।[7] वैदिक कोश निघण्टु[8] तथा आधुनिक युग की अनेक भूवैज्ञानिक खोजों एवं निष्कर्षों से भी इस मत की पुष्टि की गयी है[9], साथ ही उसे गङ्गा[10], यमुना[11], सिन्धु[12] इत्यादि भिन्न भिन्न नदियों से एकाकार सिद्ध करने के भी प्रयास किये गये हैं। वैदिक संहिताओं के अनेक मंत्र भी आपातत: इसी तथ्य को प्रमाणित करते प्रतीत होते हैं, कई स्थलों पर तो सरस्वती को 'नदीतमे' कहकर सम्बोधित भी किया गया है। किन्तु सूक्ष्मतापूर्वक सरस्वती के लिए प्रयुक्त विशेषणों तथा उसके वाचक अन्य पर्यायों का आकलन करते ही सुव्यक्त हो जाता है कि वैदिक सरस्वती केवल भौतिक या भौगोलिक स्वरूप वाली बाह्य नदी मात्र नहीं है, अपितु उसका कोई अन्य विशिष्ट अर्थ अवश्य है। यह भले ही माना जा सकता है कि परवर्ती वेदेतर साहित्य में जिस सरस्वती का नदीरूप में चित्रण है, उसका नाम वैदिक काल में वह कोई नदी रही होगी[13] जो ऋग्वेद एवं अन्य वेदों के मन्त्रों में एक दिव्य शक्तिसम्पन्न, ज्ञान एवं वैदुष्य की अधिष्ठात्री वाग्देवी के रूप में स्तुत है।

अत: सूक्ष्म अन्वीक्षण करने वाले गम्भीर व्याख्याताओं का मत है कि वैदिक 'सरस्वती' कोई नदी नहीं, अपितु स्वयं वाणी की अधिष्ठात्री वाग्देवता है। इस मत का आधार स्वयं ऋग्वेद[१४] तथा शतपथ ब्राह्मण[१५] का वचन है। उक्त ऋचा पर भाष्य करते हुए सायण ने इसका अर्थ 'माध्यमिका वाक्'[१६] किया है। अनेक अन्य वैदिक मन्त्रों[१७] से भी इस अर्थ को पुष्टि मिलती है, वस्तुत: वाणी सरणवती होती है। अत: उसे सरस्वती[१८] कहना सार्थक ही है। सरस्वती चतुष्पदा है—परा, पश्यन्ति, मध्यमा और वैखरी[१९] उसके चार पाद हैं, ऋक्, यजु और साम भी इसी सरस्वती के विशदीकृत रूप हैं – **सरस्वत्या सर्वे वेदा अभवन्।**[२०]

वाक् के रूप में यह सरस्वती सप्तस्वरात्मिका और सर्वनादात्मिका है क्योंकि सब स्वर और नाद उसी से निकलते हैं वाणीरूप यह सरस्वती ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति का स्रोत है, यह तथ्य स्पष्टत: यजुर्वेद के एक मन्त्र में सङ्केतित है जहाँ कहा गया है कि पाँच नदियाँ सरस्वती की ओर जाती है[२१] और वहाँ से अपनी—अपनी (विषयरूपणी) शक्ति के प्रवाह को प्राप्त करती हैं तथा पाँचों रूपों में विभक्त होती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाणी ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषयों —रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि को विभक्त कर वर्णित करती है। अन्यत्र कहा गया है कि ज्ञानेन्द्रिय रूप अधिष्ठानों में प्रतिष्ठित सात ऋषियों द्वारा जो रस सम्भृत किया जाता है, उसे आठवीं वाक्[२२] बनकर यह सरस्वती तरङ्गित करती है— इन्द्रियों के सात छिद्र ही सात तीर हैं जहाँ सात ऋषि सतत् ज्ञानकोष की वृद्धि करते हैं।[२३] उन ऋषियों द्वारा रक्षित रस को मधुर क्षीर के रूप में दोहन करने वाली[२४] सरस्वती प्रवाहमयी, प्रसादमयी वाणी है, वही वाग्देवता है।[२५]

स्पष्ट है कि वैदिक 'सरस्वती' के स्वरूप के विषय में विद्वानों के भिन्न—भिन्न मत हैं जिन्हें मुख्यत: तीन दृष्टियों से वर्गीकृत किया जा सकता है –

१. नदी के रूप में – प्रकृतिवैज्ञानिक दृष्टिकोण
२. नदीभिन्न रूप में – मानवतारोपी दृष्टिकोण
३. वाणी या देवी या[२६] अन्य रूप में – प्रतीकात्मक दृष्टिकोण[२७]

किन्तु उल्लेखनीय है कि अधिकांश शोधकर्ताओं और व्याख्याकारों ने इनमें से प्रथम अथवा अन्तिम दृष्टि से ही सरस्वतीपरक वैदिक मन्त्रों की व्याख्या की है और यद्यपि उनकी व्याख्याओं से सरस्वती के भौतिक, प्राकृतिक, देवतापरक अथवा प्रतीकात्मक अर्थों की अभिव्यञ्जना अवश्य होती है, तथापि उसके आध्यात्मिक या व्यावहारिक स्वरूप पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इस दृष्टि से महान् वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द का योगदान अद्वितीय है जिन्होंने न केवल वेदों के विलुप्त गौरव को पुन: प्रतिष्ठापित किया, अपितु वेदभाष्य का पर्यालोचन करने पर प्रकट होता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से तो उन्होंने विज्ञानस्वरूप परमात्मा को ही सरस्वती रूप में प्रतिपादित किया है और कहा है – **'सरो विविधं विज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा सरस्वती'** अर्थात् जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द—अर्थ—सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत्

होवे, इससे उस परमेश्वर का नाम सरस्वती है।[२८] ध्यातव्य है कि महर्षि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य की भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक वेदमन्त्र का मुख्य एवं अनिवार्य अर्थ तो ईश्वर है[२९] क्योंकि उनकी दृढ़ मान्यता है कि चारों वेदों के प्रत्येक मन्त्र का प्रयोजन उस एक, अद्वितीय ईश्वर की उपासना ही है।

तथापि, उन्हें वेदार्थ की त्रिविध प्रक्रिया मान्य है और वे स्वयं प्रायः वेदमन्त्रों के द्विविध अर्थ तो अवश्य ही प्रस्तुत करते हैं। आध्यात्मिक और व्यावहारिक। तदनुसार वैदिक सरस्वती की व्यावहारिक व्याख्या करते हुए उन्होने अनेकशः इसकी विदुषी नारीपरक व्याख्या ही की है। उनकी व्याख्या को निराधार नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक ओर तो स्वयं शतपथब्राह्मण का वचन इस व्यावहारिक अर्थ को सङ्केतित कर रहा है और दूसरी ओर वेद के अनेक मन्त्र अर्थ–सङ्गति के द्वारा इस मत को प्रमणित कर रहे हैं। यह तथ्य वेदमन्त्रों में आये सरस्वती के वाचक शब्दों और विशेषणों से भी पुष्ट होता है तद्यथा –

१. अकवारी – ऋ. ६/६१/४ – अकुत्सितगमना (सायण)
२. अनुमति – अथर्व. ५/७/४
३. अम्ब – ऋ. २/४१/१६
४. अम्बितमे – २/४१/१६
५. असुर्या – ऋ. ७/९६/१
६. आपद्रुषी – ऋ.६/६१/११
७. आयसी (पूः) – ऋ. ७/९५/१
८. उपस्तुत्या – अथर्व. ६/६१/१३
९. ऋतावरी – २/४१/८
१०. कन्या – ऋ. ६/४९/७ (कमनीया–दयानन्द)
११. गृणाना – ऋ. ७/६९/३ (उपदिशन्ति–दयानन्द)
१२. गौरी – ऋ. १/१६४/११
१३. घृताची – ऋ. ५/४३/११
१४. घोरा – ऋ. ६/६१/१७
१५. चिकितुषा – अथर्व० ६/६१/१३
१६. चित्रायुः – ऋ. ६/४९/७
१७. चेतन्नी सुमतीनां – यजु. २०/८५
१८. चोदयित्री सुनृतानां – यजु. २०/८५
१९. जागृवि – यजु. २१/३६
२०. तनूपा – यजु. २१/३१

२१. तन्यतु – ऋ. १०/६५/१३
२२. त्रिषधस्था – ऋ. १०/६५/१३
२३. देवितमे – ऋ. २/४१/१६
२४. धियावसुः – ऋ. ३/२८/१
२५. धीनामवित्री – ऋ. ७/९७/२
२६. धृषती – ऋ. २/३०/८
२७. पावका – ऋ. १/३/१०
२८. पावमानी – यजु. ३४/५५
२९. पावीरवी – ऋ. ६/४९/७
३०. पारावतघ्नी – ऋ. ६/६१/२
३१. प्रिया – ऋ. ६/६१/१०
३२. प्रियतमे – ऋ. ७/९५/५
३३. बृहती – ऋ. ६/६१/१३
३४. भद्रा – ऋ. ६/६१/४
३५. मधुमती – अथर्व. ५/७/४
३६. मरुत्वती – ऋ. २/३१/८
३७. मरुत्सखा – ऋ. ७/९७/२
३८. यजता – ऋ. ५/४३/११
३९. यशोभगिनी – यजु. २/२०
४०. वर्धयन्ती – ऋ. ६/६१/१२
४१. वावृधाना – ऋ. ७/९५/१
४२. वाजनीवती – ऋ. ६/६१/४
४३. वीरपत्नी – ऋ. ९/४९/७
४४. वृघ्नी – ऋ. ९/६१/७
४५. वृत्रहा – ऋ. ९/३/१०
४६. शग्मा – ऋ. ५/४३/११
४७. शत्रुजया – ऋ. २/३०/८
४८. शन्तमा – अथर्व. ७/६८/३
४९. शिवा – अथर्व. ७/६८/३
५०. शुचि – ऋ. ७/९५/२
५१. शुभ्रे – ऋ. ७/९५/६

५२. सख्या – ऋ. ६/६१/१४

५३. सजोषा – ऋ. ६/४९/७

५४. सप्तधातु – ऋ. ६/६१/११

५५. सप्तधा – ऋ. ६/६१/११

५६. सप्तस्वसा – ऋ. ७/३६/६

५७. साधयन्ती धियम् – ऋ. २/३/८

५८. सिन्धुमाता – ऋ. ७, ९५/२

५९. सुजुष्टा – ऋ. ६/६१/१०

६०. सुदुघा – यजु. २०/७५

६१. सुभगा – ऋ. ७/९५/४

६२. सुमृडीका – अथर्व. ७/६८/३

६३. सुयमा – ऋ. ९/८१/४

६४. स्तुवाना – ऋ. ७/९६/३

६५. हविष्मती – ऋ. यजु. २०/७४

६६. हिरण्यवर्तनि – ऋ. ६/६१/७

इन विशेषणों और उनके विशेष्यरूप में आये 'सरस्वती' पद की विदुषी नारीपरक व्याख्या के द्वारा महर्षि दयानन्द ने नारी की उदात्त सामाजिक स्थिति, अवदात अधिकारों एवं महनीय कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निर्देश सूत्रित किये हैं तद्यथा –

(अ) 'सरस्वती' को ज्ञान–विज्ञानवती विदुषी नारी[३०] का पर्याय बताकर महर्षि दयानन्द ने यह संङ्केत दिया है कि श्रेष्ठ समाज का आधार सुशिक्षित नारी ही है। उसे 'सरस्वती' इसीलिए कहा गया है कि उसके अन्दर प्रशस्त विद्या–सलिल तरङ्गित होता रहता है,[३१] वह अपने विद्या–जलों से सबके जीवनों को पवित्र करती है और सबको सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। एक मन्त्र का भावार्थ करते हुए वे लिखते है कि "स्त्रियों के बीच में जो विदुषी स्त्री हो, वह स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्याा की वृद्धि हो"।[३२] यही भाव अन्यत्र एक ऋचा के अर्थ से इस प्रकार मुखरित होता है – "हे प्रशस्त विज्ञानयुक्त विदुषी स्त्री ! तू हमारी सत्य और असत्य में विभाग करने वाली बुद्धि को प्राप्तव्य पदार्थों में भूमि की भांति संभाल और विशेषता प्रदान कर"।[३३]

(आ) विदुषी नारी यानि सरस्वती केवल सुशिक्षित एवं ज्ञान–विज्ञान–सम्पन्न ही न हो, अपितु **'वाङ्मती'** भी हो[३४] ताकि अपना ज्ञान दूसरों तक सम्प्रेषित कर सके। इसीलिए उसे वाणी के समान[३५] कहा गया है– जैसे वाणी सुशिक्षा की प्रापिका और ज्ञापिका होती है, वैसे ही शुद्ध ज्ञानसम्पन्न वाङ्मती नारी। जैसे नदी अपना प्रबल वेगयुक्त लहरों से पर्वतों की प्रखर उन्नत

शिलाओं को यूँ तोड देती है जैसे कोई अनायास कमलनाल को तोड़ता है, वैसे ही विदुषी नारी अपनी बलवती वाणियों और प्रज्ञा से विरोधियों के कुतर्कों को काट देती है और इनके शब्दजाल रूप पारावार को भेद देती है। ऐसी विदुषी नारी वस्तुतः वन्दनीय है।[३६]

(इ) ऐसी विदुषी एवं ज्ञानविज्ञानयुक्ता नारी कन्या[३७] के रूप में जब गृहस्थि में प्रवेश करती है तो प्रशस्तज्ञानयुक्त पत्नी[३८] और प्रशंसित गृहणी[३९] बनती है। सबको पवित्र करने वाली, कमनीय गुणकर्म–स्वभाव वाली, अद्भुत जीवन वाली, वीर पति की पत्नी विदुषी नारी सबको उत्कृष्ट ज्ञान और कर्म का उपदेश करती है तथा प्रीतिपूर्वक सबकी सेवा करती हुई अपनी प्रशस्त वाणी से सबको सुख देती है।[४०]

(ई) **'प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्'**[४१] का उद्घोष करने वाली महर्षि दयानन्द की सुदृढ़ वाणी थी कि माता ही सन्तति की निर्माता होती है। इसीलिए 'सरस्वती' को उन्होंने विदुषी सुशिक्षिता माता[४२] का वाचक माना है और ऋचा का भाष्य करते हुए कहा है कि जो विदुषी एवं विज्ञानयुक्त वाणी से समृद्ध माता अन्नादिकों के साथ विद्यमान होकर अपनी प्रशस्त विद्या और क्रिया से हमारी बुद्धियों की रक्षा करती है, उसकी रक्षा करो। भाव यह है कि "माताजनों को चाहिए कि अपनी सन्तानों को बाल्यावस्था में अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् बनाकर उनके साथ अतुल सुख भोगें।[४३]

(उ) परिवार का और समाज का कल्याण करने वाली ऐसी विदुषी नारी 'सरस्वती' सबका भला करती है, स्वयं अकुत्सित आचरणवाली ज्ञान–कर्म–परायणा वह विदुषी सबको ज्ञानवान् बनाती है, सदुपदेश देती है और अतिशयज्ञान सम्पन्न विद्वानों के समान प्रत्येक पदार्थ के गुण– धर्म बताती है।[४४] उसे 'सरस्वती' कहने का एक आधार यह भी है कि वह आयुर्वेदज्ञान रूप 'सरः' से युक्त है[४५] तथा अपने वैद्यकशास्त्र के ज्ञान से[४६] सबका हित साधती है। वह अपनी सन्तानों को ऐसे अन्न खिलाती है जिनसे रोग उत्पन्न नहीं होते – **'अनमीवा इष आ धेह्यस्मे'**[४७]।

यही नहीं, किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक आघात पहुंचाने पर विदुषी नारी अपनी सद्भावना और सदुपदेश रूपी घृत से उस घाव को भर देती है।[४८]

(ऊ) ऐसी विद्या–सुशिक्षित और प्रशस्त वाणीयुक्त विदुषी नारी केवल गृहणी के रूप में नहीं, अपितु विज्ञानयुक्ता अध्यापिका के रूप में भी 'सरस्वती' है क्योंकि 'सरः' का अर्थ 'वेदादि शास्त्रविज्ञान' भी है।[४९] इस दृष्टि से 'नदीतमे' पद का अर्थ भी सङ्गत सिद्ध होता है, तद्यथा –

अम्बितमे – या अम्बतमे अध्यापयति सा अतिशयिता तत्सम्बुद्धौ (अबिशब्दे)

नदीतमे – अतिशयेन अव्यक्तविद्योपदेशिके (नद् अव्यक्ते शब्दे)

सरस्वती – अतिशयेन बहुविज्ञानवति

अम्ब — मात: अध्यापिके[५०]

उक्त मन्त्र का भावार्थ करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते है — "जितनी कुमारियाँ हैं वे विदुषी नारियों के पास जाकर विद्या अध्ययन करें और उनसे प्रार्थना करें कि आप हमें विद्या और सुशिक्षा से सम्पन्न बनाईये"।[५१] स्पष्टत: इस प्रकार के व्यावहारिक एवं सामयिक अर्थ करके, महर्षि ने स्त्री—शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी उत्कट अभिलाषा एवं वेद की महत्ता प्रकट की है जो आज भी सर्वथा समीचीन है। ऐसी विद्या—प्रकाश से आरोचमान विदुषी नारी जब ज्ञान सलिलों को बरसाती हुई उपदेश करती है तब वह एक वेद, दो वेद, चार वेद, चारो वेदो के साथ उपवेद, चार वेद और चार उपवेद तथा नवां व्याकरण इन सब शास्त्रों को पढकर अन्यों को पढ़ाती है और सब मनुष्यों का कल्याण करती है।[५३]

(ए) इस विदुषी सरस्वती से समाज और राष्ट्र को अनन्त अपेक्षायें हैं क्योंकि वह केवल अपना ही नहीं, अपने परिवार और परिवेश का भी परिष्कार करती है। इसलिए उससे यह प्रार्थन उचित ही है कि हे विदुषी (सरस्वती), तू देवनिन्दक प्रवृत्तियों को पूर्णत: नष्ट कर दे। विद्या के ढकने वाले मायावी जनो द्वारा उत्पन्न की हुई अविद्यारूप प्रजा को नष्ट कर और सब मनुष्यों को रक्षक वेदवाणियाँ प्राप्त करा। हे उत्तम कर्मों का आचरण करने वाली विदुषी, तू इन मानवों के लिए ज्ञान सलिल प्रवाहित कर।[५४]

ऐसी मूर्त सरस्वती यानि प्रबुद्ध विदुषी नारी का समाज में सम्मान होना स्वाभाविक है। इसीलिए एक अन्य मन्त्र का आशय भी उक्त रीति से व्याख्या करने पर युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। "समाज को दिव्य बनाने के इच्छुक जन विदुषी नारी सरस्वती को आदरपूर्वक बुलाते हैं। यज्ञ का ताना तने जाने पर भी विदुषी नारी को आदरपूर्वक बुलाते हैं। विदुषी नारी सम्मान देनेवाले को वरणीय ऐश्वर्य, उपदेश, सुख आदि प्रदान करती है"।[५५] यही तथ्य एक प्रसिद्ध स्मृतिवचन में विशदयता व्यक्त हुआ है।[५६] इसमें सन्देह नहीं कि विदुषी नारी अपने ज्ञान—विज्ञान की शिक्षा से महान् ज्ञान—प्रवाह को तरङ्गित कर देती है और (मानवजाति के) समस्त ज्ञानों, विचारों और कर्मों को उद्भाषित कर देती है।[५७] ऐसी दिव्यज्ञानसम्पन्न परम विदुषी पर ही सब जीवन आश्रित है और उससे यह प्रार्थना करना भी सार्थक है कि हे देवी ! तू विद्यावृद्धों के बीच आनन्दित हो और हमारी प्रजा को उपदेश कर।[५८] हे विदुषी नारी, जो तेरा ज्ञानरूप स्तन बड़ा ही विश्रान्तिप्रद और आनन्ददायक है, जिससे तू हमारे अन्दर समस्त वरणीय गुणों को पुष्ट करती है, जो रमणीयताओं का आधान करने वाला और दिव्य सम्पदा प्राप्त करने वाला है, उसे यहां पिलाने का उपक्रम कर।[५९]

इस भांति, उक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि वैदिक सरस्वती का विदुषी नारी के रूप में साकार, सकारात्मक एवं सार्थक स्वरूप वस्तुत: आज भी नारी—शक्ति के

उद्‌बोधन हेतु सक्षम है – ऐसी मूर्तिमती, प्रज्ञावती 'सरस्वती' सदा सर्वत्र वरणीय है। वेद मन्त्रों की ऐसी व्यावहारिक एवं प्रेरक व्याख्या करने वाले महर्षि दयानन्द के हृदय में स्त्री जाति की उन्नति की कितनी उच्च परिकल्पना थी, यह भी इस दिग्दर्शन से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु इस व्याख्या को अप्रामाणिक कहकर निराकृत नहीं किया जा सकता क्योंकि यह सर्वथा वैदिक प्रमाणों पर आधृत है।[६०] न ही यह कहा जा सकता है कि महर्षि दयानन्द ने निघण्टु में परिगणित 'सरस्वती' के अन्य दोनों अर्थों – नदी एवं वाक्[६१] की सर्वथा उपेक्षा की है, क्योंकि यत्र–तत्र उन्होंने अपने वेदभाष्य में वे दोनों अर्थ भी सङ्केतित किये हैं[६२] किन्तु उनका विशेष बल 'सरस्वती' को विदुषी नारी रूप में प्रस्तुत करने पर ही रहा है, इसमें सन्देह नहीं। आश्चर्य तो इस बात का है कि उनसे पूर्व और पश्चात् किसी अन्य व्याख्याकार ने शतपथ ब्राह्मण के उक्त वचन को ध्यान में रखकर सरस्वती–परक मन्त्रों की व्याख्या का ऐसा प्रयास क्यों नहीं किया? वैदिक सरस्वती को नदीरूप में व्याख्यायित करने वाले पाश्चात्य एवं पौरस्त्य विद्वान् केवल उसके भौतिक रूप का ही साक्षात्कार कर सके तो वाणी या वाग्देवी के रूप में उसे समझने वाले कुछ सूक्ष्मदर्शी व्याख्याकारों ने उसका अमूर्त एवं प्रतीकात्मक चित्रण किया। परवर्ती काल में पुराणकारों ने उसे विद्या की देवी के रूप में परिकल्पित कर उसका मूर्त रूप तो आंका, किन्तु वह वास्तविकता नहीं, केवल आदर्श के रूप में पूजा की वस्तु बन गई। अत: नारी जाति के अनन्य हितैषी एवं सर्वोच्च उन्नायक महर्षि दयानन्द को ही यह श्रेय जाता है कि उन्होंने साक्षात् सजीव मानुषी नारी को इस उदात्त 'सरस्वती' पद पर आरूढ़ होने का न केवल अधिकार, अपितु आह्वान भी दिया है– जहां उसका निष्कलङ्क चरित्र ही उसका धवल वेश हो, उसकी अद्‌भुत कार्यकुशलता ही उसके चार हाथ हों, उसी कलाप्रियता एवं सङ्गीतप्रवणता ही उसे वीणाधारणी बनायें, केवल हाथ में पुस्तक न हो, अपितु उसके अन्दर वेदविद्यायुक्त प्रशस्त ज्ञान हिलोरें मारता हो, उसकी सुरुचिपूर्णता उसे कमलासना बनाये और दूसरों की जड़ता को विनष्ट कर विवेक के स्रोत को प्रवाहित करे, सरणवती, रसवती, सरस्वती बने और यह वैदिक प्रार्थना वस्तुत: फलवती होर–हे विदुषी मां, हम अप्रशस्त से हो गये हैं, हमें प्रशस्त बनाओ –

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वती।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।। [६३]

डा० शशिप्रभा कुमार
सहाचार्या, संस्कृत अध्ययन केन्द्र
पं० जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

सन्दर्भ संकेत

१. त्रिपाठी, गयाचरण, वैदिक देवता, भाग दो, पृ. ६७१

२. ऋ. ६/६१, ६/९५ एवं ७/९६

३. श. ब्रा. २/५/१/११

४. निरूक्त, ९/२६

५. कुसुमलता आर्य, सरस्वत्या: स्वरूपम्, Journal of the International Dayananda Veda-Peetha, Vol VII. No. 2,19.

६. Khan. M.I. Sarasvati in Sanskrit Literature, P.I.

७. Godbole. N.N. Rgvedic Sarasvati, ABORI, XIII (I-IV), 22

८. निघुण्टु, १/१३

९. Tripathy, Evluation of the Sarasvati concept, Bhavan's Journal XIV, (16) 48.

१०. Muir, Original sanskrit Texts, V P 388.

११. Wadia, Geology of India, PP. 285-6

१२. Lal S.K. Female Divinities in Hindu Mythology and Ritual, P. 170

१३. Singh S.P. Philosophy of Dirghatamas, P. 125

१४. सरस्वती—वाक्। ऋ. ३/४/८

१५. वाग् सरस्वती। शतपथ, ७/५/१/३१

१६. उक्त मन्त्र पर सायणभाष्य

१७. ऋ. २/१/११, अथर्व ५/७/५

१८. अथर्व. १९/४०/१

१९. नारायणपूर्वतापित्युपनिषद, ५

२०. गायत्री उपनिषद, आरम्भ

२१. यजुर्वेद ३४/११

२२. तस्यासत ऋषय सप्ततीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना। शतपथ

२३. यजु. ३४/५५

२४. ऋग्वेद १०/४०/१

२५. तैत्तिरीय ब्राह्मण, २/३/११/१

२६. Joshi. J.R. Minor Vedic Deities, P. 159

२७. Tkatshaw Dwight A., Mother Goddess and other Goddesses (Ed. V. Subramaniam), P.77

२८. सत्यार्थप्रकाश, प्रथम समुल्लास

२९. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, प्रतिज्ञाविषय

३०. ऋ. २/३०/८, २/४१/८, /२४१/१७ तथा यजु. १९/८३, २१/५१–५२ पर दयानन्द भाष्य

३१. रामनाथ वेदालंकार, वैदिक नारी, पृ. ८४

३२. यजु. २०/८५ पर दयानन्द भाष्य

३३. त्वं देवि सरस्वती अवा वाजेषु वाजिनि। रदा पूषेव नः सनिम्। ऋ. ६/६१/६

३४. यजु. २१/५३ पर द. भा.

३५. ऋ. १/१६४/४९, १/८९/३, २/३/८ तथा यजु. १०/३४ पर द. भा.

३६. इयं शुष्मेभिर बिसखा इवारूजत्। सानु गिरीणां ततिषोभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नीम् अवसे सुवृक्तिभिः। सरस्वतीम् आ विवासेम धीमिभः।।
ऋ. ६/६१/२

३७. ऋ. ६/४९/७ पर दयानन्द भाष्य

३८. यजु. १९/८२, १९/१५

३९. यजु. २०/५९

४०. पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्नाभिरक्षिछद्र शरणं सजोषा दुराधर्ष गृणते शर्म यंसत्।। ऋ. ६/४९/७

४१. सत्यार्थप्रकाश, द्वितीय समुल्लास

४२. यजु. २०/६४

४३. प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर् वाजिनीवती। धीनामवित्रयवस्तु। ऋ. १/६१/४

४४. ऋ. ७/६९/३

४५. सरः प्रशस्त आयुर्वेदबोधो विद्यते यस्याः सा। यजु. १९/१२ पर द. भ.

४६. यजु. २१/३६ पर द. भा.

४७. ऋ. १०/१७/८

४८. अथर्व. ७/५७/१

४९. बहुविधं सरो वेदादिशास्त्रविज्ञानं विद्याते यस्याः तां विज्ञानयुक्ताम् अध्यापिकां स्त्रियम्। यजु. ९/२७ पर द. भा.

५० ऋ. २४१/१६ पर द. भा.

५१. उक्त पर भावार्थ

५२. ऋ. १/१६४/४१ पर द. भा.

५३. ऋ. १/१६४/४१ पर द. भा.

५४. सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषम् एभ्यो अस्रवो वाजिनीवति।। ऋ. ६/६१/३

५५. सरस्वतीं देवयतो हवन सरस्वतीम् अध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वाय दात्। ऋ. १०/१७/७

५६. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।। मनुस्मृति ३/५६

५७. महो अर्ण: सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।। यजु. २०/८६

५८. त्वे विश्वा सरस्वती, श्रितायंषि देव्याम्।
शुनहोत्रैषु मत्स्व, प्रजां देवि दिडिढ न: ।। ऋ. २/४१/१७

५९. यस्ते स्तन: शशयो यो मयोभूर येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्नधा वसुविद् या: सुदत्र: सरस्वती तमिहि धातवे क:।। ऋ. १/१६४/४९

६०. शतपथ ब्राह्मण २/५/१/११

६१. निघण्टु, १/११ और १/१३ (पूर्वोक्त)

६२. नदी—ऋ. ६/५२/६ पर द. भा.
वाक्—ऋ. १/३/११, ३/५४/१३, ६/६१/१०, ७/४०/३ पर द. भा.
यजु. २०/५५, २०/८५, २१/४२ पर द. भा.

६३. ऋ. २/४१/१६

जगन्-माता सरस्वती हमारा कल्याण करें

हम देव तुल्य बनें और सुभगा सरस्वती हमारा कल्याण करें।

तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रंमदितिं दक्षमस्रिधम्।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगामयस्करत्।।

ऋक्.

राहूगणो गोतमः—ऋषिः। विश्वेदेवाः—देवता। जगती—छन्दः।

ऋक्. १-८९-३

अर्थ— (वयम्) (राहूगणः गोतमः), भौतिक सुखों का त्याग करके, उत्तम ज्ञानी बनने की कामना वाले हम साधक जन, (भगम्) उत्तम मार्ग से कमाये जाने वाले धन को देने वाले भग देवता को (मित्रम्) सब से स्नेह करने की सीख देने वाले मित्र देवता को (अदितिम्) अदिति=प्रकृति के अनुकूल चलने से स्वास्थ्य खण्डित नहीं होता, अतः स्वास्थ्य को ठीक रखने वाली अदिति देवता को (अस्रिधंदक्षम्) कार्यसिद्धि में किसी प्रकार का रिसाव=स्रवण न होने देने वाले आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय (दक्षता) को देने वाले दक्ष देवता को (अर्यमणम्) काम, क्रोधादि का संयम और आर्यजनों का मान करने की सीख देने वाले अर्यमा देवता को (वरुणम्) द्वेष आदि दुर्भावनाओं का निवारण करने वाले वरुण देवता को (सोमम्) शान्ति और आनन्द का नियन्त्रण करने वाले सोम (अन्तिम रसत्त्वीर्य) देवता को तथा (अश्विनौ) सारे जीवन को अपने वश में रखने वाले प्राणापन्न देवता को (हुवे) पुकारते हैं, अर्थात् उनके जैसा बनने की स्पर्धा-प्रयत्न करते है। कैसे? (पूर्वया—निविदा) प्राचीनतम काल में उच्चारित वेदवाणी में वर्णित विधि के द्वारा। उसके परिणाम स्वरूप (सुभगा सरस्वती) सब सौभाग्यों की स्वामिनी तथा सब को सौभाग्य प्राप्ति की राह दिखाकर सौभाग्यशाली बनाने वाली सरस्वती (वेदवाणी) (नः मयः करत्) हम सब का कल्याण करे।

मनन— वेद में देवताओं के आह्वान, स्तुति या पूजा से केवल शाब्दिक नाम से पुकारना ही इष्ट नहीं है। आह्वान, हवामहे, हूमहे आदि शब्द 'ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च' धातु से बने है। इस का अर्थ है कि नाम लेकर हम पुकारते है, लेकिन अपने क्रियाकलाप से उनके जैसे बनने की स्पर्धा या बराबरी करते हैं। स्तुति और पूजा परिचर्या आदि में भी, देवताओं के गुणों की बराबरी करने की बात निहित है। जब हम परमेश्वर को भंग कहकर पुकारते हैं, तो उसका तात्पर्य होता है कि वह जैसे उत्तम धनों का स्वामी है, वैसे हम भी उत्तममार्ग से धन कमाकर, उसके जैसे धनों के स्वामी बनकर दूसरों को धन देकर उनके भाग्य का निर्माण करने वाले बनने में उसकी

बराबरी करने लगें।

निवित् नि. १–११ में वाणी वाची शब्दों में पठित हैं। पूर्वया निविदा–कहने से वेदवाणी में वर्णित विधि द्वारा अर्थ करने का कारण है कि इस समय विश्व में प्राप्त ज्ञानवाणियों में, सब से सनातन वाणी ऋग्वेद की वाणी है।

अन्य सब देवताओं को हमने पुकारा है, अर्थात् उनके जैसा बनने का प्रण किया है, और उसे पूरा करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। किन्तु

सरस्वती– आदर्श माता, आदर्श ज्ञानदात्री और दिव्यताओं तथा दिव्यदृष्टि सम्पन्ना है। इसलिए वह कर्मफल देने वाली जगद्धात्री है।* वह हमें जो फल देगी, वह हमारे कर्म का पूर्णफल होगा, न कम न अधिक इसलिए उससे केवल कल्याण करने की प्रार्थना की है, बराबरी करने का संकल्प नहीं किया। इस प्रकार यहां मनुष्य को कर्म करते रहने की प्रेरणा दी है, फल की कामना न करने का संकेत किया है। **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'**

भग– भाग्य का देवता है, 'भज सेवायाम्' से बना है। हमें अपने सात्विक प्रयत्न से जितना मिला है। उसका सहर्ष सेवन करते हुए संतुष्ट रहना चाहिए। भाग्य से अधिक सेवन करने की कामना की तो हम उसमें आसक्त होकर गलत मार्ग पर पड़ जाएंगे। हमारा पतन हो जाएगा, और यदि भाग्य से प्राप्त को भी सेवन न किया, तो कमज़ोर हो जाएंगे। समाज में सम्मिलित होने में संकोच होने लगेगा।

अदिति– शब्द अ+दिति (दो अवखण्डने) से बना है। अदिति–प्रकृति का समुचित मात्रा में सेवन मनुष्य को नीरोग और स्वस्थ रखता है। इसलिए कहा जाता है–पहला सुख नीरोगी काया अथवा **'धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम्।'**

दक्ष– दाक्ष्यं कर्मसु कौशलम्। किसी भी काम को समुचित रूप से करने में दक्षता है। जितना काम करना है, न उस से कम न अधिक तथा जितने समय में वह होना चाहिए, उतने ही समय में पूरा करना, न देर लगे और जल्दबाजी में कुछ छोड़ देना या गलत कर देना। इस दक्षता के लिए आवश्यक है–अस्रिधम्–(स्रिवुगतिशोषणयो:) प्रगति हो किन्तु शोषण–सूखना–कभी न रह जाए।

अर्यमा– आर्यान् मानयति, श्रेष्ठजनों का आदर सत्कार। साथ ही दुष्टजनों का केवल मान न करना ही पर्याप्त नहीं, उन्हें उद्धारित और दण्डित करने का प्रयत्न भी आवश्यक है। इसीलिए न्यायकर्त्ता को वेद में अर्यमा कहा गया है।

अश्विनौ– देवभिषजौ–प्राणापानौ वा। 'प्राणाय नमः यस्य सर्वमिदं वशे।' (अथर्व. ११–४–१) **'प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न। प्राणोह सत्यवादिनमुत्तमे लोके आदधत्।'** (अथर्व. ११–४–११) **'प्राणायामैर्दहेद् दोषान्।'**

सोम– 'सोम रसपान से देव अमर हो जाते हैं' का अर्थ है–शरीर में उत्पन्न वीर्य (सोमरस) की रक्षा से मनुष्य अपनी पूर्ण आयु तक स्वस्थ रहता है। सोम का अर्थ चन्द्रमा भी है, चन्द्रमा 'चदि आह्लादे' से बना है, जैसे चन्द्रमा को देखकर आह्लाद होता है, वैसे ही वीर्य की रक्षा से मनुष्य में निराशा नही होती, आह्लाद और शान्ति रहती है। इसलिए सोम को श्री अरविन्द ने शान्ति और आनन्द का देवता माना है।

***सरस्वती–**

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
प्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि।।

ऋक्. २–४१–१६

माताओं में सर्वोत्तम माता सरस्वती है, क्योंकि यह जगन्माता है। निष्क्रिय ब्रह्म, सृष्टि उत्पत्ति के समय क्रियावान् होकर अपने को ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप में विभक्त करके उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और प्रलय (संहार) का कार्य करना है। ब्रह्मा की पत्नी या शक्ति का कल्पितनाम सरस्वती है। आत्मा 'पिता वै जायते पुत्रः', की तरह 'माता वै जायते पुत्री' की मान्यता के अनुसार सरस्वती को ब्रह्मा की पुत्री भी माना जाता है। ब्रह्मा या प्रजापति जगत्पिता है, तो सरस्वती जगन्माता स्वतः एव सिद्ध है।

इसीलिए इस मन्त्र में अन्य देवताओं की स्तुति-आह्वान (स्पर्धा) करके उनके जैसा बनने के लिए किया गया है। किन्तु जगन्माता सरस्वती से केवल कल्याण करने की प्रार्थना की गई है। काठ. ३८–८ में सरस्वती को कामनाओं को प्रदान करने वाली कहा है। **'दुहे कामान् सरस्वती।'**

मनोहर विद्यालङ्कार
श्यामसुन्दर–राधेश्याम
५२२, कटरा–ईश्वर भवन
खारी बावली, दिल्ली–६

गुरुकुल

निकल तमारि तिमिर के वन से,
        हँसे धान्य कलमों के बीच।
उड़ने लगी खेत महकाती,
        कण–कण बिखर गुलाबी कीच।। १।।

लगी उचकने नभ को छूने,
        कँलगी पहन बैंजनी काँस।
फोड़ पोखरों के शृंगाटक,
        पाखी लगे बुझाने प्यास।। २।।

हरित तृणों से बुने हुए थे,
        चादर से प्रशस्त मैदान।
करते नित विश्राम जहाँ पर,
        मुखरित सन्ध्या और विहान।। ३।।

शान्त तपोवन के परिसर में,
        पंक्तिबद्ध संन्यासी चीड़।
धर्मध्वजा से खड़े हुए थे,
        ओढ़े हुए अरुण आपीड़।। ४।।

दिए सुनाई तभी मधुर स्वर,
        उद्‌गाता के कानों में।
ज्यों मुरली की तान मनोहर,
        फूट पड़े वीरानों में।। ५।।

ऊषा देवी विकल वासना,
        वृकी हमारी दूर करो।
अमरबेल–सी व्योम वृक्ष से,
        धरती पर फैलो उतरो।। ६।।

एक तुम्हारा शीतल आँचल,
हर लेता संताप सभी।
नहीं बंधते मनोजयी को,
पापों के कुन्ताप कभी।। ७ ।।

गुरुकुल क्या था एक तपोवन,
ज्ञानपीठ विद्या गुरु का,
होता था संस्कार जहाँ पर,
बिना भेद देवासुर का।। ८।।

जहाँ छात्र उठ अरुणोदय में,
नित्य कर्म कर करते योग।
स्नान, ध्यान, जप, अग्निहोत्र कर–
करते मंत्रों का विनियोग।। ९ ।।

फिर वेदांग सहित वेदों का,
करते सब सस्वर स्वाध्याय।
मंत्र, देवता, मंत्रकार का,
हृदयंगम करते अभिप्राय।। १० ।।

चौंसठ कला छहों शास्त्रों के,
अन्वेषित कर भाव नवीन।
लेखन, भाषण, ग्रन्थ निबन्धन,
में होते थे पूर्ण प्रवीण।। ११ ।।

शास्त्रार्थों की तीव्र शाण पर,
चढ़ा प्रखर मेधा के बाण।
पण्डित मान मुकुट खण्डित कर,
पाते पुरस्कार सम्मान।। १२ ।।

मध्यान्तर में सात्त्विक भोजन,
दूध, दही, घृत, ओदन, पूप।
रुचि के साथ ग्रहण करते थे,
पके हुए फल ऋतु अनुरूप।। १३ ।।

तदनन्तर निश्चिन्त भाव से,
        एक प्रहर करके विश्राम।
शोधकक्ष में समाधिस्थ से,
        करते नव प्रयोग अविराम।। १४ ।।

सन्ध्या होते ही क्रीड़ा का,
        करते छात्र विविध अभ्यास।
नाट्य भवन में नृत्य गान रत,
        करते हास और परिहास।। १५।।

फिर मरीचिमाली को देकर,
        सन्ध्या का अतिपावन अर्घ्य।
भाव पुरस्सर हो सब करते,
        गायत्री का जाप महर्घ।। १६।।

दीप शिखा के कनक हास में,
        कर फिर रात्रि सूक्त का गान।
लक्ष्य निष्ठ एकाग्रचित्त हो
        करते आत्मरूप सन्धान।। १७।।

अनुशासित जीवन चर्या का,
        अनुपालन कर नित्य सहर्ष।
शिष्य मण्डली सहित नभग ने,
        बिता दिए निज बारह वर्ष।। १८।।

मन में आया किन्तु एक दिन,
        होगी जब यह शिथिलित देह।
अर्थाभाव ग्रस्त गुरुकुल पर,
        घिर जाएँगे संकट मेह।। १९।।

दौड़ धूप कर दान माँगने,
        जाएगा निष्ठा से कौन?
सुख सुविधा जीवी शिक्षक तो,
        वृत्ति भोग करता हो मौन।। २०।।

शिक्षा की स्वायत्त महत्ता,
है समाज का गुरु दायित्व।
अनुदानों से रुँध जाता है,
शिक्षा का उन्मुक्त भविष्य।। २१।।

किसी एक सत्ता या दल के–
प्रति जो होती है प्रतिबद्ध।
वह शिक्षा स्वच्छन्द विचारों
को करती है सदा निरुद्ध।। २२।।

शिक्षा को स्वतंत्र रखकर ही,
हो सकता है युग निर्माण।
शिक्षा नहीं लाभ की पूँजी,
शिक्षा का सम्बल है दान।। २३।।

जोड़–तोड़ की राजशक्तियाँ,
लाती हैं संकट आपात।
नीति विटप को तोड़ फेंकता,
राजनीति का झंझावात।। २४।।

सत्ताधारी का निष्ठुर हित,
लेता है शिक्षा की ओट।
करता है अपदस्थ लोकमत,
जनहित पर करता है चोट।। २५।।

मैं कवि हूँ कविता जीते हैं,
गुरुकुल में मेरे सब छात्र।
उनको कभी न विस्मृत होते,
नूतन और पुरातन शास्त्र।। २६।।

शासन की काली छाया से,
शिक्षा को रखना है दूर।
आदर्शों का ओढ़ मुखोटा,
करे न इसका दोहन क्रूर।। २७।।

मेरी अपनी वंशागत निधि,
पूज्य पिता का राज्य विशाल।
दस भागों में क्यों न उन्हीं के,
द्वारा हो विभक्त तत्काल।। २८।।

पूज्य पिता ने वानप्रस्थ ले,
छोड़ दिया होगा साम्राज्य।
मेरे नौ अग्रज निज बल से,
भोग रहे होंगे अब राज्य।। २९।।

मैं भी अपना दाय भाग ले,
गुरुकुल को कर दूँगा दान।
नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण कर,
नित्य करूँगा श्रुतिरस पान।। ३०।।

इससे एक ओर गुरुकुल का,
अर्थाधार बनेगा पुष्ट।
शोध निरत नव ज्ञानार्जन में,
शिक्षक, छात्र रहेंगे तुष्ट।। ३१।।

उन्हें नृपति के सन्मुख जाकर,
नहीं माँगनी होगी भीख।
पूर्ण आत्मनिर्भर होने की,
उन्हें साधनी होगी सीख।। ३२।।

श्रम से रहित दार्शनिक जीवन,
पुस्तकीय पाण्डित्य अपूर्ण।
संघर्षों की चट्टानों से,
टकरा कर होता है चूर्ण।। ३३।।

शिक्षक के कर में रहता है,
नव पीढ़ी का मुक्त भविष्य।
प्रकट असाधारण मेधा की,
करता है वह शक्ति अदृश्य।। ३४।।

बनते और बिगड़ते रहते,
शिखर सभ्यताओं के रोज।
किन्तु ज्ञान के दिव्यभाल का
कभी न होता धूमिल ओज।। ३५।।

जो स्वेच्छया ज्ञानवर्धन का,
लेते हैं संकल्प अनन्य।
वे दाता सर्वस्व दान कर,
लेते बना जन्म निज धन्य।। ३६।।

राजकोष से गठित सुशिक्षा,
है सफेद हाथी के तुल्य।
अकर्मण्य कर नवयुवकों को,
कुंठित करती नैतिक मूल्य।। ३७।।

जाति–जाति या मनुज–मनुज में,
शिक्षा कभी न करती भेद।
वह आकाश सदृश व्यापक हो,
करती स्थापित नित्य अभेद।। ३८।।

धरती का विस्तार माप कर,
सागर की गहराई नाप।
नभ की नीली परत छाँट कर,
हरती प्रकृति जन्य परिताप।। ३९।।

शिक्षा पशुबल पूर्ण देह में,
आत्मशक्ति का चिर माधुर्य।
भर देती है हर स्पन्दन में,
संवेदन बौद्धिक चातुर्य।। ४०।।

कितने युग कितने समाज हैं,
करते जो पुनराविष्कार।
सत्ता शीर्ष कहाँ करता है,
विद्रोही विकास स्वीकार?।। ४१।।

छात्रों में प्रतिभा, मौलिकता,
        सृजनेच्छा का कर उन्मेष।
रचनात्मक शिक्षा हरती है,
        मनुज जाति के दुर्वह क्लेश।। ४२।।

पर बौद्धिक स्वातन्त्र्य छीनकर,
        करते जो शिक्षण प्रतिबद्ध।
गुणवत्ता से हीन विफल वे,
        करते ज्ञानप्रगति अवरुद्ध।। ४३।।

शिक्षा और स्वभाषा का है,
        एक अटूट अचल सम्बन्ध।
बिना मातृभाषा के गूँगा—
        होता है समाज जन अनध।। ४४।।

मानव—पशु में यही भेद है,
        पशु का बोध न होता शास्त्र।
किन्तु मनुज प्राचीन नया पढ़,
        रचता प्रेम दया के पात्र।। ४५।।

सुलभ लाभ की इच्छाएँ तज,
        दुर्गम पथ का कर अभ्यास।
शिक्षाव्रती संकटों में भी,
        खोता नहीं आत्मविश्वास।। ४६।।

संस्कृति का इतिहास मनोहर,
        शिक्षा का उन्नत सोपान।
जिस पर क्रमशः आरोहण कर,
        करता मनुज राष्ट्र—उत्थान।। ४७।।

सत्पुरुषों के पगचिह्नों पर,
        चलकर ही मिलती है सिद्धि।
मिलती है अतीत गौरव से—
        वर्तमान को ऋद्धि समृद्धि।। ४८।।

यदि आचार्य–शिष्य का युगपत्,
होता नहीं निकट सम्बन्ध।
तो समझो सुन्दर प्रसून को,
विकसित किन्तु निपट निर्गन्ध।। ४९।।

ज्ञान शक्ति के साथ कर्म का,
होता है यदि सतत प्रवाह।
तो युग की प्रत्येक शिरा में,
भर उठती है शक्ति अथाह।। ५०।।

इन्द्रिय संयम, ज्ञान, शील मिल,
करते हैं चरित्र निर्माण।
निर्भयता, स्वातंत्र्य–चेतना
का देकर अक्षय वरदान।। ५१।।

शिक्षा को व्यवसाय समझना,
है प्रबंध की भारी भूल।
व्यवसायों की होड़ बनाती,
शिक्षा को विलास के शूल।। ५२।।

भौतिक सुख के संग जोड़कर,
नैतिक मूल्यों के संस्कार।
पाशव जीवन के उपवन में,
रोपेंगे सेवा उपकार।। ५३।।

यह संभव होगा, होंगे जब,
निर्भर आत्म ज्ञान के केन्द्र।
एक घाट पर जल पीएँगे,
अजापुत्र के साथ मृगेन्द्र।। ५४।।

मेरा गुरुकुल अर्थ पुष्ट हो,
पूर्ण मुक्त हो करे विकास।
राजकीय शिक्षा का बदले,
यह आमूल चूल इतिहास।। ५५।।

राजकीय अनुदानों के–
प्रतिबन्धों से होकर स्वच्छन्द।
ज्ञान, मुक्ति का सतत लक्ष्य ले,
शिक्षा केन्द्र चले निर्द्वन्द्व।। ५६।।

यह विचार कर मुदित नभग ने,
किया अयोध्या को प्रस्थान।
जहाँ राज्य के भाग प्राप्त कर,
गर्वित थी मनु की सन्तान।। ५७।।

वैवस्वत मनु के पुत्रों में,
ज्येष्ठ श्रेष्ठ इक्ष्वाकु नरेश।
निज प्रचण्ड बल से अरि दल कर,
जीत चुके थे सभी प्रदेश।। ५८।।

दिनमणि खचित रत्न आस पर,
होते थे जब नृप आसीन।
पाद पीठ पर मुकुट झुकाते,
कृपा–मीन, सामन्त अधीन।। ५९।।

जन रंजन रक्षण में तत्पर,
लख नृप के अगणित उपकार।
यों प्रतीत होता था जैसे,
लिया अमरपति ने अवतार।। ६०।।

यज्ञ खीर की तरह पूज्य थी,
जिनकी स्वसा इड़ा उपनीत।
मनुजमात्र की धर्म शिक्षिका,
कहती जिसको ऋचा पुनीत।। ६१।।

जिनके निमि नामक बेटे ने,
स्थापित कर मिथिला का राज।
योग और वेदान्त शास्त्र में,
दीक्षित किया विदेह समाज।। ६२।।

जिनके सुत विकुक्षि से नामित,
हुआ अवध में दिनकर वंश।
जो अपने धन, बल, विवेक से,
कहलाए मनु कुल अवतंस।। ६३।।

वह विकुक्षि जो समरांगण में,
हो दुर्जेय पुरन्दरवाह।
असुरों का मद मर्दन करके,
बने पुरंजय पुरपति—नाह।। ६४।।

इस दिग्विजयी वंश की, दिव्यकथा का गान,
नाराशंसी रूप से, गाते पुण्य पुराण।। ६५।।

डॉ० विष्णुदत्त राकेश, डी.लिट्
प्रोफेसर हिन्दी एवं संकायाध्यक्ष
मानविकी संकाय,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

("नभग" महाकाव्य से साभार)

गुरुकुल की स्वत: सिद्ध विशेषताएं

इस गुरुकुल विश्वविद्यालय की कई विशेषताएं हैं जो भारत और सारे संसार के लिये महत्त्वपूर्ण होने के कारण मुझे खास तौर पर प्रभावित करती है।

गुरुकुल, प्राचीन आर्य संस्कृति के अनुशीलन के लिये प्रेरणा करता है। प्रारम्भिक इसाई चर्च की संस्कृति के साथ युनानी और रोमन सभ्यताओं के योग ने यूरोप में वर्तमान सभ्यता की नींव रखी। यह सभ्यता आज बिल्कुल नष्टप्राय हो चुकी है। रोमॉन रोलैण्ड ने लिखा था कि यूरोप में, बहुत से ऐसे सज्जन हैं जिन की सम्मति में यूरोपीय सभ्यता अपर्याप्त है। एक दूसरे बड़े विचारक कैसर लिंग ने जो वर्तमान पश्चिम के सब से बड़े विचारकों में से एक हैं लिखा है—"यूरोप अब मुझे बिल्कुल आकृष्ट तथा उत्साहित नहीं करता। मेरा विश्वास है कि एक नई जागृति जिस में वैदिक-बौद्ध-अरबी संस्कृतियों के साथ साथ वर्तमान युग की वैज्ञानिक उन्नति का मिश्रण हो, आधुनिक जीवन के आधार को विशाल बनाने और भ्रातृभाव तथा मनुष्यमात्र में प्रेममय सभ्यता के निर्माण में सहायक होगी जिसकी कि संसार उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है। वर्तमान शिक्षा में साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्रों में पाश्चात्यों के अनुभव को भारतीय अनुभवों के साथ सम्बद्ध किये बिना, भारतीय विद्यार्थियों पर जबर्दस्ती डाल दिया जाता है। यह भुला दिया जाता है कि अन्य जीवन के क्षेत्रों की तरह शिक्षा में भी अनुभव ही का नियम लागू है। गुरुकुल प्रणाली भारत के अपने अनुभवों, भारतीय आदर्शों और परम्परागत विश्वासों पर जोर देती है। जब परम्परागत विश्वास (Tradition) पक्षपात और अन्धविश्वास का साथी होता है तब यह संकुचित भाव को उत्पन्न करता है। परन्तु यही जब एक बड़े आदर्श को प्रकट करता है और बड़ी जाति की उत्कृष्ट उन्नति को सूचित करता है उस समय यह बड़ा उत्तेजक होता है। मैं भारतीय परम्परागत विश्वासों (Tradition) के शिक्षा सम्बन्धी महत्त्व का मानने वाला हूँ। वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को उन से अलग करती है। इस उन्नत प्राचीन जाति के वीरों और मुनियों की स्मृति जागृत करके विद्यार्थी का अपने उज्ज्वल भूत के साथ सम्बन्ध अवश्य रखना चाहिए।"

गुरुकुल नवजीवनप्रद शिक्षासिद्धान्त का प्रचारक है। आधुनिक शिक्षा में सदा भय और दबाव का साम्राज्य रहता है, किन्तु गुरुकुल तो नियन्त्रणमयी स्वतन्त्रता का कट्टर पोषक है। नियन्त्रण और स्वतन्त्रता में सम्बन्ध है। नियन्त्रणमय स्वतन्त्रता का आधार पारस्परिक सहानुभूति और विश्वास है। प्राचीन काल में गुरुओं के शिक्षणालयों में विद्यार्थियों को इसी आधार पर शिक्षा दी जाती थी। इस गुरुकुल में भी गुरु लोग अपने शिष्यों को वही शिक्षा और दीक्षा देते है। इस प्रकार से गुरुकुल ने उन हजारों स्कूल मास्टरों और कॉलिज प्रोफेसरों के सामने एक अनुकरणीय उदाहरण पेश किया है जो कि नियन्त्रण के नाम पर विद्यार्थियों के साथ सहानुभूति और विश्वास करने से इनकार करते हैं और परिणामत: शिक्षा को एक मशीन तथा स्कूलों को कारागार बनाते

हैं। गुरुकुल में शिक्षकों और विद्यार्थियों का सम्बन्ध पिता पुत्र का सम्बन्ध होता है। शिक्षा का प्रेममय सहवास से बहुत अधिक सम्बन्ध है। इस सच्चाई को गुरुकुल ने प्रत्यक्ष कर दिखाया है। वेदों में लिखा है कि 'गुरु शिष्य को अपने गर्भ में रखता है', 'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः'। गुरु अपने शिष्य पर वही कार्य करता है जो कि माता अपने गर्भस्थ बच्चे पर करती है। गुरु का काम सिर्फ किताबें रटाना नहीं है। सच्चा गुरु वह है जो पिता माता की तरह अपने शिष्यों की रक्षा, पालन और शिक्षण सदा प्रेम और बुद्धिपूर्वक करता है। गुरुकुल विद्यार्थियों के जीवन को अस्वाभाविक भागों में विभक्त नहीं करता किन्तु उनके शारीरिक मानसिक, आत्मिक तथा सामाजिक आदि हर प्रकार के विकास की पूरी उत्तरदायिता अपने ऊपर लेता है। स्कूल और घर के जीवनों को मिलाकर एक करने के लिये गुरुकुल एक अनुपम और आश्चर्यजनक प्रयत्न कर रहा है।

गुरुकुल में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। आजकल सरकारी शिक्षणालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाया गया है, परन्तु यह बात मनोविज्ञान शास्त्र के सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है। जहां तक मैं समझता हूँ शिक्षा का मूल सिद्धान्त यह है कि 'ज्ञात से अज्ञात की तरफ बढ़ना।' मेरा यह हर्गिज़ मतलब नहीं कि अंग्रेजी-भाषा सर्वथा निकम्मी और अनुपयोगी है। जिस अंग्रेजी-भाषा को मिल्टन, शेक्सपीयर, शैली, वर्नाड शा, बेकन और बर्क आदि विद्वानों ने अपनाया है वह अवश्य ही सद्विचारों और अनुभवों का खज़ाना है। अंग्रेजी हमें शेष सारे संसार से सम्बद्ध करती है। अंग्रेजी-भाषा द्वारा ही हम आधुनिक विद्वान् राजनीति, समाजशास्त्र तथा पाश्चात्य सभ्यता का परिचय प्राप्त करते है। किन्तु अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाये बिना भी हम यह लाभ प्राप्त कर सकते है। अंग्रेजी पढ़ो किन्तु उसे एक गौण भाषा की तरह पढ़ो। हमारी मातृभाषा हिन्दी है, उसका स्थान अंग्रेजी नहीं ले सकती। गुरुकुल द्वारा हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाना, मेरी समझ में, हिन्दुस्तान के शिक्षा सम्बन्धी और सामाजिक जीवनों में बहुत शीघ्र एक मौलिक क्रान्ति पैदा करेगा। जर्मनों ने जब पोलैण्ड को जीत लिया तो वहां के लोगों में से राष्ट्रीयता के भावों को समूल नष्ट करने के लिये उन्होंने यही सर्वोत्तम समझा कि पोलैण्ड के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम जर्मन भाषा हो। तदनुसार सब स्कूलों में पोलैण्ड की भाषा को हटाकर जर्मन-भाषा प्रचलित कर दी गई। स्कूलों के उन नन्हें-नन्हें बालकों को जर्मन-मास्टरों ने बहुत ही निर्दयता से पीटा जो कि पोलैण्ड की भाषा में प्रार्थना के भजन गाते थे। भाषा का मनुष्यों के विचारों और जीवनों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। अगर एक विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया जावे तो विद्यार्थियों में से स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति अवश्य नष्ट हो जायेगी। ये विदेशियों के विचारों और रीति-रिवाजों की नकल करने लगेंगे और उनमें से मानसिक और आत्मिक विकास का सर्वथा लोप हो जायेगा। स्वाधीन आयलैंण्ड के मन्त्रिमण्डल ने बिना कुछ विचारे ही यों ही गैलिक-भाषा को आयलैंण्ड की मातृभाषा नही बनाया था न ही 'नवीन यहूदी युवक संघ' के नेताओं ने बिना किसी मसलहत के, हिब्रू-भाषा को अपने प्राथमिक तथा उस श्रेणी

के स्कूलों में भी शिक्षा का माध्यम बनाया था। परन्तु वे लोग वस्तुत: समझते थे कि उनकी सभ्यता और राष्ट्रीयता की उन्नति उनकी ही मातृभाषा द्वारा हो सकती है।

गुरुकुल ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर विशेष बल देता है। ब्रह्मचर्य ही प्राचीन भारतीय सभ्यता का आधार है। संसार की ऊंची-ऊंची सभ्यताएं भोगविलास में पड़ कर तबाह होती रही हैं। परन्तु हिन्दू सभ्यता के आचार्यों ने इस बात को भली प्रकार समझ लिया था कि इन्द्रिय संयम ही उन्नतिशील सभ्यता का एक मात्र आवश्यक सिद्धान्त है। मेरी सम्मति में प्राचीन ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ ही अत्यन्त भावपूर्ण है। संस्कृत के अनेक शब्दों में आश्चर्यजनक सौन्दर्य होता है और उनके अन्दर अत्यन्त गम्भीर रहस्य भरे हुए होते है। 'ब्रह्मचर्य' शब्द के धात्वार्थ पर जरा विचार कीजिए। यह दो शब्दों के मेल से बना है। ब्रह्म और चर्य। जिसका अर्थ है 'ब्रह्म के साथ गति'। ब्रह्म का अर्थ है वृद्धि या विकास । ब्रह्म शक्ति का स्रोत है। ऐ नवयुवको! तुम में भी उस प्रजापति की दैवी शक्ति का अंश मौजूद है। क्या तुम उस के साथ सहयोग करते हो या भोगविलास तथा क्षणिक सुखों और स्वार्थों के लिये उसका दुरूपयोग करते हो। ब्रह्मचर्य ही सभ्यता और सदाचार का मूल है। यही राष्ट्रीयता का मूल मंत्र है। यही शक्ति का रहस्य है। संसार के सारे डाक्टरों की सारी दवाएं स्वास्थ्य की इतनी रक्षा नहीं कर सकतीं जितनी एक ब्रह्मचर्य द्वारा की जा सकती है। पुरुषत्व की शक्ति इन्द्रियसंगम से ही प्राप्त होती है। हिन्दू समाज और हिन्दू सभ्यता का प्राण ब्रह्मचर्य ही था। हिन्दू सभ्यता के प्राण स्वरूप ब्रह्मचर्य का हमने अपमान किया है इसीलिये हमारा हर तरह से अध:पतन हो गया है। मुझे पूरा निश्चय है कि भारत सम्बन्धी सारी समस्याएं नवीन पुरुषत्व और नवीन शक्ति के संचार से हल हो सकती है। जो जाति स्वतन्त्र होना चाहती है उसे पहिले बलि बनना चाहिये। सत्य तो यह है कि दौर्भाग्य से आधुनिक प्रचलित शिक्षा प्रणाली ने ब्रह्मचर्य पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । हमें इस बात पर हैरान नहीं होना चाहिये कि स्कूलों और कॉलिजों से खूब चालाक व्यक्ति पैदा होते है। देश को चालाकों की नहीं किन्तु सरल लोगों की आवश्यकता है, जो कि बलिष्ठ हों और देश की सेवा में अपने आप को बलिदान कर सकें। एक बात मैं साफ-साफ कह देना चाहता हूँ कि पाश्चात्य सभ्यता की नकल करने से हिन्दुस्तान का कुछ नहीं बन सकता। भारत माता को तो उन ब्रह्मचारियों के समूहों से ही आशा है जो कि संसार के कोने-कोने में जाकर धर्मपिपासु लोगों को ऋषियों का पुनीत सन्देश सुना सकें।

मैं समझता हूँ कि संस्कृत और पाश्चात्य विज्ञानों को एक साथ पढ़ते हुए गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में आत्मज्ञान और आत्मसन्मान के भाव अवश्य जागृत होंगे। आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से हमारे दिमागों में एक नशा पैदा हो गया है। नकल करना, कमजोरी है। विचार तथा जीवन के हर क्षेत्र में एक वस्तु की आवश्यकता है—शक्ति, बल। परन्तु बल का रहस्य यही है कि नकल न करके स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हुआ जावे। वैदिक सभ्यता का युग न मालूम कितना पुराना है। एक आधुनिक ऐतिहासिक का कहना है कि २०००० या २५००० वर्ष पहिले वैदिक सभ्यता का युग था। इस युग के विषय में मैं जितना अधिक विचार करता हूँ उतना ही इसकी सरलता

पर मुग्ध होता जाता हूँ। आधुनिक सभ्यता की अपेक्षा प्राचीन सभ्यता में अधिक सरलता थी। सरलता ही सभ्यता की कुंजी है। अक्सर हम लोग प्रजातन्त्र राज्य पर विचार किया करते है। मेरी राय है कि वैदिक प्रजातन्त्र राज्य अधिक उच्च था। राजा सदा जनता द्वारा चुना जाता था। प्रजातन्त्रवाद प्राचीन आर्यों को अज्ञात न था। धर्म का स्थान सदैव राजा के ऊपर रखा जाता था। वैदिक राजव्यवस्था का आधार आत्मनियन्त्रण और आत्मसम्मान था। आजकल दुनियादारी और व्यवहारकुशलता पर अधिक जोर दिया जाता है। पान के पत्तों की तरह चालाक लोगों की सर्वत्र ही अधिकता है। ऐसे आदमी भारत को स्वतन्त्रता नहीं दिला सकते। आर्यों का जोर सदैव आत्मा की उन्नति पर था। मानसिक चतुरता द्वारा सफलता तथा स्वार्थसाधन में कुछ सहायता तो मिल सकती है परन्तु सफलता की प्राप्ति वस्तुत: आत्मा द्वारा ही होती है। जो कुछ स्थायी है उसका निर्माता आत्मा है। आत्मा को ही अपने स्वाध्याय तथा जीवन का वास्तविक निर्माता समझो। आत्मिक शक्ति ही भारत को स्वराज्य दिलायेगी। अगर भारत में आत्मिक शक्ति की न्यूनता होगी तो हम ऊंचे-ऊंचे उद्देश्यों तक नहीं पहुंच सकते। हमारे जातीय आन्दोलन यदि आत्मिक शक्ति से शून्य होंगे तो ये गर्व, विषय, सुख, घृणा और झगड़ों के ही पैदा करने वाले होंगे।

आधुनिक जमाने का खतरा यह है कि आजकल आत्मा को पराधीन कर दिया गया है। दैवी शक्तियों को मैशीनरी का गुलाम बनाया जा रहा है। आत्मा के अधिकारों को शक्तिमदोद्धत सभ्यता पर कुर्बान किया जा रहा है।

ऋषियों की बुद्धिमत्ता का अनुसरण करना आपका प्रयत्न होना चाहिये। आजकल की स्पर्द्धा और पेचीदगियों ने मनुष्यों के जीवनों को बिल्कुल पागलों की तरह बाह्य सुखों के पीछे भागना सिखा दिया है। इसी लिए आन्तरिक शक्तियों को विकसित करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। आधुनिक शिक्षा सर्वथा असफल रही है क्योंकि इसने विद्यार्थियों की आन्तरिक शक्तियों को विकसित नहीं किया। अभी कुछ दिन हुए कि जर्मनी के एक महान् विचारक और राजनीतिज्ञ महापुरुष की मृत्यु हुई है, उसका नाम 'रैथिनो' था। उन्होंने अपनी एक किताब में लिखा है कि "आत्मा को विकसित करों"। यह तो प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्तों का एक अनुवाद-मात्र है। मैं आधुनिक स्कूलों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों और संसार भर की सरकारों से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि आप अपने नवयुवक विद्यार्थियों के आत्माओं को विकसित करने के लिये क्या यत्न कर रहे हैं, क्योंकि मुझे दृढ़ निश्चय है कि आत्मा को विकसित करने से ही वास्तविक नवजीवन का विकास होता है।

साधुवर श्री टी.एल. वास्वानी
(संवत् १९८४ के दीक्षान्त भाषण से)

गुरुकुल-
एक प्राचीन आदर्श विश्वविद्यालय

आपने गुरुकुल के द्वारा एक नया प्रयोग किया है। वर्तमान काल की व्यवस्था से प्राचीन आदर्शों को सामने रख कर एक विश्वविद्यालय चला रहे हैं। आज कल पाश्चात्य ढंग के विश्वविद्यालय होने चाहियें जैसे कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी है या पुराने ढंग के गुरुकुल यह एक विवादास्पद प्रश्न है इसीलिए वे सब लोग जो इस देश की शिक्षा में अभिरुचि रखते है, आप के इस प्रयोग को जिस के द्वारा आप ने प्राची और प्रतीची, दर्शन और विज्ञान के समन्वय करने का प्रयत्न किया है, उत्सुकता से देखते हैं। इस प्रयोग में कई विशेषताएं हैं। आप ने केवल साधारण बस्तियों से दूर हिन्दी के माध्यम से ऊंची शिक्षा देने का आयोजन नहीं किया है। विशेष बात यह है कि आप अपने अन्तेवासियों की वेषभूषा और उनकी दिनचर्या भी प्राय: वही रखते हैं जो प्राचीनकाल में थी। यह विचारणीय विषय है। साधारणत: ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम का प्रवेश द्वार होता है। ब्रह्मचारी उस जीवन के लिए अपने को सज्जित करता है जो उसे आगे चल कर बिताना है। प्राय: उसकी वेष-भूषा और चर्या, उस को जिस समाज में रहना और काम करना है, उस के अनुरूप होती है। प्राचीनकाल का ब्रह्मचारी गुरुकुल में प्राय: वानप्रस्थाश्रमियों के बीच रहता था और उसका रहन-सहन उसी ढंग का था जैसा कि तात्कालीन समाज के भद्र कुलों में प्रचलित था। आज वह अवस्था नहीं।

गुरुकुल के बाहर और भीतर के रहन-सहन में बहुत बड़ा अन्तर है। मैं स्वयं कोई सम्मति नहीं देता पर यह विचार्य है कि यह अन्तर कहां तक ठीक है? जहां ऐसा अन्तर होता है, वहां दो में से एक बात का डर रहता है। उन लोग में जो विशिष्ट परिस्थिति में रखे जाते हैं या तो वह मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है जिसे नम्रभाव (Inferiority Complex) या वह दूसरी वृत्ति जिसे श्रेष्ठभाव (Superiority Complex) कह सकते हैं, दोनों ही हानिकर हैं। पहिली अवस्था में यह भ्रम हो जाता है कि लोग मुझे विचित्र, छोटा, असभ्य आदि समझते हैं। इस के परिणाम स्वरूप एक विचित्र सी सतर्कता, छोटी-छोटी सी बात पर अपने अपमान का अनुभव, साधरण आलोचना को अनुचित आक्षेप समझने की कुटेव पड़ जाती है। दूसरी अवस्था में अपने को बड़ा, औरों से ऊंचा समझने का स्वभाव पड़ जाता है। मनुष्य की प्रकृति ऐसी है कि ऐसे समाज में रहना अच्छा लगता है और समाज में रहने के लिए समानता आवश्यक है। विलक्षणता, असमानता, विषमता खलती है, अपने ही चित्त को चुभती है। इसलिये उस के लिये कोई न कोई कारण ढूंढ लिया जाता है। तब जाकर शांति होती है। मूर्खों से विलक्षण रहने में ही मेरे जैसे लोगों की शोभा है या लोग मुझ को छोटा समझते हैं, मैं उनको दिखला दूंगा कि मैं उन से छोटा नहीं हूँ, यह दोनों भाव समाज में मिल-जुल कर रहने में बाधक होते हैं। मैं आशा करता हूँ कि आप इस बात पर ध्यान रखते होंगे।

शिक्षापद्धति और शिक्षणविषय के सम्बन्ध में मैं कुछ विशेष नहीं कह सकता। आजकल कई प्रकार के विचारों में संघर्ष चल रहा है। केवल विज्ञान की शिक्षा देना श्रेयस्कर है या विज्ञान के साथ-साथ साहित्य और काव्य का भी अध्ययन होना चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थी को सभी मुख्य विषयों में चंचु प्रवेश कराने का प्रयत्न चाहिये या नहीं। चुने विषयों का विशेष अध्ययन किस-किस अवस्था में होना चाहिये। दर्शन के अध्ययन की कोई उपयोगिता है या नहीं, यह सब उन प्रश्नों में से है जिन पर सर्वत्र विचार हो रहा है। किसी भी शिक्षणसंस्था की शक्ति असीमित नहीं है। प्रत्येक विद्यालय और विश्वविद्यालय को यह सोचना ही पड़ता है कि हम किसको पढ़ायें क्या पढ़ायें। मैं समझता हूँ कि आप भी इन प्रश्नों पर विचार करते होंगे। आज हमारे देश में कई नये प्रयोगों की ओर ध्यान गया है। उदाहरण के लिये वर्धा पद्धति को लीजिये। हम अपने प्रान्त में भी इस प्रश्न पर विचार कर रहे है। अगले वर्ष अर्थात जुलाई से हम इस ओर आगे बढ़ना चाहते हैं। यह ठीक है कि यह प्रभाव उच्चशिक्षा पर भी पड़ेगा।

इस सम्बन्ध में मैं एक बात की ओर संकेत कर देना अनुचित नहीं समझता। यह मांग की जा रही है कि हम गुरुकुल की उपाधियों को स्वीकार कर लें। संयुक्त प्रान्तीय सरकार के सामने यह प्रश्न है और सारा निर्णय शीघ्र ही प्रकट होगा।

एक बहुत बड़ा प्रश्न आज शिक्षासंस्थाओं के सामने है और प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो शिक्षा के विकास के महत्त्व को समझता है इस ओर ध्यान देना होगा। यह प्रश्न वह है कि शिक्षा के ऊपर राजनीतिक नियन्त्रण कहां तक हो। या व्यावहारिक रूप में शिक्षा पर सरकार का कहां तक नियंत्रण रहना चाहिए। जहां तक नियंत्रण का अर्थ है हिसाब पर देखरेख रखना या यह देखना कि संस्था यही काम कर रही है जिसके लिये यह स्थापित हुई थी वहां तक तो दो सम्मति हो नहीं सकती। देश की सरकार जनता की प्रतिनिधि है और उसे यह देखना ही चाहिये कि सार्वजनिक सम्पत्ति का अपव्यय तो नहीं होता। जो संस्थायें सरकार से आर्थिक सहायता पाती हैं और जो नहीं पाती जो रजिस्टर्ड हैं और जो नहीं है, जिन शिक्षणालयों की उपाधि सरकार द्वारा स्वीकृत है और जिनकी नहीं है, उनको इतना अंकुश तो अपने ऊपर रखना ही होगा। शासन को यह अधिकार तो रहना ही चाहिये कि इस बात को देख सके कि जो संस्थायें उसकी सुव्यवस्था से लाभ उठाकर सम्पन्न होती हैं और अपना काम स्वच्छन्दता से कर सकती हैं वह इस स्वच्छन्दता का दुरुपयोग नहीं करती। पर आजकल नियंत्रण इसके कहीं आगे जाता है। उदाहरण के लिये आप जर्मनी की ओर दृष्टिपात करें। वहां नीचे से लेकर ऊपर तक सारी शिक्षा सरकार के बनाये हुए एक विशेष सांचे में ढली हुई हैं। सरकार इतना ही निश्चय नहीं करती कि कितने लड़के पढ़े, कितने बरस तक पढ़े, कौन पढ़ाये इत्यादि भी उसी के निश्चय के अनुसार होता है। पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले आर्य हो अर्थात् वह इतना सिद्ध कर सकें कि उनके प्रपितामह और प्रपितामही, प्रमातामह और प्रमातामही तक में कोई यहूदी नहीं था। फिर दर्शन हो या विज्ञान

साहित्य हो या कला। किसी भी पुस्तक किसी भी पाठ से यह बात नहीं मिलनी चाहिये कि अनार्यों मुख्यतया यहूदियों से मनुष्य समाज का कभी कोई भला हुआ है। उतना ही नहीं सारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि पढ़ने वालो के हृदय में आर्य दूसरे शब्दों में जर्मन जाति के गौरव और नात्सी विचारशैली के महत्त्व की अमिट छाप पड़ जाये। मैंने छोटे बच्चों के पढ़ाने के व्याकरण, भूगोल आदि के पाठों के कुछ अवतरण देखें हैं। सब इस एक लक्ष्य को सामने रखकर लिखे गये है और विश्वविद्यालय तक यही बात चली गयी है। इसका कैसा प्रभाव पड़ सकता है, उसका कुछ अनुभव हमको है? जो इतिहास लड़कों को अब तक पढ़ाया गया है वह दूषित है।

उसका यह तो प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है कि हिन्दू और मुसलमान अपने को एक दूसरे से पृथक् मानने लगे। लोगों में यह धारणा जग गयी कि भारतवासी दुर्बल हैं, युद्ध में अकुशल रहे हैं और विदेशी शासन में ही हमको चैन और शान्ति प्राप्त हो सकती है और हुई है। भारतीयों का आत्मविश्वास जाता सा रहा। फिर जहां सरकार खुल कर संगठित प्रयत्न करेगी वहां क्या होगा। जर्मनी में एक नये प्रकार की मनोवृत्ति वाले मनुष्य की सृष्टि हो रही है। जिन देशों में आज डिक्टेटरशिप है उन में तो दिन रात उठते बैठते यह राग अलापा जाता है कि हमारी जाति सर्वश्रेष्ठ है। उसके नैसर्गिक विशेष अधिकार है, हमारी ही संस्कृति जगत् मात्र के लिये कल्याणकारी है, यदि दूसरे राष्ट्र हमारी बातें सीधे से न मान लें तो हमारा कर्त्तव्य है कि उनसे बलात् मनवायें। यह धारा हम को कहां ले जायेगी? इससे तो निरन्तर कलह फूट पड़ेगा और फिर जब सरकारी नीति के अनुसार पठनपाठन करना होगा तब तो प्रत्येक देश का एक पृथक् आचार शास्त्र, पृथक् दर्शन, पृथक् समाज, विज्ञान होगा। ऐसी अवस्था में सत्य का भी कोई रूप माना जायेगा उसकी भी कोई व्याख्या होगी या नहीं। सत्य, असत्य, अच्छा, बुरा, इन सब बातों की कोई तो कसौटी होनी ही चाहिये नहीं तो परस्पर का व्यवहार कैसे चलेगा।

इसी से मिलता जुलता एक दूसरा प्रश्न है शिक्षा को कहां तक किसी विशेष धार्मिक विचारधारा के अनुकूल चलाना चाहिये। आप लोग यहां जो कुछ शिक्षा देते हैं वह सब उन विश्वासों के अधीन ही हो सकती है जो आर्यसमाज के आधारस्तम्भ हैं। आप श्रुति को आप्तवाक्य मानते हैं वह आपके लिये स्वत: प्रमाण है। और सभी शास्त्र और सभी सिद्धान्त परत: प्रमाण हैं यदि कोई सिद्धान्त आपकी श्रुति, व्याख्या के अनुसार नहीं है तो आप उसे प्रसिद्ध और निराधार मानेंगे। ऐसी अव्यवस्था में दो बातें प्राय: होती है। जो लोग धर्मग्रन्थों का आदर, श्रद्धा नहीं वरन् परम्परा के कारण करते हैं और ऐसे लोगों की ही संख्या अधिक होती भी है वह तो व्याख्या को तोड़ मोड़ कर यह दिखलाने का प्रयत्न करते हैं कि हमारे धर्म ग्रन्थों में सभी वैज्ञानिक आविष्कार भरे पड़े हैं। जो लोग अन्धश्रद्धालु होते हैं या किसी गूढ़ राजनीतिक या अन्य अर्थ को सिद्ध करने के लिये धार्मिकता का स्वांग भरते हैं वे विज्ञान को और वैज्ञानिक शिक्षा को ही

बहिष्कृत करते हैं। पहली प्रवृत्ति धर्मग्रन्थों की मिट्टी खराब करती है दूसरी प्रवृत्ति आविष्कार, खोज ज्ञान के प्रसार पर ताला चढ़ा देती है। दोनों ही बातें बुरी हैं पर दूसरी बात तो बड़ी ही हानिकर है इसने वैज्ञानिकों के प्राणों की आहुतियां दिलवायी हैं। आज भी प्रगतिशील अमेरिका में कई शिक्षालयों में विकासवाद नहीं पढ़ाया जा सकता। आश्चर्य नहीं कि हमारे यहां भी किसी किसी प्रख्यात विश्वविद्यालय में कुछ ऐसा ही प्रयत्न हो और अध्यापकों व छात्रों के धार्मिक विचारों तथा विश्वासों की परीक्षा की जाय। ऐसी बातों से अज्ञान की वृद्धि होती है और दम्भ तथा झूठ का बोलबाला होता है। मैं तो समझता हूँ कि ऐसा प्रयत्न होता है। विज्ञान को इस प्रकार बांधना मूर्खता है। वैज्ञानिक के सामने यह विस्तृत जड़ जगत् है। वह इसके दृग्विषयों को देखें, उनके तत्त्व का अन्वेषण करे अपने सिद्धान्त निर्धारित करें, अवश्य ही सत्य एक होगा। विज्ञान की प्रयोगशाला का सत्य और धर्म ग्रन्थ के पृष्ठों का सत्य पृथक् और स्वतन्त्र नहीं हो सकते यदि वह धर्मग्रन्थ सचमुच आप्तवाक्य हैं पर हठात् सामञ्जस्य करना विज्ञान और धर्म दोनों के लिये बुरा है। यह आशा करनी चाहिये कि विस्तृत खोज अन्तर्हित सत्य को समय पाकर प्रकाशित कर देगी और उस सत्य के ज्ञान से वास्तविक धार्मिकता की पुष्टि ही होगी।

परन्तु जहां मैं यह कहता हूँ कि शिक्षा पर राजसत्ता और साम्प्रदायिक विचारों का हठात् बोझ न डालना चाहिये वहां मैं यह भी समझता हूँ कि उसको लक्ष्यहीन भी न होना चाहिये। आज शिक्षा जहां स्वच्छन्द छोड़ दी गयी है। वहां लक्ष्यहीन भी है। इस का कारण यह है कि आज समाज का सारा संगठन समाज का सारा जीवन लक्ष्यहीन है। व्यक्ति का लक्ष्य है धन कमाना, सम्पन्न होना। यदि ऐसा करने में उसे दूसरों के जीवन को छिन्न भिन्न करना पड़े तो वह ऐसा निःसंकोच होकर करता है। मनुष्य की उन्नति मनुष्य के शोषण पर राष्ट्र की राष्ट्र के शोषण पर निर्भर है। प्रतियोगिता वृद्धि का मूल मन्त्र है। सम्पत्ति वेतन योग्यता का माप दण्ड है। इसीलिये युद्ध पर युद्ध होते है। संधि पर संधि टूटती है।

यदि मनुष्यों में संस्कृति का नाम बचा रहना है, यदि हमें सभ्य जीवन बिताना है, यदि आज तक के लाखों वर्षो के परिश्रम पर पानी नहीं फेरना है तो सामाजिक जीवन का कोई न कोई लक्ष्य स्थिर होना चाहिये। नीति, आचार, व्यापार, शासन सब उस लक्ष्य को ध्यान में रखकर परिचालित होने चाहियें। शिक्षा उसी लक्ष्य के अनुकूल होनी चाहिये। आज से बहुत दिन पहिले, कितना पहिले मैं नहीं कह सकता, आर्यो ने समाज का एक चित्र खींचा था वह चित्र आजकल के लिये यथातथ्येन उपयुक्त हो या न हो परन्तु तात्कालीन परिस्थिति में सर्वाङ्ग सुन्दर था। प्रत्येक व्यक्ति के लिये स्थान था, प्रत्येक स्थान के लिये व्यक्ति था, व्यापार व्यवसाय शासन सभी इस संगठन के अधीन थे, व्यक्ति को बहुत बड़ी स्वतन्त्रता दी गई थी। उससे कोई यह नहीं पूछता था कि वह एकेश्वरवादी हैं, वही ईश्वरवादी है या अनीश्वरवादी हैं पर उसका सारा जीवन एक परिधि के भीतर था और वह परिधि थी वर्णाश्रम धर्म। आज यूरोप में एक दूसरे लक्ष्य का उदय

हुआ है। यह वह लक्ष्य है जो समाजवाद के आचार्यों, मार्क्स और एगेंल्स और लेनिन ने हमारे सामने रखा है। इस से भी राष्ट्र की और व्यक्ति की सभी प्रवृत्तियां एक परिधि में लायी गयी है। इन दोनों विचारधाराओं में एक समानता है और वही समानता उस विजातीयता की द्योतक है जो इन को सब प्रकारों के फासिस्टवादों से पृथक् करती है। न तो वर्णाधिमधर्म और न समाजवाद किसी राष्ट्र विशेष, किसी जातिविशेष की श्रीवृद्धि को अपना ध्येय मानते हैं। यह दोनों ही सार्वभौम हैं। दोनों ही अपरिग्रह, त्याग, लोक संग्रह को सभ्य जीवन का आधार मानते हैं। इस कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि दोनों एक दूसरे के पर्याय हैं पर हमको, आपको, और समस्त सभ्य जगत् को सोचना चाहिये कि हम कैसा समाज चाहते है। मनुष्य मनुष्य में कैसा सम्बन्ध चाहते है? और फिर इस चित्र के आधार पर शिक्षा का स्वरूप होना चाहिए। यदि समाज के सामने कोई व्यापक लक्ष्य होता तो आज ऐसी दुर्व्यवस्था न देख पड़ती, ऐसे ऐसे आविष्कारों के होते हुए भी पृथ्वी से दरिद्रता, शोषणता और विषमता न उठ सकी। विज्ञान केक प्रचण्ड पण्डित अपनी विद्या को धनिकों के स्वार्थसाधन की सामग्री बनाने में लज्जित नहीं होते और ज्ञान तथा धनमयी जो विभूति धरातल को स्वर्गोपम बना सकती है वह नि:शंक होकर नरसंहार में लुटा दी जाती है। व्यक्ति और समाज का अवयवाव्ययीभाव किसी के सामने नहीं है। विराट् पुरुष की कल्पना के लिये कोई स्थान नहीं है। विज्ञान विशारद को जो आजकल का ब्राह्मण है, यह नही सिखलाया गया है कि वह शासकों और धनिकों से बड़ा है और समाजशास्त्र का गुरु, त्राता मार्गदर्शक है। उसे उन लोगों की भांति आचरण नहीं करना चाहिये जो वानरमिव बाग्देवी नर्तयन्ति गृहे गृहे वरन् भारती का आदर करना चाहिये, उसका सत्कार्य के लिये जगद्धिताय ही प्रयोग करना चाहिये अन्यथा वह कुप्रथोक्त को और समाज को भस्मसात् कर देगी। यह कहने से काम नहीं चल सकता कि व्यक्ति समाज के लिये है। क्योंकि अन्ततोगत्वा समाज व्यक्तियों का समूह है। यह कहना भी अपर्याप्त है कि शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का पूर्ण विकास है क्योंकि समाज के बिना व्यक्ति का जीवन अपूर्ण रहता है। व्यक्ति को तो समाज में ही अपने जीवन की सार्थकता और पूर्णता मिलती है और शिक्षा के द्वारा पूर्ण व्यक्ति और पूर्ण समाज की सृष्टि होनी चाहिये।

श्री सम्पूर्णानन्द

शिक्षा सचिव, संयुक्तप्रान्त

(गुरुकुल पत्रिका के पूर्व प्रकाशित "स्वर्णजयन्ती विशेषांक" से साभार)

महर्षि दयानन्द के तेजस्वी उत्तराधिकारी स्वामी श्रद्धानन्द

स्वामी जी के बाद आर्य समाज की वृद्धि और विकास करने तथा उनके द्वारा आरम्भ किये गये कार्य को आगे बढ़ाने में जिन्होंने सबसे अधिक योग दिया, उनमें इस जनवेदी का दायित्व वहन करने वाले भावी नेता पं गुरुदत्त विद्यार्थी महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) लाला लाजपतराय, महात्मा हंसराज आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें सबसे तेजस्वी नि:सन्देह मुंशीराम अर्थात् स्वामी श्रद्धानन्द ही थे, जिनका आर्यसमाज के उत्तरपूर्व में वही स्थान है, जो कांग्रेस के इतिहास में महात्मा गाँधी का है। गाँधी जी ने कांग्रेस को एक बृहत् वादविवाद–समिति की स्थिति से उबारकर, स्वातन्त्र्य–संग्राम के एक सच्चे रणशिविर में परिणत कर दिया था तथा देश के सर्वतोमुखी उत्थान के दायित्व का काँटों का ताज पहनाकर, कोरे स्वप्न देखने के बजाय रचनात्मक रूप से कुछ करने–धरने के लिए उसे सबल रूप से प्रेरित किया था। उसी प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल–कांगड़ी जैसी अद्वितीय आदर्श शिक्षण–सस्कृति–संस्था की प्रस्थापना करके तथा आर्य जाति को शिथिलावस्था की दयनीय स्थिति से ऊपर उठाने हेतु संगठन का मन्त्र फूँककर, आर्यसमाज को सप्ताह में एक बार हवन–प्रार्थना करने–वाली धर्म– सुधारक–मण्डली मात्र बने रहने के बजाय, देश और जाति के पुनरुत्थान के एक सबल मंच में बदल देने का सफल प्रयास किया था! उनके महान् त्याग और अपने सदुद्देश्य के प्रति उनकी लगन की सच्चाई का इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए कि अपने इस अनुष्ठान की सिद्धि के हेतु, उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग, संन्यासी का चोला धारण कर लिया था। तब शुद्धि तथा संगठन के प्रबल आन्दोलन का प्रवर्त्तन कर, अन्त में उसकी ही वेदी पर अपने प्राणों तक की आहुति चढ़ा दी थी! श्रद्धानन्द का व्यक्तित्व आर्यसमाज के इतिहास में उसके प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द के बाद सबसे तेजस्वी है। वह एक सच्चे कर्मयोगी और लोककल्याण के लिए अपने प्राणों तक की बाजी लगा देने वाले लोकमान्य नेता थे। यह अत्यन्त दुर्भाग्य की बात थी कि एक दुष्ट विधर्मी हत्यारे की छुरी के शिकार होकर, सन् १९२६ ई० के दिसम्बर मास में वह सदा के लिए हमारे बीच से उठ गए! वह कोरे धर्म एवं समाज–सुधार के क्षेत्र ही के व्यक्ति नहीं थे–हमारे एक सच्चे राजनेता भी थे, जैसा कि सन् १९१९–२० के पंजाब के दमन के जमाने में प्रदर्शित उनके साहसपूर्ण रवैये से स्पष्ट है। उनका स्वतन्त्रता सेनानियों में अग्रणी स्थान था।*

कृष्ण बल्लभ द्विवेदी
मनु निकुञ्ज, सी –४५ A
निराला नगर, लखनऊ–२२६०२०

* आर्यसमाज एक महान् सुधारवादी धर्मसंस्था है। वह अपने आदर्शों को मात्र उपासना तक ही सीमित–परिमित रखनेवाली पूजा–धर्मवेदी नहीं, अपितु शिक्षण, धर्मग्रन्थ–प्रकाशन, शुद्धि–संगठन, दलितोत्थान, महिला–सरक्षण, वेदप्रचार, आदि–आदि विविध रचनात्मक कार्यों में जुटी हुई एक विश्वव्यापी कर्मठ संस्था है। उसके अधीन सैकड़ो विद्यालय, गुरुकुल, सेवासंस्थान देश–विदेश में प्रस्थापित और कार्यरत हैं। वस्तुत· सबका ब्यौरा देने के लिए तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ अपेक्षित है।

वेद कालीन सैन्य संघटन

सेना की आवश्यकता

राष्ट्र की सुरक्षा में सेना की महत्त्वपूर्ण भूमिका को वैदिक काल से आज तक सभी ने स्वीकार किया है। इसीलिए वैदिक युग के राजाओं के मन्त्रिमण्डल में सेनानी (सेनापति) का प्रमुख स्थान होता था। शतपथ ब्राह्मण में बारह सदस्यों वाले मन्त्रिमण्डल में सेनानी को प्रथम स्थान दिया गया है।[1] तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार सेनानी का स्थान छठा है।[2] तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता और काठक संहिताओं में सेनानी का स्थान पाँचवा है।[3] उत्तरवर्ती राजनीति शास्त्र के आचार्यों ने राज्य के सात अङ्गों में सेना को छठा स्थान दिया है।[4]

राज्य के सात अंगों में सेना का वही स्थान है जो हमारे शरीर में मन का। जैसे आत्मा मन के द्वारा इन्द्रियों का सञ्चालन करता है, वैसे ही राजा सेना द्वारा राज्य का सञ्चालन करता है।[5]

सायण ने तैत्तिरीय ब्राह्मण में दूसरे राष्ट्र में जाने वाले मनुष्यों के समूह को सेना कहा है।[6] इसी बात को ऐतरेय ब्राह्मण में **"बलम्"** शब्द की व्याख्या करते हुए और स्पष्ट किया है कि **"पराभिभवक्षमं बलम् = सैन्यम्"** अर्थात् सेना वह है जो शत्रुओं को पराजित करे।[7]

उत्तरवर्ती चिन्तकों ने सेना की परिभाषा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि– विविध आयुधों से सुसज्जित एवं सुसंगठित मनुष्यों का समूह सेना कहलाती है।[8]

आयुधों से सुसज्जित एवम् सुसंगठित सेना का स्वरूप वैदिक काल में ही पूर्णरूप से विकसित हो गया था। संहिताओं में देवासुर संग्राम का अनेकश: उल्लेख हुआ। विविध आयुधों की चर्चा देवों के साथ हुई है। ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थान–स्थान पर सेना सञ्चालन, आक्रमण, शत्रुओं के विनाश की प्रार्थनायें और संग्राम की चर्चा अकस्मात् ध्यान को आकृष्ट कर लेती है। धार्मिक कर्मकाण्ड निर्विघ्न समाप्त हो, इसके लिए वीर सैनिक आयुधों से युक्त होकर सर्वथा तैयार रहते थे।

सैन्य संगठन

सैन्य संगठन की सर्वप्रथम सूचना केन्द्र ऋग्वेद में उपलब्ध होती है। ऋग्वेद के अनुसार अश्व सेना, रथ सेना, हस्ति सेना, उष्ट्र सेना, नौ सेना आदि का संगठन पूर्ण रूप से हो चुका था। ऋग्वेद के कुछ उदाहरण निम्नलिखित है—

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्
वीरर्वीरान् वनृयामा त्वोता:।।[९]

अर्थात् हम अपने अश्वों से शत्रु के अश्वों का वध करें, अपने योद्धाओं और वीरों के द्वारा शत्रु के योद्धाओं और वीरों का संहार करें। इस मन्त्र से अश्वारोही सेना तथा पदाति सेना का निस्संदेह भान होता है। ऋग्वेद में सांग्रामिक दलों तथा दुर्गों के ध्वंसीकरण के स्पष्ट संकेत हैं—

त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयोनव।।[१०]

अर्थात् हे इन्द्र! तुमने नर्य, तुर्वश, यदुनाम के राजाओं की रक्षा की। तुमने वय्यकुलोत्पन्न तुर्वीति की रक्षा की। तुमने रथ तथा एतश ऋषि की संग्राम में रक्षा की। तुमने शंबर के ९९ नगरों का ध्वंस किया। स्पष्टत: इस मन्त्र के सांग्रामिक दलों और दुर्गों का पता चलता है।

ऋग्वेद में नावों का पर्याप्त वर्णन हुआ है। प्रथम व पाँचवें मण्डल में उल्लेख है कि नाविक नाव द्वारा जिस प्रकार नदी को पार करता है उसी प्रकार हमें दुरितों से पार लगाओ।[११] आठवें मण्डल में अश्वों ऊष्ट्रों और गायों का उल्लेख हुआ है। चौथे मण्डल में उल्लेख है कि— राजा हाथी पर बैठ कर चलता था—"राजेवामवों इभेन"[१२]। प्रथम मण्डल में उल्लेख है कि तुम हमें ऊँट की तरह युद्ध से पार कराते हो—यथा "मृध्र उष्ट्रो न पीपरो मृधा:।"[१३]

ऋग्वेद के सातवें मण्डल में एक सुसंगठित युद्ध का उल्लेख मिलता है, दस यज्ञ हीन राजाओं ने परस्पर मिलकर "सुदास" नामक राजा से युद्ध किया था—

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभि: सह:।
दश राजान: समिता अयज्यव: सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधः।।[१४]

एक स्थान पर कहा गया है कि लोहे का कवच धारण किये हुए राजा मेघ के समान प्रतीत होता है।[१५] अश्वों के ओजस्वी सांग्रामिक चित्र को निम्न मन्त्र में प्रस्तुत किया है—

तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोश्वा रथेभिः सहवाजयन्तः।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः।[16]

जब अश्व वेग के साथ रथ को खींच कर ले जाते हैं तब उनके पद चापों से धूलि उड़ती है और वे हिनहिना कर अपने टापों से शत्रुओं को रौंध देते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि संहिता काल में सैन्य संगठन का पूर्ण विकास हो चुका था।

ब्राह्मण ग्रन्थों में सैन्य संगठन

ऋग्वेद के समान ही ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सुव्यवस्थित सैन्य संगठन का उल्लेख हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि क्षत्रियों को रथ और बाणों से युक्त रहना चाहिए।[17] तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लेख है कि जब सैनिक अश्वों को रथों में जोड़ते हैं तब पर्वत और द्युलोक कांपने लगते हैं, पृथ्वी पर उथल पुथल मच जाती है, वनस्पतियाँ उखड़ जाती हैं और सब भय से इधर उधर छिप जाते हैं।[18] युद्ध में जाते हुए आयुधों सहित सैनिकों का बड़ा ही भावपूर्ण विवेचन तैत्तिरीय ब्राह्मण के निम्न सन्दर्भ में हुआ है–

अंसेष्वा मरुतः खादयो वः। वक्षसु रुक्मा, उप शिश्रियाणाः।
वि विद्युता न व्यृष्टि भी रुचानाः। अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः।[19]

अर्थात् मरूतः (सैनिकों) के कन्धों पर आयुध, पावों में कटक, वक्षस्थल पर हार, हाथों में ऋष्टियां तथा मस्तक पर शिरस्त्राण हैं और वे रथों पर आरूढ हैं।

"इमे सहः सहस अनिमन्ति"[20]

ये मरूत (सैनिक) बलवान् शत्रुओं के बल (सेना) को भी नष्ट कर देते हैं। रूद्र भी दृढ़ धनुषों से युक्त, किसी से पराजित न होने वाले और शत्रु सेना को पराजित करने वाले है[21]।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि "राष्ट्र अश्वमेध"[22] नामक यज्ञ है 'राष्ट्रवां अश्वमेधः'। अतः राष्ट्र रक्षा के उपाय करने के लिए सम्पूर्ण देश में तैयारी की जाती थी। राष्ट्र के प्रतीक रूप में अश्व को घुमाया जाता था। उसके साथ सेना का होना अनिवार्य था।[23] जो अश्व को रोकता था, तो यह माना जाता था कि वह राष्ट्र का अपमान कर रहा है। उससे सेना युद्ध करती थी। यह अश्व बिना विघ्न के घूमता रहे, इसके लिए विविध आयुधों से युक्त होकर सेना उसके साथ रहती थी। "तस्यैते पुरस्तात् रक्षितार उपक्लृप्ता भवन्ति। राजपुत्राः कवचिनः शतम्। राजन्या निषङ्गिणः शतम्। सूतग्रामण्यां पुत्रा इषुपर्षिणः शतम्। क्षात्र संग्रहीतृणां पुत्रा दण्डिनः शतम्। अश्वशतं निरष्टं निरमणम् यस्मिन्नेनमपि सृज्य रक्षन्ति"।[24] इस सन्दर्भ में ब्राह्मण कालीन सेना के

स्वरूप पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जिससे पता चलता है कि अभिषिक्त राजाओं के पुत्र, क्षत्रियों के पुत्र तथा मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के पुत्र सेना में प्रवेश करके राष्ट्र की रक्षा करते थे। इन्हीं सैनिकों को अन्यत्र "आशापाला:" –दिशाओं की रक्षा करने वाले बताया गया है।[२५] ताण्ड्य ब्राह्मण में निर्देश है कि "राजपुरूष कवचधारण करके धनुषबाण लेकर रथ पर आरूढ़ होकर देवयज्ञ के चारों ओर जायें। यह बल प्रदर्शन का एक रूप है।[२६] भाव यह है कि अपनी सैन्य शक्ति का प्रदर्शन करें, जिससे शत्रु भयभीत रहे तथा जनता में उत्साह का सञ्चार हो।

ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लेख है कि जैसे देवों ने असुरों को पराजित किया वैसे ही मनुष्य को देवों के युद्ध कौशल और आयुधों को जानकर शत्रुओं को पराजित करना चाहिए।[२७] शत्रु सेना और उसके आयुधों को ध्वस्त करने की ओजस्वी प्रार्थनायें तात्कालिक सांग्रामिकता की भावना का ज्ञान कराती हैं। यथा–

हे इन्द्र जो हमें हिंसित करना चाहता है, उसको और उसकी सेनाओं को नष्ट करके उसे अन्धकार में डाल दो।[२८] हम सभी शत्रुओं और उनकी सेना को जीतकर वश में कर लें।[२९] जो मुझसे मन, वचन और कर्म से द्वेष करेगा, मैं उसका सिर वज्र से काट दूँगा।[३०] जो शत्रु उत्पन्न हो गए हैं और जो आगे होंगे उन सबको मैं यन्त्रायुधों से नष्ट कर दूँगा।[३१] शत्रुओं के धनुषों, धनुष की प्रत्यञ्चा और बाणों को तोड़कर फेंक दो।[३२] शत्रुओं को अपने अधीन करके मैं सर्वश्रेष्ठ हो जाऊँ।[३३] उपर्युक्त सन्दर्भों से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में इस प्रकार की सेना का स्वरूप पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गया था, जो विविध प्रकार के संहारात्मक आयुधों से सुसज्जित थी। शक्तिशाली सेना की प्रभावशाली रणनीति की सूचना भी इन सन्दर्भों से मिलती है। इस काल में उसी की पूजा होती थी, जो सर्वाधिक बलशाली, शत्रुओं को परास्त करने वाला, अपने राष्ट्र और जनता की रक्षा करने वाला था।[३४] शत्रुओं को परास्त करने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद के सभी उपायों की जानकारी ब्राह्मण ग्रन्थों में है। इसका विवेचन यथा अवसर किया गया है। कुछ शस्त्रास्त्र परम्परा से सेना को प्राप्त थे और कुछ नवीन शस्त्रास्त्रों के विकास की सूचना भी प्राप्त होती है। देवों ने इन्द्र के लिए वज्र का निर्माण किया और इन्द्र को दिया, उस वज्र से इन्द्र ने वृत्र का वध किया।[३५] इस सूचना से प्रतीत होता है कि वज्र के विविध रूप रहे होंगे तथा उत्तरोत्तर इसके स्वरूप का विकास किया जाता रहा होगा क्योंकि संहिताओं में पहले से ही इन्द्र को वज्रधारी कहा गया है। पुन: वज्र निर्माण की चर्चा से सिद्ध है कि इसके स्वरूप में शोध होता रहता था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में दधीचि की अस्थियों से वज्र बनाने का उल्लेख है। इस वज्र से इन्द्र ने ९० – ९० संख्याओं के ९ व्यूहों का विनाश किया था[३६] अर्थात् ९०X९ = ८१० सैनिकों के गणों (व्यूहों) को मार गिराया था।

सेना का स्वरूप

ब्राह्मण काल तक सेना का संगठन स्थायित्व को प्राप्त हो चुका था। सेनानी का पद स्थायी होता था और वह राजा के मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता था। इससे स्पष्ट है कि उसके अधीन सेना रहती थी, तभी उसका महत्व था।[३७]

इन्द्राणी के नेतृत्व में एक विशाल सेना के संगठन की सूचना भी तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलती है। यह सेना पृथिवी के समान विस्तीर्ण अखण्डनीय, शत्रुओं को जीतने में समर्थ और सूर्य के समान ओजस्विनी थी। इस सेना का इन्द्राणी के पीठ पीछे का भाग तीस योजन तक फैला हुआ था। इन्द्रायणी ने इस सेना के एक भाग से ही शत्रु सेना को परास्त कर दिया था।[३८]

ब्राह्मण ग्रन्थों में सेना वाचक निम्न शब्दों का उल्लेख हुआ है —अनीक[३९], पृतना[४०],बल[४१], सह[४२], सेना[४३], संका[४४], वर्च:[४५]।

संग्राम काल में युद्धरत सेना के विविध नाम तैत्तिरीय ब्राह्मण में मिलते हैं। इन नामों से सेना की स्थिति और वर्चस्व का आभास होता है।[४६] अनेक स्थलों पर मरूतों के सात गण बताये गए हैं[४७]। साम विधान ब्राह्मण में सेना के सात प्रमुख पुरुषों की सूचना मात्र दी गई है। यदि सात दिन तक सेना के सात प्रमुखों को उद्दिष्ट करके आहुति दी जाये तो सेना विजय होती है।[४८] सायण ने इनको सेनापति कहा है[४९]। इस सन्दर्भो से स्पष्ट है कि सेना के गण (समूह या इकाई) होती थी।

मरुत्त शब्द सेना के अर्थ में प्रयुक्त होता था[५०]। इसी प्रकार ''गण'' शब्द सेना के व्यूह का द्योतक है। मरुतों ''सैनिकों'' के विशेषण रूप में दशग्वा: शातिन: सहस्रियास: आदि संख्याओं का उल्लेख किया गया है। जैमिनीय ब्राह्मण में असंख्य मरूतों का उल्लेख है। [५१] इन संकेतों से पता चलता है कि दस–दस, सौ–सौ, हजार–हजार सैनिकों के व्यूह बनाये जाते होंगे, तथा सम्पूर्ण व्यूहों में असंख्य सैनिक होते होंगे। इसी प्रकरण में ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि इन्द्र ने दधीची की अस्थियों से निर्मित वज्र द्वारा ९०–९० संख्याओं के ९ व्यूहों का विनाश किया था। अर्थात् ९०X९ = ८१० सैनिक गणों (व्यूहों) को नष्ट किया था।

मरूतों (सैनिकों) के सात गणों में विभक्त होने से अनुमान किया जा सकता है कि सेना की सबसे छोटी इकाई सात सैनिकों की एक पंक्ति होती थी, इस प्रकार की सात पंक्तियाँ जिस समूह में थी वह मरूतों का एक संघ कहा जाता होगा। इस प्रकार के ४९ संघों वाली मरूतों की सेना वाहिनी के रूप रही होगी। जिसमें ४९X४९ = २४०१ मरूत (सैनिक) होते होंगे। इसी प्रकार आगे

आवश्यकता अनुसार ७ के गुणनफल द्वारा सेना की संख्या आवश्यकतानुसार बढ़ाई जाती होगी।[५२]

महाभारत काल में सेना की प्रथम इकाई में पाँच सैनिक, एक रथ, एक हाथी तथा तीन घोड़े होते थे, इसका नाम "पत्ति" था। पत्ति के तीन गुनी सेना को "सेनामुख", तीन सेनामुखों का एक "गुल्म", तीन गुल्मों का एक "गण" तीन गणों की एक वाहिनी "वाहिनी", तीन वाहिनियों की एक "पृतना", तीन पृतना की एक "चमू", तीन चमू की एक "अनीकिनी" और दस अनीकिनियों की एक "अक्षोहिणी" होती थी।[५३]

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार मौर्य सेना का संगठन दस गुणात्मक आधार पर था। दस सैनिकों का एक पदिक अधिकारी, दस पदिकों का एक सेनापति और दस सेनापतियों के ऊपर एक नायक होता था। इस प्रकार सेना की सबसे छोटी इकाई दस सैनिकों की होती थी।[५४]

इस प्रकार ज्ञात होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में सेना की प्रथम इकाई "गण" में ७ सैनिक होते थे और महाभारत काल में ५ सैनिक। जैसे मरूतों (सैनिकों) को ७ से गुणा करके सेना की वृद्धि की सूचना ब्राह्मण ग्रन्थों में है। उसी अनुपात से सेना की वृद्धि की सूचना महाभारत और कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी उपलब्ध होती है।

गण शब्द पर यह विचार भी यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि चतुरङ्ग सेना (हस्ति, अश्व, रथ, पदाति) में गण किस अङ्ग से सम्बन्धित है। जैसा कि ऊपर प्रतिपादित किया जा चुका है कि मरुत अश्व व रथों पर बैठ कर चलते हैं। अत: गण का सम्बन्ध अश्वारोही अथवा रथारोही सेना के अंग से है। पैदल सेना का उल्लेख आगे किया जायेगा, जिसको ब्राह्मण ग्रन्थों में "पदाति" सेना कहा गया है और संहिताओं में उसकी छोटी इकाई को "पत्ति" नाम दिया गया है। इसी प्रकार 'गण' भी सेना की अश्व अथवा रथ अंग की सबसे छोटी इकाई थी।

सेना के विभाजन का एक और स्वरूप ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है —"देवासुर संग्राम मे देवों ने तीन व्यूह बनाये, एक व्यूह का नेता इन्द्र हुआ, दूसरे का नेता वरुण और तीसरे का नेता सोम बना।[५५] शायद युद्ध की सामरिक आवश्यकताओं के कारण सेना के विभाग किये जाते थे। जो शत्रुओं पर विभिन्न दिशाओं से आक्रमण करते थे।

ब्राह्मण ग्रन्थों में देवासुर संग्राम के माध्यम से बताया गया है कि युद्ध के तीन स्थल थे-- पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक और द्युलोक।[५६] जैसे बलवान् राजा पुर निर्माण कराते हैं वैसे ही असुरों ने देवों से युद्ध करते समय पृथिवी पर लोह का अन्तरिक्ष में चाँदी का और द्युलोक में

स्वर्ण का पुर बनाया।[७]

इन्द्र ने रोहिण नामक असुर का वध उस समय किया जब वह द्युलोक में चढ़ रहा था।[८]

इन सन्दर्भों से विदित होता है कि असुर अन्तरिक्ष में युद्ध करने में सक्षम थे। बाद में देव भी अन्तरिक्ष युद्ध में प्रवीण हो गये और असुरों के पुरों को नष्ट करने लगे।

डॉ. बलवीर आचार्य
रीडर संस्कृत
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक, हरियाणा

सन्दर्भ संख्या

(१) शतपथ ब्राह्मण ५.२.५.१

(२) तैत्तिरीय ब्राह्मण

(३ तैत्ति०सं० १.८.९, मैत्र०सं० – ११.६.५., का०सं०–१५.४

(४) स्वाम्यमात्यजनदुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतय:। कौटिल्य ६/१, पृ० २५७, स्वाम्यमात्यौ जनौ दुर्ग कोशो दण्डस्तथैव च। मित्राव्येता: प्रकृतयो राज्यं सप्ताङ्गमुच्यते।। याज्ञवल्क्य १/३५३, स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्रं कोशदण्डौ सुदृत्तथा। सप्त प्रकृतयो ह्येता: सप्ताङ्ग राज्यमुच्यते।। मनु ९/२९४, स्वाम्यमात्यदुर्गकोशदण्डराष्ट्रमित्राणि प्रकृतय:। विष्णुधर्म सूत्र ३/३३, स्वाम्यमात्यसुहृद् दुर्गकोशदण्डजना:। गौतमसूत्र (सरस्वती विलास द्वारा उद्धृत, पृ० ४५) और भी देखिए शान्तिपर्व ६९/६४–६५, मत्स्यपुराण २२५/११ एवं २३९, अग्निपुराण २३३/१२, कामन्दक १/१६ एवं ४/१–२

(५) शुक्रनीति सार –१.६२

(६) तै०ब्रा० १.५.१.५ डा० सा०भा०पर राष्ट्रेगच्छन् जनसंङ्घ सेना

(७) ऐत ब्रा० १४.३

(८) सेना शस्त्रास्त्र संयुक्ता मनुष्यादिगणात्मिका। (शुक्रनीति सार – ४.७.१.)

(९) ऋग्० १.७४.९

(१०) ऋग्० १.५४.६

(११) क) आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। ऋ० १.४६.७
ख) विश्वानि नो दुर्गहा जातवेद: सिन्धुं नावा दुरितानिपर्णि। ऋ० ५.४.९

(१२) ऋग्० ४.४.१

(१३) ऋग्० १.१३८.२

(१४) ऋग् ७.८३. ६–७

(१५) जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे। ऋग्वेद– ६.७५.१

(१६) ऋग्० ६.७५.७

(१७) रथेन च शरेण राजन्य बन्धव:। (शत्०ब्रा० १.२.२.२)

(१८) क) धूनुथ द्यां पर्वतान् दाशुषे वसु निवो वना जिहते धामनो भिया। कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातर: युधे यदुग्रा: पृषतीरयुग्ध्वम्।। तै०ब्रा० २.४.४.३

ख) ये सहांसि सहसा सहन्ते। रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्य:। तै०ब्रा०२.८.५.५

(१९) तै०ब्रा० २.८.५.५–६

(२०) तै०ब्रा० २.८.५.५–६

(२१) इक्त रुद्राय स्थिरधन्वने गिर:। क्षिप्रेषव: देवाय स्वधाम्ने। आषाढाय मीढुषे। तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतन इति। तै० ब्रा० २.८.६.८। द्र०सा०भा० स्थिरधन्वने = दृढेन धनुषा युक्ताय। क्षिपेषव: = शीघ्र गामी बाण युक्ताय। आषाढाए–परैरभिभवितुमशक्याय सहमानाय=परानभिभवितुं समर्थाय। तिग्मायुधाय तीक्ष्णैरायुधैरुपेताय।

(२२) शत० १३.१.६.३

(२३) योऽबलोऽश्वमेधेन यजते यद्यमित्रा अश्वं विन्देरन् यज्ञोऽस्य विच्छिद्येत। पापीयान् स्यात्। शतं कवचिनो रक्षन्ति। यज्ञस्य सन्तत्या अव्यवच्छेदाय। न पापीयान् भवति।

(२४) शत० ब्रा० १३.२.१५.५

(२५) शतं वै तल्प्या राजपुत्रा आशापाला:। (वही १३.१.६.२)

(२६) सन्नद्धा: कवचिन: परियन्तीन्द्रियस्यैव तद्रूपं क्रियतेऽथोमहाव्रतमेव मह्यन्ति। ता० ब्रा० ५.६.२१

(२७) ऐत० ब्रा० ४.६–७

(२८) शत०ब्रा० ४.५.६.४

(२९) मृधश्च सर्वा.........पृतनाश्च जयामसि। तै० ब्रा० २.४.७.२

(३०) यो मा हृदा मनसा वाचा......वज्रेण शिरच्छिनद्मि। तै०ब्रा० ३.७.६.४

(३१) वही ३.७.६.७

(३२) नभन्तामन्येषां ज्याका अधिधन्वसु। वही २.५.८.२

(३३) अहमुत्तरो भूयासमधरे सपत्ना:। वही ३.७.६.७.

(३४) क) ते देवाऽब्रुवन स सप्रजापतिका अयं वे देवानामोजिष्ठो बलिष्ठ: सहिष्ठ: सप्तम:

पारयिष्णुतम: इममेवाभिषिञ्चाभहा इति तदेव तदिन्द्र मेव। ऐत०ब्रा० ३८.१

ख) युद्धं वै राजन्यस्य वीर्यम्। शत० १३.१.५.६

ग) इन्द्रो वा एष पुरा वृत्रस्य वधात्। अथ वृत्रं हत्वा यथा महाराजो विजिग्यान: एवं महेन्द्रोऽभवत्। (शत्० २.५.१.९)

घ) इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा विश्वकर्माऽभवत्। (ऐत०ब्रा० १८.८)

(३५) देखें इसी अध्याय में आयुध प्रकरण में वज्र

(३६) इन्द्रो दधीचो अस्थभि....जघान नवतिर्नव:। तैति० ब्रा० १.५.८.१ द्र०सा०भा० नवतिर्नव = नव संख्याका नवतीर्दशाधिकान्यष्टशतानीत्यर्थ ९०x९= ८१०

(३७) सेनापति का एक विशेषण "सबल" तैत्ति० ब्रा० १.५.८.३ में उपलब्ध होता है। सा० के अनुसार सबल वह है जो बल = सेना से युक्त है – बलेन सैन्येन युक्त:।

(३८) तैत्ति० ब्रा० २.४.२.७

(३९) शत०ब्रा० २.५.५.२–४, तै०ब्रा० १.६.६.१ आदि

(४०) शत०ब्रा० २.५.३.१६ आदि, ऐत० १२.९, तैत्ति० ब्रा० २.८.३.४,७ आदि

(४१) तै०ब्रा० १.५.८.३, २.८.५.५, ऐत० १४३ आदि

(४२) ऐत० १४३ आदि

(४३) तैति०ब्रा० ३.७.५.१, शत०ब्रा० १३.१.१०.१ आदि

(४४) तैति०ब्रा०२.४.७.५ आदि

(४५) वही १.५.१.४

(४६) तै०ब्रा० १.५.१.४.४–५ श्रृणत्= सा० हिंसनोद्युक्तं स्वकीय बलम्। प्रतिश्रृणत्=हिंसोद्युक्तं परकीयं बलम्। प्रतिभञ्जन्त: = प्रतिकूलां सेनां भग्नां कुर्वन्त: पुरुषा:। प्रतिशृणन्त: =स्वात्मानं प्रतिकूल्येन हिंसन्त: पुरुषा:। अभिजयत् = जयाभि मुखं सैन्यम्। अभिजितम् = लब्धजयम्।

(४७) ब्राह्मणोद्धार कोष पृ० ६२९–३०, सप्तगणा वै मरुत: तै०ब्रा० ७.१.६.२.३, २.७.२, श०ब्रा० ५.४.३.१७,

(४८) सप्तमुख्यानुद्दिश्य..साम०ब्रा० ३.६.१०।

(४९) ये चात्र मुख्या:। साम०ब्रा०३.६.१ द्र०सा०भा० प्रधानपुरुषा: सेना पतय: स्यु:।

(५०) क) द्र० वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त भाग ३ पृ० १२–४१

ख) महाभारत के शान्तिपर्व में वर्णित राजधर्म का समीक्षात्मक अनुशीलन–(शोध प्रबन्ध) पृ० ८२

ग) प्राचीन भारत की सांग्रामिकता पृ० ८९

(५१) जैमि०ब्रा० ११.३६, ब्राह्मणोद्धार कोष पृ० ६२९–३०

(५२) सप्त सप्त हि मारुतां गणा:। शत:ब्रा० ९.२३.२५, द्र०सा०भा०– मारूतां गणा: सप्त सप्तकानि भवन्ति। एकोन्व्यचाशत् संख्याका मरुत: सप्तधा विभागेन सप्त समुद्राया भवन्ति।

(५३) महा० आदि २.१९–२६

(५४) कौटिल्य अर्थ० १०.१५८–५९.७

(५५) जैमि० उप० ब्रा० ३.५.१, तैति० ब्रा० १.५.३.५, द्र०सा०भा० – देवाश्चा सुराश्च युद्धोद्युक्ता: सन्त:.............तेषु देवेषु त्रयो व्यूहा: इन्द्रस्वामिक एको व्यूह:। वरुण – स्वामिको द्वितीय:........ सोम – स्वामिक स्तृतीय:।

(५६) ऐत०ब्रा० ४.६–७

(५७) ततोऽसुरा एषु लोकेषु परश्चक्रिरे.... अयस्मयीमेवास्मिंल्लोके रजतामन्तरिक्षे हरिणि दिवि। शत० ब्रा० ३.३.५.३

(५८) जैमि० उप० ब्रा० १.९.२.४

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह पर "दीक्षान्तभाषण" देने वाले महानुभाव

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के २२ मार्च सन् १९२१ ई. के निश्चय के अनुसार गुरुकुल को विश्वविद्यालय का रूप दिया गया था। इससे पूर्व स्नातकों को दीक्षान्त संस्कार की दीक्षा महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी) द्वारा ही दी जाती रही। परन्तु इस निश्चय के बाद देश के प्रसिद्ध नेताओं द्वारा दीक्षान्तभाषण दिए जाने की प्रथा प्रारम्भ हुई। सन् १९२३ में देश के प्रसिद्ध नेता महामना मदनमोहन मालवीय जी ने दीक्षान्त भाषण दिया।

	दीक्षान्त	वर्ष
१.	महामना पं. मदनमोहन मालवीय	१९२३
२.	डॉ. भगवानदास	१९२४
३.	स्वामी श्रद्धानन्द जी	१९२५
४.	श्री सी.वी. वैद्य	१९२६
५.	देश रत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	१९२७
६.	साधुवर टी.एल. वास्वानी	१९२८
७.	स्वामी सत्यानन्द	१९२९
८.	मेजर वामनदास वसु	१९३०
९.	आचार्य नरेन्द्र देव	१९३१
१०.	श्री विधुशेखर भट्टाचार्य	१९३२
११.	डॉ. महेन्द्र नाथ सरकार	१९३३
१२.	डॉ. कालीदास नाग	१९३४
१३.	सन्त निहाल सिंह	१९३५
१४.	डॉ. सर गोकुलचन्द नारंग	१९३६
१५.	श्री सत्यमूर्ति	१९३७
१६.	पं. गोविन्दवल्लभ पन्त	१९३८
१७.	डॉ. सम्पूर्णानन्द	१९३९
१८.	श्री एस.एस. अणे	१९४०
१९.	आचार्य क्षितिमोहन सेन	
	कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१९४१

२०.	डॉ. राधाकृष्णन्	१९४२
२१.	डॉ. श्यामाप्रसाद मुकर्जी	१९४३
२२.	डॉ. अमरनाथ झा	१९४४
२३.	राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन	१९४५
२४.	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद	१९४६
२५.	पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति	१९४७
२६.	डॉ. एम.एस. भटनागर	१९४८
२७.	डॉ. एन.वी. गाडगिल	१९४९
२८.	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (राष्ट्रपति—भारत सरकार)	१९५०
२९.	श्री आनन्द स्वामी महाराज	१९५१
३०.	श्री वी.के. मुकर्जी (न्यायाधीश)	१९५२
३१.	श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी	१९५३
३२.	श्री चन्द्रभानु गुप्त (मंत्री, उ.प्र.)	१९५४
३३.	डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (उपराष्ट्रपति)	१९५५
३४.	श्री अनन्त शयनम अयंगर (स्पीकर लोकसभा)	१९५६
३५.	डॉ. चिन्तामणि द्वारिकानाथ देशमुख	१९५७
३६.	डॉ. के.एल. श्रीमाली	१९५८
३७.	मेजर वामनदास वसु	१९५९
३८.	पं. गोविन्दवल्लभ पन्त	१९६०
३९.	श्री चन्द्रभानु गुप्त (मुख्यमंत्री, उ.प्र.)	१९६१
४०.	श्री दौलत सिंह कोठारी	१९६२
४१.	श्री लाल बहादुर शास्त्री (प्रधानमंत्री)	१९६३
४२.	डॉ. विश्वनाथदास (राज्यपाल)	१९६४
४३.	श्री मोरारजी देसाई (प्रधानमंत्री)	१९६५
४४.	श्री यशवन्तराव बलवन्तराव चह्वाण (रक्षामंत्री)	१९६६
	....	१९६७
४५.	प्रो. शेर सिंह (शिक्षा राज्य मंत्री, भारतसरकार)	१९६८
	....	१९६९
४६.	महामहिम गोपाल रेड्डी (राज्यपाल)	१९७०
	....	१९७१
४७.	बाबू जगजीवन राम	१९७२

४८.	श्रीमती इन्दिरा गांधी	१९७३
४९.	स्वामी ब्रह्ममुनि	१९७४
	....	१९७५
५०.	डॉ. चेन्नारेड्डी (राज्यपाल, उ.प्र.)	१९७६
	....	१९७७
	....	१९७८
	....	१९७९
	....	१९८०
५१.	न्यायमूर्ति एच.आर. खन्ना	१९८१
५२.	श्री बलराम जाखड़ (अध्यक्ष लोकसभा)	१९८२
५३.	ज्ञानी जैल सिंह (राष्ट्रपति)	१९८३
५४.	स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती	१९८४
५५.	आर्यरत्न पं. सत्यदेव भारद्वाज वेदालंकार	१९८५
५६.	डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	१९८६
५७.	श्री वीर बहादुर सिंह	१९८७
५८.	न्यायमूर्ति बी.एस. देशपाण्डे	१९८८
५९.	श्री ब्रह्मदत्त (पेट्रोलियम मंत्री)	१९८९
६०.	श्री चिमन भाई मेहता (शिक्षा राज्यमंत्री)	१९९०
६१.	श्री चन्द्रशेखर (प्रधानमंत्री)	१९९१
६२.	श्री राजेश पायलट	१९९३
६३.	श्री अर्जुन सिंह	१९९४
६४.	श्री शिवराज पाटिल (लोकसभा अध्यक्ष)	१९९५
६५.	डॉ. ओदोलेन स्मेकल (सोवियत राजदूत)	१९९६
६६.	डॉ. ओलेग उवत्सिकेरोव	१९९७
६७.	डॉ. सुमतीन्द्र नाडिग	१९९८
६८.	श्री सोमपाल शास्त्री (श्री प्रकाशवीर विद्यालंकार द्वारा भाषण का पाठन)	१९९९
६९.	श्री जयसिंह गायकवाड़ पाटिल	२०००
७०.	श्री सुरजीत सिंह बरनाला (राज्यपाल, उत्तराञ्चल)	२००१

(नोट—कुछ वर्षों के दीक्षान्त समारोह का सही रिकार्ड उपलब्ध न होने के कारण नाम रिक्त हैं।)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के मुख्याधिष्ठाता (सम्वत् १९५९ से)

१. महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी)
२. लाला रामकृष्ण जी
३. प्रो. सुधाकर, एम.ए.
४. प्रो. बालकृष्ण, एम.ए.
५. पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति
६. श्री विश्वम्भरनाथ जी
७. आचार्य रामदेव जी
८. श्री चमूपति, एम.ए.
९. श्री दीवान बद्रीदास जी
१०. श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
११. पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति
१२. पं. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
१३. पं. महेन्द्र प्रताप जी
१४. पं. रघुवीर सिंह शास्त्री
१५. आचार्य प्रियव्रत जी
१६. श्री सत्यकेतु विद्यालंकार
१७. श्री गंगाराम गर्ग
१८. श्री बलभद्र कुमार हूजा
१९. डॉ. हरिप्रकाश आयुर्वेदालंकार
२०. श्री रमेश चन्द्र शर्मा
२१. श्री अर्जुन देव जी
२२. डॉ. रामप्रसाद वेदालंकार
२३. डॉ. सुभाष विद्यालंकार
२४. डॉ. धर्मपाल
२५. पं. वेदव्रत शर्मा (वर्तमान में)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के आचार्य (सम्वत् १९५९ से)

१. महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी)
२. पं. गंगा दत्त जी
३. लाला रामकृष्ण जी
४. आचार्य रामदेव जी
५. प्रो. रामशरण दास
६. स्वामी सत्यानन्द जी
७. पं. चमूपति जी, एम.ए.
८. पं. देव शर्मा (अभयदेव जी)
९. पं. बुद्धदेव विद्यामार्तण्ड
१०. पं. प्रियव्रत वेदवाचस्पति
११. पं. रघुवीर सिंह शास्त्री
१२. आचार्य रामनाथ वेदालंकार
१३. डॉ. चन्द्रभानु अंकिचन
१४. डॉ. निरूपण विद्यालंकार
१५. डॉ. रामप्रसाद वेदालंकार
१६. पं. सत्यकाम विद्यालंकार (गुरुकुल)
१७. डॉ. निरूपण विद्यालंकार (गुरुकुल)
१८. पं. श्यामसुन्दर स्नातक (गुरुकुल)
१९. प्रो. वेदप्रकाश शास्त्री जी (वर्तमान में)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के प्रस्तोता (कुलसचिव)

*आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा १९२१ ई. में विश्वविद्यालय की मान्यता दी गयी।

*सन् १९२३ ई. से "शिक्षा-पटल" की स्थापना हुई।

*प्रारम्भ में गुरुकुल विश्वविद्यालय का मुख्याधिष्ठाता अपने पदाधिकार से शिक्षा-पटल का प्रधान व प्रस्तोता होता था।

*शिक्षा-पटल के पहले मन्त्री (प्रस्तोता) गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक पं. महानन्द सिद्धान्तालंकार जी थे।

१. पं. महानन्द सिद्धान्तालंकार
२. प्रो. नन्दलाल खन्ना
३. पं. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
४. पं. वागीश्वर विद्यालंकार
५. आचार्य रामनाथ वेदालंकार
६. पं. धर्मपाल विद्यालंकार (अल्पकाल)
७. प्रो. सदाशिव भगत (अल्पकाल)
८. डॉ. गंगाराम गर्ग
९. डॉ. राजगोपाल अय्यर (अल्पकाल)
१०. डॉ. गंगाराम गर्ग
११. श्री बलजीत सिंह (अल्पकाल)
१२. श्री चन्द्रभानु अंकिचन (अल्पकाल)
१३. प्रो. राधेलाल वार्ष्णेय
१४. प्रि. अर्जुनदेव
१५. डॉ. धर्मपाल हीरा
१६. डॉ. जबर सिंह सेंगर
१७. डॉ. वीरेन्द्र अरोड़ा
१८. डॉ. भारतभूषण विद्यालंकार (अल्पकाल)
१९. प्रो. श्यामनारायण सिंह
२०. प्रो. जयदेव वेदालंकार
२१. प्रो. श्यामनारायण सिंह
२२. प्रो. महावीर (वर्तमान में)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सहायक मुख्याधिष्ठाता (सन् १९१० ई. से)

१. श्री हीरानन्द पोस्टमास्टर
२. लाला नन्दलाल जी
३. प्रो. सुधाकर, एम.ए.
४. पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति
५. पं. देवराज सेठी
६. श्री सोमदत्त जी
७. श्री देशबन्धु विद्यालंकार
८. पं. महानन्द सिद्धान्तालंकार
९. पं. जगन्नाथ विद्यालंकार
१०. पं. दीनदयालु शास्त्री
११. पं. विश्वनाथ विद्यालंकार
१२. डॉ. सत्यपाल आयुर्वेदालंकार
१३. पं. धर्मपाल विद्यालंकार
१४. श्री सुखवीर सिंह राणा
१५. डॉ. वासुदेव आयुर्वेदालंकार
१६. पं. धर्मवीर विद्यालंकार
१७. श्री शिवचरण जी
१८. श्री जितेन्द्र जी
१९. डॉ. भारतभूषण विद्यालंकार (अल्पकाल)
२०. श्री देशराज कैप्टिन
२१. श्री श्रीकृष्ण (अल्पकाल)
२२. पं. कृष्णचन्द्र जी
२३. श्री भीष्मदेव व श्री महेन्द्र कुमार (संयुक्त रूप से)
२४. श्री महेन्द्र कुमार
२५. डॉ. दीनानाथ शर्मा (वर्तमान में)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के "विद्यालय-विभाग" के मुख्याध्यापक

१. पं. गंगा दत्त जी
२. आचार्य रामदेव जी
३. मा. गोवर्द्धन जी, बी.ए.
४. पं. यज्ञदत्त विद्यालंकार
५. पं. हरिशरण जी
६. श्री गोपाल जी (इन्द्रप्रस्थ)
मा. सुखराम जी (मायापुर वाटिका)
७. श्री विश्वम्भर सहाय
८. पं. विश्वनाथ विद्यालंकार
९. श्री जयदेव जी
१०. श्री विष्णुदत्त विद्यालंकार
११. श्री त्रिलोकी नाथ
१२. श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति
१३. श्री महेशचन्द जी
१४. श्री श्रीदयालु मिश्र
१५. श्री मुनीश्वरदेव जी
१६. श्री सत्यवीर विद्यालंकार
१७. श्री श्यामनाथ वेदालंकार
१८. कर्नल (रिटा.) ओम्प्रकाश राजपाल
१९. श्री अनूप सिंह
२०. डॉ. दीनानाथ शर्मा
२१. श्री महावीर "नीर" विद्यालंकार (वर्तमान में, कार्य.)

गुरुकुल-पत्रिका के सम्पादक

गुरुकुल—पत्रिका का जन्म १९४८ ई. में हुआ। इससे पूर्व गुरुकुल में अनेक हस्तलिखित पत्र—पत्रिकायें निकला करती थी। जिनमें छात्रों एवं गुरुजनों के सभी प्रकार के विषयों पर लेख हुआ करते थे। गुरुकुल के साहित्य—संसार की अपनी ही आन—बान—शान थी। सम्वत् २००७ से १० तक के वार्षिक विवरण के अनुसार—**"संयुक्त राष्ट्र के शिक्षा तथा विज्ञान सम्बन्धी संगठन (यूनेस्को) ने अपनी विब्लयोग्राफी में 'गुरुकुल-पत्रिका' को सम्मिलित किया है। यह गुरुकुल के आदर्श को देश-विदेशों में पहुंचाने का उत्तम साधन सिद्ध हुई है।"** वैसे १९३६ से **'गुरुकुल'** नामक एक साप्ताहिक पत्र निकलता था, जो इस पत्रिका की नींव सिद्ध हुआ। यहाँ हम केवल अपने संज्ञान से **"गुरुकुल-पत्रिका"** के विद्वान् सम्पादकों के नाम ही अंकित कर रहे हैं—

१. **पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति**
२. **पं. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार**
३. **श्री रामेश बेदी आयुर्वेदालंकार**
४. **पं. सुखदेव दर्शन वाचस्पति**
५. **पं. शंकरदेव वेदालंकार**
६. **पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड**
७. **पं. भगवद्दत्त वेदालंकार**
८. **डॉ. निगम शर्मा**
९. **डॉ. रामाश्रय मिश्र**
१०. **डॉ. जयदेव वेदालंकार**
११. **डॉ. भारतभूषण विद्यालंकार**
१२. **डॉ. महावीर (वर्तमान में)**

स्वामी श्रद्धानन्द—स्मरणम्

श्रुत्वा वेदवचांसि यो गुरुमुखाज् जिज्ञासया श्रद्धया,
नास्तिक्यं विमुमोच सूर्य-किरणैर्नाक्तां तमिस्रं यथा।
भक्त्या वेदमतप्रचारकरणे दत्तं मुदा जीवनम्
श्रद्धानन्द वरेण येन तपसा तस्मै नमो भूयताम्।।

पांचालेषु सुसंस्कृतेर्निपतनं दृष्ट्वा विनाशोन्मुखम्,
आचारान् यवनैस्तथैव पुरुषैः संचालितान् भ्रान्तितः।
शिक्षां निर्मलवेदशास्त्र-विहितां प्राचालयद् यः पुनः
श्रद्धानन्द महोदयाय नतयस्तस्मै सदा सन्तु नः।।

दूरी कृत्य मलीन-पाठन-विधिं विद्यार्थिनां घातकम्,
आर्षां दर्शयितुं तथा श्रुतिमतां नीतिमयस्कारिणीम्।
यैनैषः सुरनिम्नगा शुभतटे विद्यालयः स्थापितः
श्रद्धानन्द मुनेस्तु तस्य चरितं गायन्तु लोकाः सदा।।

मुसिलं ख्रीष्टमतादिवामपथिभिर्भ्रष्टीकृतान् यो जनान्,
दृष्ट्वा शोक गृहीत खिन्न मनसा रामादिवंशोद्भवान्।
पूर्वां ज्ञातिहिताय शुद्धिसरणीं चक्रे पुनर्जीविताम्
श्रद्धानन्द गुरुं विशालहृदयं वन्दामहे तम् वयम्।।

सन्यस्ता वसुधा त्वयैव भुजगी येनाप्त कामेन वै,
प्राणान् धर्महुताशने च हुतवान् यस्तापसो लीलया।
वीरत्वेन विमोचने च सततं देशस्य यो यत्नवान्
श्रद्धानन्द-तपस्विनं गुणनिधिं हिन्वन्तु नो वन्दनाः।।

जनमेजयो विद्यालङ्कारः

कुल-पताका गीत

जिसकी चरण धूलि ने पाला,
जहां किया विद्या मधुपान।
उस प्यारी कुल माता को है,
मेरा बारम्बार प्रणाम।।

वन-पर्वत में नदी-नीर में,
माता जो पाया सन्देश।
तेरी पुण्य-पताका लेकर,
फैला दूंगा देश विदेश।।

वैद्य निरंजनदेव 'प्रियहंस'

कुल-वन्दना

जय जय जननि! कुलदेवी, तुझ को बारबार प्रणाम है।
यह मंजु अञ्जलि प्रेममय, अर्पित तुझे अभिराम है।।

महिमा हिमालय की शिखायें गा रहीं तेरी स्वयं।
भागीरथी की बीचियों में, स्पष्ट तेरा नाम है।।

हम देखते तुझ में सदा, नव प्रेम का उल्लास है।
हमको मधुरतम गोद ही तेरी परम विश्राम है।।

तेरे विशद आकाश की, स्वाधीनता में हम पले।
स्वर्गीयता मिश्रित जहाँ उज्ज्वल उषा का धाम है।।

तेरे वनों की स्तब्धता में दिव्य कोई राग है।
सब ओर से मानो बरसता, पुण्य का परिणाम है।।

तूने हृदय मोती पिरोकर, प्रेम के दृढ़ सूत्र में।
अनुपम बनाई यह हमारी, चारु मुक्तादाम है।।

तू ही बजाती वीणा वह, जिसके कि हम सब तार हैं।
जो तार सारे एक स्वर हों, कह रहे अविराम है।।

हम हैं सदा तेरे, हमारी तू हृदय वर वासिनी।
सम्बन्ध यह तेरा हमारा, नित्य है निष्काम है।।

पं. वागीश्वर विद्यालंकार

कुल-गीत

प्राणों से हमको प्यारा "कुल" हो सदा हमारा।।

विष देने वालों को भी, बन्धन कटाने वाले।
मुनियों का जन्मदाता, कुल हो सदा हमारा।।

कट जाय सिर न झुकना, यह मन्त्र जपने वाले।
वीरों का जन्मदाता, कुल हो सदा हमारा।।

स्वाधीन्य-दीक्षितों पर, सब कुछ बहाने वाले।
धनियों का जन्म दाता, कुल हो सदा हमारा।।

निज जन्म-भूमि भारत, को क्लेश से छुड़ा कर।
गौरव बढ़ाने वाला, कुल हो सदा हमारा।।

तन मन सभी न्यौछावर, कर वेद का संदेशा।
जग में ले जाने वाला, कुल हो सदा हमारा।।

हिम-शैल तुल्य ऊँचा, भागीरथी सा पावन।
भटकों का मार्गदर्शक, दुखियों का हो सहारा।।

आजन्म ब्रह्मचारी, ज्योति जगा गया है।
अनुरूप पुत्र उस का कुल हो सदा हमारा।।

पं. बुद्धदेव विद्यालंकार

गुरुकुल के स्नातको!

तुम गुरुकुलरूपी वृक्ष के पहले फल हो।

सारे सभ्य संसार की आँखे तुम पर लगी हुई हैं।

परमात्मा आशीर्वाद दें कि तुम संसार में धर्म और शान्ति फैलाने के साधन बनकर अपने कुल के यश को सारे संसार में फैलाओ। तुम्हारा कर्त्तव्य इस कारण भी अधिक है कि पीछे आने वाले स्नातक तुम्हारा अनुकरण करेंगे। उनके लिए केवल तुम्हीं आदर्श होओगे ....।

—कुलपिता स्वामी श्रद्धानन्द



अप्रैल १९७३ में विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी एवं कुलपति श्री रघुवीर सिंह शास्त्री।



दीक्षान्त समारोह के अवस" पर महामहिम श्री सुरजीत सिंह बरनाला, राज्यपाल-उत्तरांचल, पं० हरबंशलाल शर्मा-कुलाधिपति, डॉ० महावीर अग्रवाल-कुलसचिव, प्रो० वेदप्रकाश शास्त्री उपकुलपति एवं अन्य।